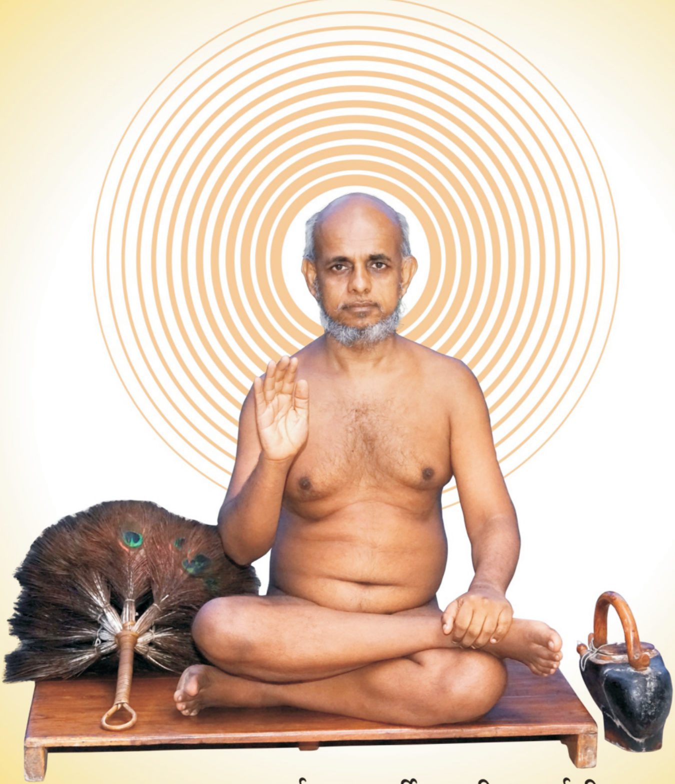

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैन साहित्य में श्रीकृष्णचरित

लेखक
राजेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशक
तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
उदयपुर (राजस्थान)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

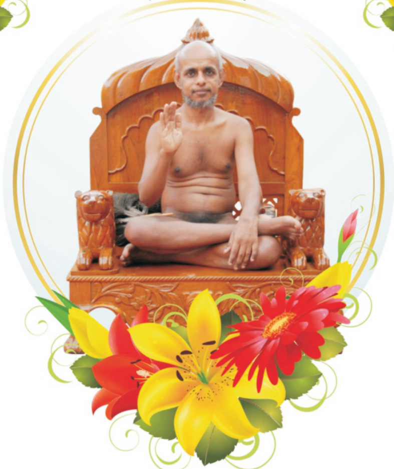

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

प्राकृत भारती पुष्प—७६

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित

(प्रयाग द्वारा साहित्य महोपाध्याय उपाधि हेतु
स्वीकृत शोध ग्रन्थ)

लेखक
उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी
के सुशिष्य
श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री
एम०ए०, साहित्यरत्न, साहित्य महोपाध्याय

संयोजक
महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

*प्रकाशक
देवेन्द्रराज मेहता
सचिव,
प्राकृत भारती अकादमी,
३८२६, मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,
जयपुर-३०२००३

सम्पत्ति लाल बोहरा
अध्यक्ष,
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय,
शास्त्री सर्कल
उदयपुर-३१३००१

*प्रथम संस्करण १९९१
*मूल्य-१०० रु०

*मुद्रक
अमर कम्पोजिंग एजेंसी
शाहदरा दिल्ली-११००३२

समर्पण

श्रद्धालोक के देवता परम पूजनीय सद्गुरुवर्य
श्रमण संघ के उपाचार्य
श्री देवेन्द्र मुनि जी म०
के
पावन कर-कमलों मे
सादर समर्पित

राजेन्द्र मुनि

प्रकाशकीय

"जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित" पुस्तक प्राकृत भारती पुष्प ७६ के रूप में प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर एवं श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर के संयुक्त प्रकाशन में प्रकाशित करते हुए हमें आनन्दानुभूति हो रही है।

इस पुस्तक के लेखक श्रद्धेय उपाध्यायवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के पौत्र शिष्य उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज के शिष्य हैं। श्री राजेन्द्र मुनि जी एक अध्ययनशील एवं साहित्यरसिक हैं। नियमित रूप से साहित्य लेखन का भी कार्य करते रहे हैं। इनकी लगभग पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनका शोध प्रबंध है जिसे उन्होंने साहित्य महोपाध्याय के लिए प्रस्तुत किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन—हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग ने इन्हे इस शोध प्रबंध पर साहित्य महोपाध्याय पद प्रदान किया था।

लेखक ने जैन साहित्य को आधार मानकर श्रीकृष्ण के संबंध में जो कुछ भी संदर्भ प्राप्त होते हैं उनका गहन परिश्रम पूर्वक संकलन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। श्रीकृष्ण के साथ बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ का अनन्य संबंध होने के कारण भ० नेमिनाथ एवं उग्रसेन पुत्री राजीमती के संदर्भों का भी इसमें समावेश हो गया है।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को आठ अध्यायों में विभक्त किया है जिसमें उन्होंने प्राकृत जैन आगम साहित्य, आगमेतर प्राकृत जैन साहित्य, संस्कृत, अपभ्रंश भाषा में रचित कृष्ण साहित्य, राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य एवं मुक्तक साहित्य में संदर्भित संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए श्रीकृष्ण की महनीयता को सगौरव प्रतिष्ठापित एवं प्रतिपादित किया है। अन्त में प्रथम परिशिष्ट में भागवत पुराणादि के आधार पर वंश परिचय-तालिकाएँ एवं परिशिष्ट दो में राधा और राजीमती के संबंध में भी सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

जैन साहित्य में नौवें वासुदेव श्री कृष्ण का क्या स्थान है ? यह समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगी, ऐसी हमारी मान्यता है।

सम्पत्ति लाल बोहरा
अध्यक्ष
श्री तारक गुरु जैन ग्रथालय,
उदयपुर

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

लेखकीय

कर्मयोगी श्रीकृष्ण का पावन पुण्य स्मरण, उनकी मधुर स्मृतियाँ हमारे अन्त-र्मानस को आनन्द विभोर कर देती हैं। वे युगपुरुष थे। उनका जीवन क्षीरसागर की तरह विराट् है। चाहे बाल्यकाल लें, चाहे युवावस्था लें, चाहे वृद्धावस्था लें सर्वत्र मधुरता है, कर्त्तव्यनिष्ठा है। चाहे जैन परम्परा हो, चाहे वैदिक परम्परा हो, चाहे बौद्ध परम्परा हो, सभी ने उस महापुरुष के गुणों का उत्कीर्तन किया है। सत्य है कि महापुरुषों की जीवन-गाथा देशातीत और कालातीत होती है। वे व्यष्टि नहीं समष्टि होते हैं। उनका चिन्तन और जीवन विशाल होता है। उसमें 'स्व' और 'पर' का भेद नहीं होता। वे सबके होते हैं और सब उनके होते हैं। यही कारण है कि वे जन्मगत कुल-परम्परा से ऊपर उठकर 'वसुधैव कुटुम्बकं' के परिचायक बन जाते हैं। उनका जीवन सीमातीत होता है। वे सभी के लिए आदर्श होते हैं। उनकी जीवन गाथाओं को लिपिबद्ध करने का एक मात्र यही उद्देश्य होता है कि उनके उदात्त जीवन से मानव प्रेरणा प्राप्त करे।

श्रीकृष्ण के जीवन के विविध-प्रसंग वैदिक परम्परा के साहित्य में विस्तार से चर्चित हैं। उनके बाल्यकाल को लेकर विपुल साहित्य निर्मित हुआ है। उनकी युवा-वस्था और रास लीला को लेकर विविध कवियों ने कमनीय कल्पना की तूलिका से उनका चित्रण किया है। वे राजनीति-विशारद हैं। महाभारत के युद्ध को टालने के लिए शान्तिदूत बनकर जो उन्होंने प्रयास किये, वे आज भी प्रेरणाप्रद हैं। श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में विष्णु के अवतार के रूप में रहे हैं। पूर्ण कला का उनके जीवन में विकास हुआ है। वैदिक परम्परा के श्री कृष्ण के रूप से जन-मानस भली-भाँति परिचित है।

जैन साहित्य में भी श्रीकृष्ण का निरूपण है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मेरे पूज्य गुरुदेव उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्म-योगी श्रीकृष्ण . एक अनुशीलन' ग्रन्थ में विस्तार के साथ सर्व प्रथम प्रकाश डाला। तब जन-मानस को ज्ञात हुआ कि जैन परम्परा मे श्रीकृष्ण का गौरव पूर्ण स्थान है। साहित्यरत्न परीक्षा के पश्चात् जब महोपाध्याय परीक्षा देने हेतु विचार उद्बुद्ध हुआ तो मैंने जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित्र पर शोध का कार्य प्रारम्भ किया। और, ज्यो-

ज्यों शोध करता गया त्यो-त्यो मुझे कई अज्ञात अभिनव ग्रन्थ भी प्राप्त हुए, जिन्हें पढकर मेरा मन मयूर नाच उठा और हृदय कमल खिल उठा।

यह स्मरणीय है कि वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण का जो रूप है उससे जैन परम्परा के श्रीकृष्ण का रूप कुछ पृथक् है। जैन परम्परा में श्रीकृष्ण एक श्लाघनीय पुरुष हैं। भगवान महावीर ने उन्हें उत्तम पुरुष कहा है। प्रारम्भ से लेकर जीवन की सान्ध्य वेला तक किसी भी प्रकार की स्खलना उनके जीवन मे नही है। भगवान अरिष्टनेमि के सम्पर्क में आकर उनका जीवन अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन में शिकार आदि का प्रसंग देखने को मिलता है पर श्रीकृष्ण के जीवन मे ऐसा कोई प्रसग नहीं है। वासुदेव होने के कारण उन्हें ३६० सग्राम करने पडते हैं, पर वे युद्ध प्रेमी नही हैं। वे सदा ही युद्ध को टालने का प्रयास करते रहे हैं। उन्होने कभी भी मासाहार किया हो ऐसा प्रसग नहीं मिलता। वे पूर्ण शाकाहारी थे। वासुदेव होने के कारण विविध सुन्दरियो के साथ विवाह उन्होंने अवश्य किया था, पर वे भोग को श्रेष्ठ नही मानते थे। उन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियो व धर्मपत्नियो को सयम-साधना ग्रहण करने की प्रेरणा दी थी। जो सयम-साधना स्वीकार करते थे उन्हें वे पूर्ण सहयोग प्रदान करते। वे पूर्ण गुणानुरागी हैं। किसी के भी दुर्गुण देखना उन्हें पसन्द नही है। उन्होंने कुत्ते के चमचमाते हुए दांतो को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की, किन्तु कीडो से कुलवुलाते हुए तन की ओर उनका ध्यान नहीं गया और न भयकर दुर्गन्ध की ओर ही उन्होंने ध्यान दिया। उनका जीवन परोपकार से मण्डित है। लडखडाते हुए वृद्ध की दयनीय स्थिति देखकर उनका हृदय करुणा से आप्लावित हो उठा और उन्होने स्वय ईंट उठाकर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया। अर्धचक्री होने पर भी उनके अन्तर्मानस मे मातृभक्ति अत्यन्त प्रबल है। वे माँ को नमस्कार करते हैं और माँ की व्यथा को दूर करने के लिए साधना भी करते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन प्रकाश-स्तम्भ की तरह प्रकाशित है। भूले भटके जीवन-राहियो का मार्ग-दर्शन देता है।

मैंने अपने शोध-प्रबन्ध मे जैन प्राकृत आगम साहित्य में, प्राकृत आगमेतर साहित्य मे, सस्कृत, अपभ्रश, हिन्दी जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण का चरित्र जहाँ-जहाँ आया है, उन सभी ग्रन्थो का तुलनात्मक दृष्टि से परिचय भी दिया है। कुछ ऐसे तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं जो सर्वथा नवीन और मौलिक हैं।

शोध-प्रबन्ध लिखने मे परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म० और गुरुदेव उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म० का सतत सहयोग तथा मार्ग-दर्शन मुझे मिला है। पूना के डा० न० वी० जोगलेकर जी निदेशक ने भी मुझे समय-समय पर सहयोग प्रदान किया है। पूजनीया मातेश्वरी महासती श्री प्रकाशवती जी म० तथा ज्येष्ठ बन्धु श्री रमेश मुनि जी, श्री सुरेन्द्र मुनि व डॉ०

साध्वी दिव्यप्रभाजी का हार्दिक सहयोग भी मेरे साहित्य-लेखन के लिए सम्बल रूप रहा है।

प्राकृत भारती अकादमी के सचिव श्री देवेन्द्रराज जी सा० मेहता का आग्रह रहा कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन प्राकृत भारती के द्वारा हो। उनके स्नेह भरे आग्रह को सन्मान देकर प्रकाशन किया जा रहा है। प्रतिभामूर्ति महोपाध्याय विनयसागर जी ने बहुत ही श्रम से ग्रन्थ का प्रूफ सशोधन कर ग्रन्थ को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का प्रयास किया है, अत उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार हो इस दृष्टि से श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर का सहयोग भी इसके प्रकाशन मे रहा है।

ज्ञात और अज्ञात रूप मे जिन-जिन के ग्रन्थो का तथा लेखो का मैंने उपयोग किया है उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है यह शोध प्रबन्ध प्रबुद्ध पाठको को रुचिकर लगेगा। जैन साहित्यकार विराट् और उदात्त विचारो के धनी थे। उन्होंने विपुल परिमाण मे विविध भाषाओ और विविध विषयो मे साहित्य का सृजन किया है। सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद और भाषावाद से ऊपर उठकर सत्य तथ्य को उजागर किया है। ऐसे उन सभी प्राचीन साहित्यकारों का मैं उपकृत हूँ। मैं आशा करता हूँ यह ग्रन्थ शोधार्थियो के लिए मील के पत्थर की तरह उपयोगी होगा।

जैन स्थानक
पाली, ५ जनवरी १६६१

राजेन्द्र मुनि 'शास्त्री'

प्रस्तावना

विश्व मे अनन्त प्राणी हैं। इन अनन्त प्राणियो मे मनुष्य भी एक प्राणी है किन्तु मनुष्य इन सब प्राणियो मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योकि वह बुद्धिमान/विवेकमान है। विवेक या बुद्धि अन्य प्राणियो के पास नही है। यही एक तत्त्व ऐसा है जो मनुष्य को अन्य समस्त प्राणियो से अलग करता है और श्रेष्ठता प्रदान करता है, परन्तु सब मनुष्य भी समान नही होते। बौद्धिक दृष्टिकोण से कुछ मनुष्य उच्चकोटि के विद्वान् होते हैं, कुछ औसत बुद्धि वाले होते है और कुछ मन्द बुद्धि वाले होते हैं। क्षमता के अनुसार भी मनुष्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है। वर्गीकरण में शास्त्रीय दृष्टिकोण की बाते करते हैं तो स्थानागसूत्र के पुरुषजात-सूत्र के अनुसार—

"पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—नाम पुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्य पुरुष। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञान पुरुष, वेद पुरुष और चारित्र पुरुष। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—वेद पुरुष, चिन्ह पुरुष और अभिलाप पुरुष। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष। उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—धर्म पुरुष (अरहन्त), भोग पुरुष (चक्रवर्ती) और कर्मपुरुष (वासुदेव)। मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उग्र, भोग और राजन्य। जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—दास, भृतक और भागीदार।"

उपर्युक्त वर्गीकरण में प्राय सभी प्रकार के पुरुष आ जाते हैं। अरहन्त—तीर्थंकर धर्मपुरुष के अन्तर्गत हैं, चक्रवर्ती भोग पुरुष हैं और वासुदेव कर्मपुरुष हैं। वैदिक परम्परा मे 'वासुदेव' श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है—वसुदेव के पुत्र होने से वासुदेव। किन्तु, जैन परम्परा में वासुदेव भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त होता है।

स्थानागसूत्र के ऋद्धिमत् सूत्र के अनुसार ऋद्धिमान अर्थात् वैभवशाली/ऐश्वर्यशाली मनुष्य पाच प्रकार के बताए गये हैं, यथा—

१. अरहन्त, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव, ४ वासुदेव और ५ अणगार।

समवायाग सूत्र के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी काल मे २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव और ९ वासुदेव हुए और आगामी उत्सर्पिणी काल में भी २४

तीर्थंकर, १२-चक्रवर्ती, ९ बलदेव और ९ वासुदेव होंगे। सन्दर्भित ग्रन्थ मे इनके नामों का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मे ५४-५४ महापुरुष होते हैं। इन चौपन महापुरुषो का विस्तृत विवरण जैन साहित्य मे पाया जाता है। आचार्य शीलांक ने तो इन महापुरुषो की संख्या पर आधृत 'चउपन्न महापुरिस चरियं' की रचना भी की है। यदि इस चौपन की सख्या में नौ प्रति वासुदेवो की संख्या और जोड दी जावे तो महापुरुषो की यह सख्या तिरसठ हो जाती है और इस आधार पर 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना हुई।

श्रीकृष्ण नौवें और अन्तिम वासुदेव हुए तथा वे बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समय हुए। दोनो एक ही परिवार मे हुए। अरिष्टनेमि के पिता समुद्र-विजय और श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव—दोनो भाई थे। श्रीकृष्ण महाभारत और जैन परम्परा के ग्रन्थो मे पाण्डवो के सहायक के रूप मे हमारे सामने आते हैं। उनका व्यक्तित्व अतिविराट था, अलौकिक था। उनके इस अलौकिक व्यक्तित्व का जितना वर्णन महाभारत मे हुआ है, उतना जैन ग्रन्थो मे नही हुआ है। युद्ध रोकने के लिए जब श्रीकृष्ण शान्तिदूत बनकर कौरवो की सभा मे हस्तिनापुर जाते हैं, तो प्रसगानुसार वे वहा अपने विराट रूप का प्रदर्शन करते हैं। ऐसे विराट रूप का वर्णन जैन ग्रन्थो मे नही किया गया है। उनके अन्य रूपो/गुणो का वर्णन लगभग समान रूप से जैन ग्रन्थो मे पाया जाता है।

जैन ग्रन्थो के अनुसार वे गुण-सम्पन्न और सदाचार-निष्ठ थे, अत्यन्त ओज-स्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें ओघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है। उनके शरीर मे अपार बल था। वे महारत्न वज्र को भी चुटकी से पीस डालते थे।[1]

श्रीकृष्ण के बाह्य व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए साहित्य मनीषी उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री[2] ने लिखा है कि श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण पूरा, सुजात और सर्वांग सुन्दर था। वे लक्षणो, व्यजनो और गुणो से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। देखने मे बडे ही कान्त, सौम्य, सुभग-स्वरूप और अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रगल्भ धीर और विनयी थे। सुखशील होने पर भी उनके पास आलस्य फटकता नहीं था।

उनकी वाणी गम्भीर, मधुर और प्रतिपूर्ण थी। उनका निनाद क्रौंच पक्षी के घोष, शरद् ऋतु की मेघध्वनि और दुन्दुभि की तरह मधुर व गम्भीर था। वे सत्य-वादी थे।

उनकी चाल मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र की तरह ललित थी। वे पीले रग के कौशेय

---

१ भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पृ० १६२

२ वही, पृ० १६३

वस्त्र पहना करते थे। उनके मुकुट में उत्तम धवल, शुक्ल, निर्मल कौस्तुभ मणि लगी रहती थी। उनके कान मे कुण्डल, वक्षस्थल पर एकावली हार लटकता रहता था। उनके श्रीवत्स का लाछन था। वे सुगन्धित पुष्पो की माला धारण किया करते थे।

वे अपने हाथ में धनुष धारण करते थे, वे दुर्धर धनुर्धर थे। उनके धनुष की टकार बडी ही उद्घोषणकर होती थी। वे शख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते थे। ऊची गरूड़ ध्वजा के धारक थे।

वे शत्रुओ के मद को मर्दन करने वाले, युद्ध मे कीर्ति प्राप्त करने वाले अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।

श्रीकृष्ण के अद्वितीय बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का दिग्दर्शन ज्ञातासूत्र के १६वें अध्ययन मे होता है। यह विवरण उनके अमरकका गमन के सन्दर्भ में है, जहा वे द्रौपदी के उद्धार के लिए जाते हैं। उनके अमरकका जाने का प्रसग जैन इतिहास मे एक आश्चर्य के रूप मे माना जाता है।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व बहु आयामी था। वे एक समाज सुधारक थे, तो एक राजनीतिज्ञ/कूटनीतिज्ञ भी थे। वे कर्मयोगी थे, तो एक कुशल सेनापति और सारथी भी थे। वे शान्ति के अग्रदूत थे, तो युद्ध में पीछे हटने वाले भी नही थे। वे गोपालक थे, कुशल निर्माता थे, सगीतज्ञ (बासुरी वादक) थे और एक श्रेष्ठ उपदेशक/दार्शनिक भी थे। समाज सुधारक के रूप मे उन्होने उन दिनो प्रचलित अन्धविश्वास और थोथी रूढियो का विरोध कर नवीन मान्यताओ की स्थापना की थी। युद्ध को टालने और समस्या का शान्तिमय समाधान करने के लिए उन्होने अन्तिम समय तक प्रयास किया था, किन्तु जब युद्ध करना पडा तो वे अर्जुन के सारथी के रूप मे प्रस्तुत हुए। युद्ध के मैदान मे जब अर्जुन ने अपने सम्मुख अपने ही बन्धु-बाधवो को देखा तो वह युद्ध विमुख हो गया। इस अवसर पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो सारगर्भित उपदेश दिया वह एक अनुपम ग्रन्थ 'गीता' के रूप मे आज सर्वत्र उपलब्ध है। श्रीकृष्ण ने इस ग्रन्थ मे आत्मा की अजर-अमरता और निष्काम कर्म का प्रतिपादन करते हुए अर्जुन की प्रत्येक शका का समाधान कर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए तैयार किया था।

गीता मे आत्मा तथा कर्म विषयक जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए है, वे करीब-करीब जैन मान्यताओ के सदृश ही हैं। आत्मा की अजर-अमरता जैन दर्शन भी स्वीकार करता है और कर्मों के अनुसार फल प्राप्ति की बात को भी। परन्तु अवतारवाद जैन दर्शन को मान्य नहीं है, जैसा कि गीता मे बताया गया है कि 'जब-जब धर्म की हानि होगी मैं जन्म लू गा।' 'मैं' का तात्पर्य यहा श्रीकृष्ण रूपी भगवान से है। जैसा कि सर्व विदित है श्रीकृष्ण को वैदिक परम्परा में भगवान विष्णु का अवतार माना गया है। यहा इतना अवश्य कहा जा सकता है कि महाभारत की पूरी

कथा भी श्रीकृष्ण के आसपास घूमती है। श्रीकृष्ण के अभाव मे महाभारत का विवरण शून्य-सा प्रतीत होता है। इस प्रकार वे महाभारत की कथा के की-मेन (Key-Men) हैं। इस कथा के सब सूत्र उनके हाथ मे रहते हैं। लेकिन इतना होते हुए भी वे इस युद्ध को टाल नहीं सके। शायद वे भी इस बात को जानते थे।

श्रीकृष्ण के जीवन के अनेक रोचक प्रसग भी हैं। उनका चचल वालपन विख्यात है। यौवन-कालीन प्रसग भी महत्त्वपूर्ण है। उन सबसे मिलकर उनका समस्त व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक बन गया है।

द्वारिका नगरी का और श्रीकृष्ण का गहरा सम्बन्ध है। आज भी समुद्र में द्वारिका की खोज की जा रही है। उसके कुछ अवशेष मिलने के भी समाचार हैं। द्वारिका की खोज करने वाले विद्वानो को चाहिए कि इसकी खोज जैन साहित्य के सन्दर्भ मे भी करने का प्रयास करें। कारण कि जैन साहित्य मे भी द्वारिका का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है। श्रीकृष्ण के पूर्व जो द्वारिका थी, वह समुद्र मे डूबी हुई थी, उसी स्थान पर श्रीकृष्ण के लिए द्वारिका का निर्माण किया गया था। अस्तु, इस दिशा मे कुछ रचनात्मक कार्य करने की अपेक्षा है, जिससे वास्तविकता का पता चल सके।

श्रीकृष्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है। काल-क्रमानुसार प्रचलित भाषाओ मे विद्वानो ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर अपनी लेखनी चलाई है। श्रीकृष्ण पर स्वतन्त्ररूप से तो लिखा ही गया, साथ ही कौरव-पाडवों पर जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसमे भी श्रीकृष्ण पर लिखा गया है। कौरव-पाडव गाथा मे श्रीकृष्ण की उपेक्षा नही की जा सकती है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण विषयक विवरण लोक-साहित्य मे भी मिलता है, किन्तु समग्र लोक-साहित्य को सकलित कर पाना बडा कठिन कार्य है। आज भी अनेक ऐसे लोक-गीत/लोक-कथाए हैं जो सकलन से बाहर हैं। श्रीकृष्ण विषयक लोक-साहित्य का संकलन और अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। सम्बन्धित विद्वानो को इस दिशा में प्रयास करना चाहिए।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, उतना ही व्यापक उनका प्रभाव भी था। लगभग सभी धर्मों के विद्वानो ने उन पर अपनी कलम चलाई है। जैन धर्म मे भी श्रीकृष्ण को महत्व दिया गया है, किंतु जिस रूप मे हिंदू धर्म मे उनका स्थान है, उस रूप मे नही। जैन धर्म के विद्वानो ने श्रीकृष्ण विषयक साहित्य की भरपूर रचना की, जो आज हमारी अमूल्य धरोहर है। इस प्रकार के समग्र साहित्य को एक स्थान पर सकलित करना बडा कठिन कार्य है। यह कार्य सम्पन्न किया है, साहित्य वाचस्पति श्रमणसघीय उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म० सा० शास्त्री के सुयोग्य शिष्य-रत्न श्री राजेन्द्र मुनि जी ने। श्री राजेन्द्र मुनि जी ने कठोर परिश्रम करके 'जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित' नामक इस ग्रन्थ की रचना की है, जो उनकी अध्ययन-शीलता का प्रतीक है। प्रस्तुत ग्रन्थ का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

'जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित' नामक इस ग्रन्थ की रचना नौ अध्यायो मे की गई है।

प्रथम अध्याय मे शोध की अनुकूलता बताई गई है और प्रतिपाद्य विषय का परिचय दिया गया है। इसमें आपने विषय की व्यापकता को स्वीकार करते हुए इस विषय को शोध के अनुकूल बताया है।

द्वितीय अध्याय मे श्रीकृष्ण विषय पर प्राकृत जैन आगम साहित्य का परिचय दिया गया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में आगम शब्द की परिभाषा करते हुए आगम के पर्यायवाची शब्दो पर प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् आगम साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इनमें उन स्थलो की ओर भी सकेत किया गया है, जहा श्री कृष्ण विषयक विवरण आया है।

तृतीय अध्याय मे प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य का बिन्दुवार परिचय दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित सस्कृत जैन साहित्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे काव्यों और महाकाव्यों का विस्तार से परिचय देने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय मे अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य का विवरण है। षष्ठ अध्याय में प्राकृत, अपभ्रश, संस्कृत तथा हिन्दी पर आधारित जैन श्रीकृष्ण कथा का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय काफी समृद्ध है और विषय विवेचन भी यथेष्ट रीत्यनुसार किया गया है।

सप्तम अध्याय में हिन्दी और जैन श्रीकृष्ण रास-पुराण साहित्य व अन्य साहित्य का परिचय दिया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत समाहित साहित्य की विस्तार से चर्चा भी की गई है। आठवें अध्याय में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार 'जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित' नामक इस शोध प्रबन्ध के उपर्युक्त आठ अध्यायो मे श्रीकृष्ण विषयक जैन परम्परा में रचित समस्त ज्ञात साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह मुनिश्री का श्लाघनीय कार्य है। श्रीकृष्ण पर शोध करने वाले अध्येताओ के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक सहायता प्रदान करने वाला सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी प्रकार के अन्य परम्पराओ में रचित साहित्य पर भी यदि कार्य किया जाता है तो वह उपयोगी होगा और समस्त भारतीय परम्पराओ मे श्रीकृष्ण पर उपलब्ध सामग्री एक स्थान पर एकत्र हो सकेगी। श्रीकृष्ण के विषय मे विदेशी विद्वानो ने भी जो कुछ लिखा है, यदि उसे भी इस प्रकार के साहित्य के साथ जोड लिया जाये तो वह भी उपयोगी होगा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अन्तिम नौवा अध्याय है, तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एव उपसंहार। प्रारम्भ के आठ अध्यायो मे तो मुनिश्री ने श्रीकृष्ण विषयक जैन परम्परा के उपलब्ध साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है, किन्तु इस अन्तिम अध्याय मे आपने अपने अध्ययन का निचोड़ प्रस्तुत किया है जो इस शोध प्रबन्ध का महत्वपूर्ण भाग है। इस अध्याय का एक महत्त्वपूर्ण भाग वैदिक परम्परा और जैन परम्परा मे श्रीकृष्ण कथा का तुलनात्मक विवेचन भी है। तुलनात्मक अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण बिन्दुओ का समाधान तो होता ही है, अन्तर का भी ज्ञान हो जाता है, साथ ही मान्यता भेद भी स्पष्ट हो जाता है।

इस पुस्तक के पूर्व मुनिश्री की और भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें उनकी विद्वत्ता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। उसी कड़ी में यह शोध प्रबन्ध मुनिश्री को एक गम्भीर अध्येता के रूप मे प्रस्तुत करता है। मैं कामना करती हू कि मुनिश्री की लेखनी निरन्तर प्रवहमान रहे और वे इसी प्रकार उच्च कोटि के ग्रन्थ-रत्न मा भारती के भण्डार की अभिवृद्धि के लिए प्रस्तुत करते रहें।

उज्ज्वल भविष्य की कामनाओं के साथ।

जैन-साध्वी-डॉ०-दिव्यप्रभा
एम० ए०, पी-एच० डी०

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	नाम	पृष्ठांक
१	विषय की शोधानुकूलता और भूमिका	१-८
२	प्राकृत जैन आगम—श्रीकृष्ण साहित्य	९-२१
३.	प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य	२२-३७
४	सस्कृत जैन श्रीकृष्ण साहित्य	३८-१११
५	अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य	११२-१२९
६	प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत तथा अन्य (हिन्दी) पर आधारित जैन श्रीकृर्ष्ण कथा का विवेचन	१३०-१८७
७.	हिन्दी जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण साहित्य और अन्य	१८८-२२३
८	हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य	२२४-२४७
९	तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एव उपसहार	२४८-२६८
	परिशिष्ट-१ वश-परिचय तालिकायें	२६९-२७७
	परिशिष्ट-२ राधा और राजीमती	२७८-२८७
	सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	२८८-२९६

१

विषय की शोधानुकूलता और भूमिका

विषय की शोधानुकूलता

श्रीकृष्ण "वासुदेव" विश्व की महानतम विभूतियो में अग्रगण्य हैं। साहित्य जीवन की समस्त गतिविधियों, स्वरूपो और प्रवृत्तियों का दर्पण होता है। साहित्य ही समाज, संस्कृति, दर्शन और आदर्शों का सफल वाहक होता है। ऐसी स्थिति मे किसी विभूति के वर्चस्व कसौटी पर श्रीकृष्णचरित सौ-फीसदी खरा सिद्ध होता है। इस देश मे साहित्य की अत्यन्त प्राचीन और अति समृद्ध परम्परा रही है। श्रीकृष्ण इस परम्परा में आद्योपांत विद्यमान हैं। वैदिक साहित्य से लेकर अधुनातन साहित्य तक की इस विषय यात्रा में हमारा साहित्य सदा गतिमान रहा है। इस यात्रा मे अनेक मोड आए, अगणित पडाव आए। प्रत्येक मोड़ और प्रत्येक पडाव में हमे श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। भारतीय वाङ्मय का स्वरूप बदल गया, कथ्य और प्रमुख लक्ष्यो में परिवर्तन होते गए। काव्यरूप और कलेवर बिगडते बनते गए, भाषाओ के माध्यम नव-नवीन होते चले गए किन्तु कृष्ण-चरित्र की परंपरा अस्खलित और अक्षुण्ण बनी रही है।

वेदो मे व इतर संस्कृत साहित्य में पिंगल, अपभ्रंश और ब्रज आदि सभी भाषाओ में श्रीकृष्ण सबंधी विपुल साहित्य रचा गया है। यह तथ्य इस बात का प्रबल द्योतक है कि भारत का जन-जीवन कितना कृष्णमय है। लोक जीवन पर श्रीकृष्ण का प्रभाव अत्यन्त गहन रूप में अकित हैं—इसका प्रमाण हमारा लोक साहित्य है। भारत के लोक जीवन और भारतीय सस्कृति को जितनी दूर तक श्रीकृष्ण चरित प्रभावित कर पाया है, कदाचित् उतना प्रभाव किसी अन्य दिशा से ग्रहण नही किया जा सकता। समस्त प्रादेशिक भाषाओ का साहित्य श्रीकृष्ण के रग से रंजित है। श्रीकृष्ण के आदर्शों,

नीतियों और आचरण में एक-रसता है, एक आकर्षण है, एक समाजोपयोगिता है। श्रीकृष्ण चरित्र की लोकप्रियता के मूल में यही बातें प्रमुख रूप से हैं।

भारत में वैदिक मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य भी नाना प्रकार के मत, विश्वास, पंथ और आध्यात्मिक सिद्धात अस्तित्व में रहे हैं और आज भी हैं। इनमें से अधिकांश ने अपने-अपने ढग मे अपने-अपने आदर्शों के अनुरूप श्रीकृष्ण चरित को महत्व प्रदान किया है। उदाहरण के लिए बौद्ध धार्मिक साहित्य मे भी श्रीकृष्ण चरित अपने विशिष्ट रूप में मिलता है। पर, मेरे अध्ययन का यह विषय नहीं है।

जैन श्रीकृष्ण साहित्य अपनी परम्पराओ से अनेक दृष्टियो मे विशिष्ट कोटि का माना जा सकता है। भारतीय वाङ्मय की विशद यात्रा के सहचर के रूप मे जैन साहित्य का अति गरिमामय स्थान है। संस्कृत साहित्य अपनी श्री और समृद्धि के लिए निश्चय ही अद्भुत महत्त्व रखता है, किंतु इसके साथ ही यह भी एक तथ्य है कि जैन साहित्य ने संस्कृत साहित्य की श्री एवं समृद्धि की वृद्धि में उल्लेखनीय योगदान दिया है। जैन संस्कृत साहित्य की अपनी निराली ही छवि है और उससे समग्र सस्कृत वाङ्मय को एक अद्भुत निखार मिला है। इसके पश्चात् भी साहित्य के प्रत्येक मोड़ पर हमें जैन साहित्य की महत्ता के दर्शन होते हैं। अपने इस विशाल साहित्य भडार में जैन साहित्य ने श्रीकृष्ण चरित को जिस प्रकार सहेज कर रखा है उससे स्वय उसकी भी गरिमा अभिवर्धित हुई है।

श्रीकृष्ण का विभूतिमत्व

यह अति सामान्य सी धारणा है कि श्रीकृष्ण वैदिक परंपरा की विभूति है और वैदिक साहित्य में ही श्रीकृष्ण के चरित को स्थान प्राप्त हुआ है। वास्तविकता इससे भिन्न है। जैन साहित्य को इस यथार्थ के प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें श्रीकृष्ण चरित को अत्यन्त महत्त्व और विपुलता के साथ ग्रहण किया गया है।

जैन श्रीकृष्ण साहित्य की समग्र निधि पूरे जैन साहित्य में एक बड़ा अश व्याप लेती है। मेरे शोध अध्ययन का एक हेतु इस जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन करना है।

यह भी प्रमुख रूप से ध्यातव्य है कि जैन साहित्य ने एक अनूठे ढग से ही श्रीकृष्ण चरित्र को अपनाया है। श्रीकृष्ण का स्वरूप जैनादर्शों एवं मान्य-

ताओ के अनुरूप है। वैदिक परम्परा मे श्रीकृष्ण का जो स्वरूप है, जैन साहित्य मे उसकी ही अनुकृति मिलती होगी - यह कल्पना भ्रांति ही सिद्ध होगी। श्रीकृष्ण चरित को जैन वाङ्मय में जिस प्रकार स्थान प्राप्त हुआ है, उसकी गौरवगाथा निराली ही है। जैन वाङ्मय का आदि रूप आगम ग्रन्थ है। इन आगम-ग्रन्थो से ही किसी न किसी रूप मे श्रीकृष्ण चरित का चित्रण आरम्भ हो गया था।

नेमिनाथ और श्रीकृष्ण

२२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के समकालीन श्रीकृष्ण रहे हैं। श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्रविजय जी के आत्मज ही भगवान् अरिष्टनेमि थे। इनके पश्चात् २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ हुए। तब कालान्तर में इस अवसर्पिणी काल के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का उद्भव हुआ। भगवान् महावीर स्वामी अपने धर्म की शिक्षाओ और सिद्धांतो का प्रचार अद्भुत रीति से किया करते थे। धार्मिक सिद्धातो के प्रतिपादन के प्रयत्न मे व उनके समर्थन मे वे तत्कालीन प्रचलन प्राप्त लोकाख्यानो का आश्रय लेते थे। इस प्रकार भगवान के प्रवचनो मे श्रीकृष्ण जीवन के प्रसग भी उतर आए।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि भगवान् के लिए श्रीकृष्ण प्रसग का कभी भी लक्ष्य नही रहा, ये प्रसग तो साधन स्वरूप स्वीकार किए गए थे, और उनका साध्य तो जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रचार ही था, यही साध्य था। साधना का स्वरूप साध्यानुकूल ही होता है। अस्तु, श्रीकृष्ण चरित का ऐसा स्वरूप उभरा जो कि जैन धर्म के आदर्शों, नीतियो और सिद्धाँतों के अनुरूप था। भगवान् के उपदेशो को लेखबद्ध और विशेष क्रम युक्त करने के सुनियोजित प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप जैनागम ग्रन्थ अस्तित्व में आए। आगमो के आदर्शानुरूप ही आगमेतर जैन साहित्य विकसित होता चला गया। परिणामत. समग्र जैन साहित्य श्रीकृष्णमय हो गया। जैन आगमेतर श्रीकृष्ण साहित्य मे भी मेरे शोध विषय की सामग्री आ गयी है।

जैसा कि सकेतित किया गया है श्रीकृष्णचरित को एक विशिष्ट स्वरूप मे जैन साहित्य के द्वारा ग्रहण किया गया है, तो यह जिज्ञासा भी बड़ी सहज और स्वाभाविक प्रतीत होती है कि वह विशिष्ट स्वरूप कौन सा है? जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित की क्या विशेषताएं हैं? और वह वैदिक परपरा के श्रीकृष्ण चरित से किस प्रकार भिन्न है? इस जिज्ञासा की तुष्टि अन्वेषण,

गवेषण और शोध की अपेक्षा रखती है और यह अपेक्षा भी प्रस्तुत शोध कार्य के मूल में एक सबल प्रेरणा रही है।

वस्तुतः जैन साहित्य में श्रीकृष्ण के चरितगत वैशिष्ट्य और उनका वैदिक श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं के साथ आपेक्षिक अध्ययन गवेषणा का एक व्यापक पट प्रस्तुत कर देता है। इन शोधों के परिणाम-स्वरूप श्रीकृष्ण चरित के विभिन्न आयाम तो प्रकाशित हुए ही हैं, साथ ही जैन धर्म के अनेक मूल सिद्धातो को भी पुनर्बल प्राप्त हुआ है जो इन विशेषताओं के मूल मे रहे हैं और जिनकी अनुरूपता में श्रीकृष्ण चरित के इस नव्य रूप को आकार प्राप्त हुआ है। निःसदेह जैन साहित्य के श्रीकृष्ण जैन मान्यताओं के धरातल पर अवस्थित परम शक्तिशाली महापुरुष हैं और वैदिक मान्यताओ से भिन्न स्वरूप के वाहक हैं।

वैदिक परंपरा में श्रीकृष्ण को "वासुदेव" कहा गया है। जैन परंपरा मे भी वे वासुदेव हैं। किन्तु, श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त किए गए इस अपर नाम का प्रयोजन दोनो मान्यताओं मे भिन्न-भिन्न रहा है। वसुदेव के पुत्र होने के नाते श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में वासुदेव कहलाते हैं। इसके विपरीत जैन परम्परा मे श्रीकृष्ण को एक विशेष प्रयोजन से वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव इस मान्यता में किसी व्यक्ति विशेष के नाम के रूप मे प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहाँ यह श्रीकृष्ण के लिए एक पद है। वासुदेव जातिवाचक संज्ञा है। वासुदेव एक वर्ग विशेष अथवा श्रेणी विशेष है। वैदिक परपरा में अकेले श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा गया है जबकि जैन परम्परा मे, वासुदेवो की एक परंपरा रही है—जैसे तीर्थंकरो की एक परंपरा है। वासुदेवो की इस परपरा मे श्रीकृष्ण अन्तिम अर्थात् ९वें वासुदेव हैं। स्पष्ट है कि इनके पूर्व भी ८ अन्य महापुरुषो को वासुदेव होने का गौरव प्राप्त हो चुका है। जैसे लक्ष्मण वासुदेव इत्यादि।

यहाँ सहज ही यह जिज्ञासा पुनः बलवती हो जाती है कि यदि वासुदेव कोई पद अथवा वर्ग या श्रेणी विशेष है तो इस वर्ग या श्रेणी की क्या विशेषता है ? वस्तुतः यह जैन मान्यता से संबद्ध एक विशिष्ट पक्ष है। परिवर्तनशील समय के साथ-साथ धर्म भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करते हुए अपने चरम स्तर पर पहुचकर आकर्षोन्मुख होता है और अंततः पुनः अपकर्षोन्मुख हो जाता है। जैन मान्यतानुसार उत्कर्ष और अपकर्ष काल को क्रमशः उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी काल के नाम से जाना जाता है और इन दोनो को मिलाकर एक कालचक्र कहा जाता है। प्रत्येक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल में एक-एक तीर्थंकर परम्परा रहती है। प्रत्येक परम्परा में २४ तीर्थंकर

होते है। इनके अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव होते हैं, और ९ बलदेव होते हैं, इस प्रकार ६३ श्लाघनीय महापुरुष प्रत्येक काल मे होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल मे इन परमपूज्य महापुरुषो का वर्णन "त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित" में किया गया है।

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण वासुदेव हैं

वासुदेव महान वीर और अपराजेय होते हैं। वे ३६० युद्ध करते हैं और कभी पराजित नही होते हैं। २० लाख अष्टापद जानवरों की ताकत शक्ति रखने-वाले वासुदेव कभी भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नही करते। बलशाली होकर भी वे उपास्य नही होते। उपास्य तो केवल तीर्थंकर ही होते हैं और स्वय वासुदेव भी तीर्थंकरो की उपासना करते हैं। वासुदेव अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक होते हैं। अध्यातम क्षेत्र में निदानकृत होने के कारण वे चौथे गुणस्थान से आगे नही बढ पाते। तीर्थंकरत्व की सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि उनके लिए सभव नही होती। प्रत्येक वासुदेव के पूर्व कोई प्रतिवासुदेव होता है, जिसका तीन खण्डो पर आधिपत्य होता है, और जीवन के अन्तिम भाग मे वह सत्ता और शक्ति के मद मे उन्मत्त रहने लगता है। ऐसी स्थिति मे प्रतिवासुदेव अन्यायी और अत्याचारी हो जाता है। इस अत्याचार को समाप्त करने एव दुर्बलजनो की रक्षा करने के लिए वासुदेव उससे युद्ध करता है और प्रतिवासुदेव का विनाश होता है। वासुदेव ही प्रति-वासुदेव के त्रिखड साम्राज्य का स्वामी हो जाता है।

श्रीकृष्ण वासुदेव थे। जरासध प्रतिवासुदेव था। बलदेव सदा वासुदेव का सहायक होता है और इस त्रिपुटी मे बलराम ही बलदेव थे। जैन साहित्य में श्रीकृष्ण का चरित स्वरूप इसी प्रकार वासुदेव के रूप मे उभरा है। वे पराक्रमी शक्तिशाली और शूरवीर हैं। वासुदेव के रूप में श्रीकृष्ण महापुरुष हैं।

वासुदेव होने के नाते जैन परम्परा मे श्रीकृष्ण उपास्य नही अपितु तीर्थंकर के उपासक हैं। इसके विपरीत श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में आराध्य हैं, उपास्य हैं। वे भागवत धर्म के प्रवर्तक हैं। वे विष्णु के अवतार हैं। श्रीकृष्ण निराकार परमात्मा के सगुण रूप हैं। अवतारवाद का मूल आधार यही रहा है कि परमात्मा दुष्टों के दलन एवं दुर्बलों के रक्षण हेतु मानव देह धारण कर धरती पर अवतरित होते हैं। मनुष्य तो इस परम्परा में ईश्वर नहीं बन

सकता, परन्तु ईश्वर अवश्य मनुष्य बन सकता है और धर्म की पुनर्स्थापना करता है।

वासुदेव के रूप में श्रीकृष्ण को मान्य समझने वाली जैन परम्परा उन्हें अवतार नही मानती। जैन परम्परा अवतारवाद को ही स्वीकार नही करती। यह परम्परा उत्तारवाद का समर्थक व अवतारवाद की विरोधक रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र के शिरोमणी तीर्थंकर भी अवतार नही माने जाते। जैन दर्शन में तो मनुष्य ही सर्वोपरि महत्ता संपन्न है। ईश्वर की परिकल्पना जैन दर्शन में कभी नही रही है। मनुष्य ही सन्मार्गानुसरण से उत्तरोत्तर उन्नत होता हुआ चरमस्थिति का लाभ कर सकता है। जैन धर्म उत्तारवाद का विरोधक नही है। वैदिक परम्परा में ईश्वर मानवदेह धारण कर ऊपर से नीचे की ओर आता है, निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर बढता है, निर्विकार से विकार की ओर अग्रसर होता है। इसके विपरीत जैन परम्परा मे मनुष्य नीचे से ऊपर की ओर बढता है, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर, विकार से निर्विकार की ओर अग्रसर होता है। यह भी मेरे शोध अध्ययन के अंतर्गत आया है।

इस दृष्टि से जैनादर्शों को श्रीकृष्ण चरित्र मे भिन्न-भिन्न भाषाओ के साहित्य मे किस प्रकार अपनाया गया है यह भी एक खोज की दिशा हो सकती है। मेरे सामने जैन श्रीकृष्ण साहित्य की अध्येतव्य सामग्री प्राकृत आगम, प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य और संस्कृत तथा अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य के साथ-साथ हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य रहा है। अत मैंने अपने अनुशीलन की सुविधा की दृष्टि से इस शोधाध्ययन के इस विषयप्रवेश के अतिरिक्त कुल नौ अध्यायो मे इस शोध सामग्री को विभाजित किया है। इनके समग्र अध्ययन से यह बिखरा हुआ जैन श्रीकृष्ण साहित्य एक उपयोगी दिशा निर्देश कर श्रीकृष्ण के अध्ययन मे एक नया मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

इसीलिए इसी गवेषणा के सूत्र को पकडकर मैं अपने शोधाध्यन में प्रवृत्त हुआ। एक जैन मुनि होने के नाते भी इस जैन श्रीकृष्ण साहित्य से जैनादर्शों का अध्ययन करने मे मेरी स्वाभाविक रुचि भी रही थी जिसने मुझे इसके अनुशीलन की प्रेरणा दी। जैसा मैं पूर्व मे कह चुका हूं मैंने अपने शोध का आरम्भ इसकी शोधानुकूलता के कारण सहित इस अध्याय मे बताकर द्वितीय अध्याय मे प्राकृत जैन आगम श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय में मैंने प्राकृत आगमेतर श्रीकृष्ण साहित्य को परखा और समझा है तथा अपने तथ्य प्रस्तुत कर दिए हैं। चतुर्थ अध्याय में कुछ विस्तृत रूप में संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य की मैंने गवेषणा की है तथा कुछ अपने निष्कर्ष भी प्रस्तुत कर दिए हैं। पंचम अध्याय में मैंने अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य का आलोड़न करते हुए जो तथ्य हाथ लगे उनका अध्ययन प्रस्तुत कर दिया है।

इस तरह मेरे पास जैन परम्परा में श्रीकृष्ण साहित्य की अब तक बहुत सी ऐसी सामग्री प्रस्तुत हो गई थी जिसके आधार पर इन जैन आयामों के साथ में आगम, आगमेतर, पुराण चरित, महाकाव्य जैसे कथानकों से प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण कथा को संक्षिप्त रूप से उपलब्ध कर सकता था। षष्ठ अध्याय में मैंने यही कार्य कर दिया हैं। ऐसा करते हुए मैंने इस कथा के संदर्भ भी यथास्थान दे दिए हैं।

सप्तम और अष्टम अध्यायों में मैंने क्रमशः हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास और पुराण साहित्य का और हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तककाव्यों का अनुशीलन प्रस्तुत किया है। दोनों अध्यायों के अंत में मैंने अपनी खोज में उपलब्ध तथ्यों और निष्कर्षों को भी दे दिया है।

नवम अध्याय में मैंने उपसंहार के रूप मे अपने शोधात्मक निष्कर्षों को देकर एक तुलनात्मक तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। अत मे तीन परिशिष्टो में मैंने क्रमशः जैन श्रीकृष्ण कथा के सदर्भ में (१) भौगोलिक परिचय, (२)वंश परिचय (३) राज और राजनीति और अन्त में (4) सदर्भ ग्रन्थ सूची दे दी है। इस तरह मेरे शोध कार्य की यह विनम्र भूमिका है।

श्रीकृष्ण चरित्र को प्रतिपाद्य विषय बनाकर जैन लेखको ने एक दीर्घ परम्परा मे इसे साहित्य की अनेक विधाओं में विशेषतः चरित्र महाकाव्यो, पौराणिक महाकाव्यो, खण्डकाव्यो और स्फुट या मुक्तक काव्यो के रूपों मे इसे प्रस्तुत किया है। इसमे श्रीकृष्ण के साथ २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि या नेमिनाथ, बलराम, प्रद्युम्न, गजसुकुमाल, जरासंध, कस, रुक्मिणी और पंच पाँडवो का भी समावेश है। इन प्रमुख पात्रो के साथ अन्य गौण पात्र भी अनेक आये हैं। इनका यथासभव यथास्थान मैंने अपने इस शोध प्रबंध में यथोचित ढग से विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। जैन दार्शनिक दृष्टि जीवन में सयम, वैराग्य सिखाकर, मोक्षगामी बनाकर कैवल्य की प्राप्ति कराती है। इस अध्ययन में श्रीकृष्ण चरित्र के संदर्भ-संपर्क में जो प्रमुख और गौण पात्र आए

हैं वे अधिकतम ऐसे हैं जो इस ध्येय पथ पर अग्रसर हुए हैं और उसे प्राप्त कर चुके हैं।

विषय अति व्यापक है और निश्चय ही शोधकार्य के अनुकूल भी। अतएव इसके सर्व संभावित पक्षो को पूर्णत व्यवस्थित कर पाना एक कठिन कार्य है। सारे जैन स्रोतो का आश्रय लेते हुए उन्हे स्वीकार किया गया है। जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित का एक सर्वपक्षीय चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न यहाँ पर किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध जैन जैनेतर सभी के लिए विशिष्ट लाभकारी प्रतीत होगा इसी मे शोधकार्य का साफल्य भी निर्भर है, ऐसी मेरी विनम्र धारणा है।

२

प्राकृत जैन आगम—श्रीकृष्ण साहित्य

भारतीय जन मानस में कृष्ण का व्यक्तित्व अनेक रूपों मे आया और उभरा है। इसमे कृष्णचरित्र का जो ताना-बाना गूथा गया उसमें वैदिक, बौद्ध और जैन विचार के अनुसार ही कृष्ण के व्यक्तित्व मे अनेक रंग और अनेक विशेषताएं आकर के घुलमिल गई हैं। इस परिस्थिति में शोधकर्ता के सामने अनेक समस्याएं खडी हो जाती हैं। कृष्णचरित्र और उसके जीवन के प्रसग भिन्न-भिन्न भाषाओ में और भिन्न-भिन्न कालों मे संग्रहीत हुए हैं। इसलिए उसका एक सूत्रबद्ध विकास क्रम प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है। शोध की अपनी एक विशिष्ट पद्धति हुआ करती है। शोधक जिस पद्धति को लेकर अपना शोधकार्य आगे बढाना चाहता है उसमें कुछ आधारभूत तथ्य लेकर चलना पड़ता है। मैंने अपने विषय प्रवेश मे इस शोध विषय के महत्व को आका है। यहाँ पर इस अध्याय मे मैं प्राकृत आगम जैन साहित्य में "श्रीकृष्ण" इस विकास का अनुशीलन प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यहां पर 'आगम' शब्द जैन साहित्य में एक विशेष महत्व रखता है। इसलिए प्रथम आगम शब्द की परिभाषा और उसकी व्याप्ति पर मैंने विचार किया और बाद मे आगम के जिन पर्यायो का प्रयोग जैन साहित्यकारो ने कृष्ण जीवन के प्रसगो और जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के जीवन के प्रसगो के साथ किया है और उसे लेकर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के साथ मिलाया है। इसमे कुछ गुण साम्य है, कुछ गुण सामर्थ्य साम्य और कुछ अपनी विशेषताएँ और वैषम्य भी। इन सब को आगम और आगमेतर की भिन्न-भिन्न विधाओ मे जैन साहित्यकारों ने सर्जित किया है। इनकी भाषा प्राकृत रही हैं। यहाँ पर मैं केवल 'आगम' को लेकर ही अपनी बात कहूंगा। आगमेतर जैन श्रीकृष्ण-साहित्य का विवेचन तृतीय अध्याय में किया जायेगा।

आगम शब्द-मीमांसा

आगम शब्द "आ" उपसर्ग और गम् धातु से निष्पन्न हुआ है। "आ" उपसर्ग का अर्थ समतात् अर्थात् पूर्ण है तथा गम् धातु का अर्थ गति प्राप्त करना है। 'आगम' शब्द की अनेक परिभाषाएं आचार्यों ने की हैं, जैसे :—

(१) जिससे वस्तुत्व या पदार्थ रहस्य का परिज्ञान हो जाय वह आगम है।[1]

(२) जिससे पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम है।[2]

(२) जिससे पदार्थों का परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान हो जाय वह आगम है।[3]

(४) आप्तवचन से उत्पन्न अर्थ या पदार्थ ज्ञान आगम कहलाता है।[4]

(५) आप्त का कथन आगम है।[5]

(६) उपचार से आप्तवचन भी आगम माना जाता है।[6]

जिससे सही शिक्षा प्राप्त होती है, विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है, वह 'शास्त्र-आगम', 'श्रुतज्ञान' कहलाता है।

आगम के पर्यायवाची शब्द

मूल वैदिक शास्त्रो को जैसे वेद और बौद्ध शास्त्रों को जैसे पिटक कहा जाता है, वैसे ही जैनशास्त्रों को 'श्रुत' 'सूत्र' या 'आगम' कहा जाता है। जैनागमो मे दर्शन और जीवन का आचार एव विचार की भावना

---

१ आसमन्तात् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेनेत्यागम ।

२ आगम्यते मर्यादयाऽवबुध्यन्तेऽर्था अनेनेत्यागम —रत्नाकरावतारिकावृत्ति।

३ आ-अभिविधिना सकलश्रुतविद्याव्याप्तिरूपेण, मर्यादया वा यथावस्थितरूपया गम्यन्ते-परिच्छिद्यन्ते अर्थायेने स आगम ।

—आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, नन्दीसूत्रवृत्ति।

४ आगच्छत्याचार्यपरम्परयार्थावधारणमित्यागमः।

—सिद्धसेनगणीकृत-तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी टीका

५ आप्तोपदेशः शब्द —न्यायसूत्र १-१७

६ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागम उपचारादाप्तवचन च।

—स्याद्वादमंजरी-२ श्लो० टीका

तथा कर्त्तव्य का जैसा सुन्दर समन्वय हुआ है वैसा अन्य साहित्य में दुर्लभ है।[7]

आजकल 'आगम' शब्द का प्रयोग अधिक होने लगा है किन्तु अतीत काल में 'श्रुत' शब्द का प्रयोग अधिक होता था। श्रुतकेवली, श्रुतस्थविर जैसे शब्दो का प्रयोग भी आगमो में अनेक स्थलो पर हुआ है।[8] किन्तु कहीं पर भी आगम केवली या आगम-स्थविर का प्रयोग नहीं हुआ है।

सूत्र, ग्रंथ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापन, आगम, आप्तवचन, ऐतिह्य आम्नाय और जिन वचन, श्रुत ये सभी शब्द आगम के ही पर्यायवाची शब्द है। श्रमण भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इंद्रभूति गौतम ने इस जिनवाणी को १२ अंग ग्रथो तथा १४ पूर्वों के रूप मे सयोजित किया था। अग ग्रथो तथा पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं,—

१२. अंग-ग्रंथ—आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानांग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद।

१४ पूर्व—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, अवंध्य, प्रणायु, क्रियाविशाल, लोकबिन्दुसार।

जो मुनि उपरोक्त सम्पूर्ण वाणी की अवधारणा कर सका उसे श्रुत-केवली कहा गया। श्रुतकेवली शब्द से यह प्रतिभासित होता है कि जिन वाणी प्रारम्भ मे श्रुतरूप मे ही सुरक्षित रही। जिस प्रकार वेद-वेदाग लम्बे समय तक श्रुति-रूप में बने रहे। यही स्थिति प्रारंभ मे जैन साहित्य की बनी रही। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्रुतकेवली ६ हुए हैं जिनमे से भद्रबाहु अतिम थे।[10]

---

७ सा सिज्झइ जेण वय सत्थ त बा विसेसिय नाणे।
आगम एव य सत्थ आगमसत्थ तु सुयनाण।

८. नन्दीसूत्र—विशेषावश्यकभाष्य गा० ५५६

९ सुयसुत्तगन्थसिद्ध तपवयणे आणवयणउवएसे पण्णवण्ण आगमे या एकट्ठा पज्जवा-सुत्ते—अनुयोगद्वार, विशेषावश्यक भाष्य

१०. प्रभवस्वामी, शयम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय और भद्रबाहु (श्वेताम्बर परपरानुसार)

भद्रबाहु के समय यानि ई०पू० ३२५ में मगध में १२ वर्ष का दुष्काल पडा था, उस समय ससघ भद्रबाहु मगध से प्रस्थान कर गये थे। दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु की अनुपस्थिति मे मुनिवर स्थूलभद्र के सान्निध्य मे पाटलीपुत्र नगरी मे लुप्त होते जा रहे आगमो की गंभीर समस्या को लेकर मुनि-सम्मेलन आयोजित किया गया था।[11] इसमें लुप्त होते जा रहे आगमो को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। इस प्रयास क्रम मे ११ अग ही एकत्रित किए जा सके। १२वाँ दृष्टिवाद तथा १४ पूर्वों का ज्ञान नि शेष हो गए। जो अग एकत्रित किए गए उन्हे लेकर भी मतभेद खड़े हुए कि ये प्रामाणिक हैं या नही। भद्रबाहु के साथ मगध से जो साधुसघ चला गया उसने प्रामाणिकता को स्वीकार नही किया और इस प्रकार सूत्रो की प्रामाणिकता को लेकर दो भागो मे यह सघ विभक्त हो गया। एक वर्ग (श्वेताम्बर सप्रदाय) ११ अंगो को प्रामाणिक मानता है तो दूसरा वर्ग (दिगबर संप्रदाय) सपूर्ण आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता हुआ इसे अस्वीकार करता है। यह संप्रदाय आगमो के आधार पर रचित कतिपय ग्रंथो को आगम साहित्य के रूप मे स्वीकार करता है।[12]

ये ग्रथ क्रमश इस प्रकार हैं

(१) षट्खण्डागम—इसकी रचना प्राकृत भाषा मे आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य भूतबलि ने और आचार्य पुष्पदन्त ने वीर निर्वाण की सातवी शताब्दी मे याने ई० सन् दूसरी शताब्दी में की।

(२) कषाय प्राभृत—इसके रचनाकार आचार्य गुणधर ने लगभग इसी समय इसकी रचना की।

(३) महाबन्ध—यह षट्खण्डागम का ही अंतिम खण्ड है। इसके रचनाकार आचार्य भूतबलि हैं।

(४) धवला तथा जयधवला—इनके टीकाकार वीरसेनाचार्य हैं। ये प्रथम दो ग्रथो की टीकाएँ हैं।

आर्य-विष्णुनन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, आचार्य-गोवर्धन, भद्रबाहु (दिगबर परपरानुसार) देखें—जैनधर्म का मौलिक इतिहास, खण्ठ-२ — ३१५
ले० आचार्य हस्तिमलजी महाराज, जयपुर

११. जैन धर्म—प० कैलाशचन्द शास्त्री, पृ० ४०-५०

१२ जैन धर्म—ले० प० कैलाशचन्दशास्त्री, पृ० २४६,४५

(५) सिद्धान्तों के परम मर्मज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मूल आगमों को संलक्ष्य में रखकर कई ग्रथों का निर्माण किया है—जिनमें से प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय तथा विभिन्न पाहुड ग्रन्थ हैं।

समय-समय पर आगम ग्रन्थों का संकलन होता रहा है जो क्रमशः इस प्रकार जाना जा सकता है—

(१) प्रभु महावीर निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई० पू० सन् २६७ में) स्थूलभद्राचार्य के सान्निध्य में हुआ।

(२) ई० सन् ३२७-३४० के मध्य मथुरा में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में हुआ।

(३) ई० सन् ४५३-४६६ के मध्य वल्लभी में आचार्य देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में हुआ।

वर्तमान में उपलब्ध संकलन आचार्य देवर्धि गणी की अध्यक्षता मे आयोजित श्रमण समुदाय (ई० सन ४५३ से ४६६ स्थान वल्लभीनगर काठियावाड) द्वारा किया गया था। अस्तु, श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य किया जाने वाला आगमिक साहित्य प्रभु महावीर निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद संकलित हुआ था।

मूल आगम साहित्य ११ अंगो के रूपो मे ही अवशिष्ट समझा जा सकता है। परन्तु, मूल आगमो के आशय को संलक्ष्य में रखकर अनेकों आचार्यों ने जो ग्रन्थ व टीकाएं लिखी हैं वे आगमिक साहित्य मे गिनी जाती हैं। इस प्रकार महावीर निर्वाण के पश्चात् आगमिक साहित्य की वृद्धि होती रही। वल्लभी में आयोजित समय मे आगमिक साहित्य के ग्रन्थो की संख्या ८४ तक पहुंच गयी थी, जिनके नाम नन्दीसूत्र मे निम्न रूप से हैं।[13]

अंगग्रंथ

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाता-धर्म-कथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद (विलुप्त हो गया।)

---

१३ जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा, ले० देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ० १४ प्रकाशक—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर।

उपांग

औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चद्र-प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका (कल्पिका) कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा।

मूलसूत्र

उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र।

छेदसूत्र

बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कध, निशीथ, महानिशीथ, पंचकल्प।

प्रकीर्णक

चतु शरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्त परिज्ञा, सस्तारक, तंदुलवैचारिक, चद्रवैध्यक, देवेंद्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, अजीवकल्प, गच्छाचार, मरणसमाधि, सिद्धप्राभृत, तीर्थोद्गालिक, आराधनापताका, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या, तिथिप्रकीर्णक, पिण्डनिर्युक्ति, सारावली, पर्यन्तसाधना, जीवविभक्ति, योनिप्राभृत, वृद्धचतु शरण, जम्बू-पयन्ना।

चूलिका

अंगचूलिका, वगचूलिका।

निर्युक्तियाँ

आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्यन, आचाराग, सूत्रकृतांग, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, कल्पसूत्र, पिण्ड, ओघ, ससक्त।

शेषसूत्र

कल्पसूत्र, यतिजीतकल्प, श्राद्धजीतकल्प, पाक्षिकसूत्र, खामणासूत्र, वदित्तुसूत्र, ऋषिभाषितसूत्र।

वर्तमान स्थिति मे श्वेतांबर जैनो के विभिन्न सम्प्रदायो में भी आगमिक साहित्य की संख्या को व प्रामाणिकता को लेकर मतैक्य नहीं है,

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनमे से ४५ आगमो को व श्वेतांबर स्थानकवासी ३२ व तेरापथी ३२ आगमो को मान्य करते हैं, जो निम्न हैं—

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनको मानते हैं—११ अग, १२ उपांग, ४ मूल, ६ छेदसूत्र, १० प्रकीर्णक, २ चूलिकासूत्र कुल ४५ हैं।

श्वेताबर स्थानकवासी व तेरापंथी नीचे दिये आगम मानते हैं—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक कुल ३२ हैं।

इन आगमो मे से श्रीकृष्ण चरित्र की दृष्टि से निम्नलिखित ७ सूत्रो का प्रमुख स्थान है :—(१) स्थानाग, (२) समवायाग, (३) ज्ञाताधर्मकथा, (४) अन्तकृद्दशा, (५) प्रश्न-व्याकरण, (६) निरयावलिका, (७) उत्तराध्ययन।

आगमो मे श्रीकृष्ण के चरित्र की दृष्टि से निम्नोक्त आगमों का प्रमुख स्थान है—

(१) स्थानांग

स्थानांग सूत्र के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण सबंधी प्रसग वर्णित है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की आठों पटरानियो का अर्थात् अग्रमहिषियो का परिचय दिया गया है। इन अग्रमहिषियो के नाम यहाँ पर दिए गए है—पद्मावती, गौरी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, गाधारी और रुक्मिणी।[14]

(२) समवायांग

इस चतुर्थ सूत्र मे ५४ उत्तम पुरुषो का वर्णन है। इन श्लाघनीय शलाका पुरुषो मे श्रीकृष्ण का विस्तृत वर्णन किया गया है। वासुदेव के रूप मे प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण द्वारा तत्कालीन प्रतिवासुदेव जरासंध के वध का

---

१४ कण्हस्स ण वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसिओ अरहो ण अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुडा भवेत्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया सिद्धाओ-जाव-सव्वदुक्खपहीणाओ तं जहा—पउमावइ, गौरी, गधारी, लक्खणा, सुसीमा, जबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, कण्हअग्गमहिसिओ।

—स्थानाग अ० ८ सूत्र ६२६, पृ० ३८७, सपादक—पूज्य कन्हैयालालजी कमल, आगम अनुयोग-प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) अक्टूबर १६७२।

समवायांग सूत्र में विस्तार से वर्णन किया गया है। वासुदेव प्रतिवासुदेव का आचरण भी वर्णित है। वासुदेव और प्रतिवासुदेव परस्पर प्रतिद्वंद्वी होते हैं। प्रतिवासुदेव अत्याचारी, दुष्ट व प्रजापीडक होता है। वासुदेव द्वारा प्रतिवासुदेव का हनन होता है और इस प्रकार पृथ्वी को भारमुक्त किया जाता है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वासुदेव की भूमिका का पूर्णतः निर्वाह किया है।[15] सूत्र २०७ का प्रतिपाद्य विषय यही प्रसंग रहा है।

(३) ज्ञातृधर्मकथा (णायधम्मकहाओ)

यह भी एक षष्ठ अंगवर्गीय आगम है। दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले स्कन्ध के १६वें अध्ययन में श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। दूसरे स्कन्ध के पाँचवें अध्ययन मे भगवान अरिष्टनेमि के साथ-साथ श्रीकृष्ण के कथा सूत्र भी आए हैं। भगवान का रेवतक पर्वत पर आगमन होता है। वासुदेव (श्रीकृष्ण) भगवान के दर्शनार्थ यादवकुमारों और कुटुम्बीजनो के साथ उपस्थित होते हैं और भगवान के उपदेशों का श्रद्धासहित श्रवण करते हैं। इसी अध्ययन के अन्तर्गत थावच्चापुत्र द्वारा भगवान के सान्निध्य में प्रवज्या ग्रहण का प्रसग भी विवेचित हुआ है।[16] सोलहवें अध्ययन में पाडवो का वर्णन आया है। इस अध्ययन मे यह स्पष्ट किया गया है कि पाडवो की जननी कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ (अर्थात् वसुदेव की बहन) थी। इस आधार

---

१५ भरहेरवएसु ण वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्न २ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंति वा, उप्पज्जिस्सति वा, तजहा—चउवीस तित्थकरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।

—समवायाग ५४वा समवाय, पृ० ८४—सपादक—पूज्य कन्हैय्यालालजी कमल, आगम अनुयोग प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) सन् १९५६ मे प्रकाशित।

१६ तेणं कालेण तेण समएणं बारवतीनाम नगरी होत्था,⋯ तत्थ ण बारवईए नयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया परिवसई

—ज्ञाताधर्मकथा अ० ५, पृ० १५६, १५७, प्रधानसपादक युवाचार्य मधुकर मुनिजी, प्रका० आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर ई० सन् १९८१। (राज०)

तएण से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामुक्खेहिं ⋅ बारवई नयरिं मज्झ मज्झेण निग्गच्छई। तएण से कण्हे वासुदेवे ते पउमनाभ रायाण एज्जमाण पासइ—पृ० ४५

तएण से कण्हे वासुदेवे ते पच पडवे एव वयासी —पृ० ५४

तएण से कण्हे वासुदेवे लवण समुद्द मज्झमज्झेण वीइवइए, —पृ० ४६१

तएण से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खधावारे तेणेव उवागच्छई। —पृ० ४६३

पर पाडवों और श्रीकृष्ण के मध्य पारिवारिक सम्बन्ध बताया गया है, तथा अमरकंका जाने का वर्णन भी प्राप्त है ।[17]

(४) अन्तकृद्दशांग

इस आठवें अंग आगम में अतकृत्केवलियो की कथाएं वर्णित हैं । ग्रन्थ अनेक अध्ययनो में विभक्त है और अध्ययनो के आठ वर्ग (समूह) हैं । प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारका का वैभव एवं गौतम की दीक्षा, तृतीय वर्ग अष्टम अध्ययन में श्रीकृष्ण के अनुज गजसुकुमार की कथा है । पाँचवे वर्ग के प्रथम अध्ययन मे वैभवपूर्ण द्वारका के विनाश का और श्रीकृष्ण के देहत्याग का वृत्तान्त है । द्वारावती नगरी के शक्तिशाली राजा के रूप में श्रीकृष्ण को बतलाया गया है । कृष्ण के भावी जन्म विषय वृत्तांत, कृष्ण की पर-दु:खकातरता का चित्रण हुआ है ।[18]

यथा—

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईनामं नयरी होत्था । दुवालसजोयणायामा नव जोयणवित्थिण्णा । —प्रथम वर्ग पृ० ६

तत्थण बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसई ।
—प्रथम वर्ग पृ० १०

तएणं सा देवई कण्हे वासुदेवं एवं वयासी । एव खलु अहं पुत्ता ।
—तृतीय वर्ग पृ० १०

तएणं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए ।
—तृतीय वर्ग, पृ० ५६

तएणं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठनेमिणं अब्भणुण्णाए अरहं ।
—तृतीय वर्ग पृ० ७७

कहण्ण भंते तेणं परिसेण गयसुकुमालस्य अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?
तएणं अरहा अरिट्ठनेमि कण्हं वासुदेवं एवं वयासी । —तृतीय वर्ग, पृ ८४

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव एवं खलु कण्हा । इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयण वित्थिन्नाए जाव देवलोगभूयाए सुरग्गिविवाय मूलाए विणासे भविस्सइ । —पंचमवर्ग, पृ०६४-६५

१७ वही, ज्ञाताधर्मकथा
१८ अन्तकृद्दशाग—प्रधानसपादक—युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी

(५) प्रश्नव्याकरण

यह दशम अंग ग्रन्थ है। ५ धर्म द्वार तथा ५ अधर्मद्वार के रूप में प्रश्न व्याकरण के दो खंड हैं। पूर्वखण्ड मे ५ आस्रवद्वार हैं और उत्तरखड में सवर-द्वार हैं जिनकी संख्या भी ५ हैं। रुक्मणी एव पद्मावती के साथ विवाह के लिए श्रीकृष्ण को जो युद्ध करने पडे उनका वर्णन प्रश्नव्याकरण के पूर्व-खण्ड के चतुर्थ आस्रवद्वार में किया गया है।[19](क)

कृष्ण के चरित्र का श्रेष्ठ अर्द्ध चक्रवर्ती राजा के रूप का, उनकी रानियो, पुत्रो तथा परिवारजनो का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को चाणूरमल्ल, रिष्टबैल तथा काली नामक महान विषैले सर्प का हन्ता, यमलार्जुन के नाश करने वाले, महाशकुनि एवं पूतना के रिपु, कसमर्दक, जरासन्ध नष्टकर्त्ता आदि उनके विविध गुणों को दर्शाया गया है। और, इस प्रकार उनके व्यक्तित्व के महानता के दर्शन इस आगम के द्वारा हमें दिखलाई देते हैं।[19] (ख)

(६) निरयावलिका

इसमें ५ वर्ग हैं। ५ वर्गों में ५ उपांग अन्तर्निहित हैं। पाँचवे उपांग वृष्णी-दशा के १२ अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन में द्वारकाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। चित्रित प्रसग उस समय का है जब भगवान नेमिनाथ का आगमन रैवतक पर्वत पर होता है और श्रीकृष्ण उनकी उपदेश-सभा में जाते हैं। इस प्रसग में श्री कृष्ण की धर्मप्रियता और भगवान के प्रति श्रद्धा की भावना अभिव्यक्त हुई है।[20]

---

१९ (क) भुज्जो भुज्जो बलदेव-वासुदेवा य पवरपुरिसा महाबलपरक्कमा, महाधणु वियट्ठका, महासत्तसागरा दुद्धरा।—प्रश्नव्याकरणसूत्र चतुर्थअध्याय, सपादक—अमरमुनिजी, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।

(ख) मेहुणसण्णासपगिद्धाय मोहभरिया सत्थेहिं हणति एक्कमेक्कं। विसयविस उदीरएसु अवरे परदारेहिं हम्मति × × × मेहुणमूल य सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा सगामा जणक्खयकरा सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए पउमावईए।

—प्रश्न-व्याकरण सूत्रचतुर्थअध्ययन, पृ० 407 संपादक वही।

२० एवं खलु जबू तेणं कालेण तेण समएण बारवई नाम नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा जावपच्चक्खं देवलोयभूया। तत्थण बारवईए नयरीए कण्हे नामं

प्रथम अध्ययन निषधकुमार का है, जो कृष्ण के बड़े भ्राता राजा बलदेव तथा रेवती के पुत्र थे। निषध कुमार भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में प्रवज्या ग्रहण कर आत्म कल्याण करते हैं। यह उपांग सूत्र है।

(७) उत्तराध्ययन

इस आगम ग्रन्थ में भगवान महावीर के अंतिम समय महानिर्वाण काल में दिए गए उपदेश संकलित हैं। उत्तराध्ययन में कुल ३६ अध्ययन हैं, और इसके २२वें अध्ययन मे श्रीकृष्ण कथा के सूत्र मिलते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबंध किया जाना, विवाह में एकत्रित अतिथियो के आहार हेतु एकत्रित मूक पशुओं की पुकार सुनकर अरिष्टनेमि का विरक्त हो जाना, रैवतक पर्वत पर जाकर उनका तपस्या करना आदि प्रसंग विस्तार से विवेचित हैं। इस अध्ययन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण का जन्म सौरियपुर मे हुआ था।[21] कृष्ण के माता-पिता, उनका वासुदेव राजा होना, नेमि के लिए उनके द्वारा राजीमती की याचना करना आदि उल्लेख हैं।

निष्कर्ष

मैंने इस अध्याय में जैन प्राकृत श्रीकृष्ण साहित्य के कतिपय ग्रंथों को लेकर अपना अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इसमे क्रमशः सात ग्रंथ हैं। (१) स्थानांग मे श्रीकृष्ण सम्बन्धी कुछ प्रसग और उनकी आठ पटरानियो का उल्लेख मिला है। (२) समवायाग मे ५४ उत्तमपुरुषो का विवेचन है। इनमे

वासुदेवे राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरई।—वण्हिदसाओ, —पृ० ७१२
सपादक—पुप्फभिक्खू, प्रकाशक सूत्रागमप्रकाशन समिति, गुडगाव (पंजाब)।

२१ सोरियपुरम्मिनयरे आसिराया महड्ढिए।
वसुदेवत्ति नामेण रायलक्खणसजुए॥
तस्स भज्जा दुवे आसि रोहिणी देवई तहा।
तासि दोण्ह दुवे पुत्ता इट्ठा रामकेसवा।
वज्जरिसहसघयणे समचउरंसो झसोयरो।
तस्स राईमई कन्न भज्ज जायई केसवो॥
उत्तराध्ययनसूत्र अ० २२, सपादक—स्वयशोधकर्ता (राजेन्द्रमुन्द्रि)
गाथा—१, २, ३, ६, ८, १०, ११, २५ व २७ मे कृष्ण सबधी उल्लेख उपलब्ध हैं।

वासुदेव के रूप में प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण का विस्तार से विवेचन है। प्रति वासुदेव का हनन उनके द्वारा किया गया है। यह ठीक अवतारी पुरुष कृष्ण से मिलता है। (३) ज्ञाताधर्म कथा में २२ वे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे बतलाया गया है। पाडव भी इसमें चर्चित हैं। कुन्ती पाँडवो की जननी और श्रीकृष्ण की बुआ हैं। थावच्चापुत्र प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। (४) अन्तकृद्दशाग मे द्वारकावैभव, श्रीकृष्ण वासुदेव तथा गौतमकुमार की दीक्षा तथा श्रीकृष्ण पुत्र गजसुकुमार की कथा आई है। अत में द्वारका विनाश और श्रीकृष्ण का देहत्याग भी विवेचित है। कृष्ण एक शक्तिशाली राजा और परदु खकातर बतलाये गए हैं। उनके भावी जन्म पर प्रकाश डाला गया है। (५) प्रश्नव्याकरण ग्रंथ मे दो खंड हैं। उत्तरखड मे ५ संवर द्वार हैं। पूर्वखड मे रुक्मिणी और पद्मावती से विवाह करने के लिए जो युद्ध श्रीकृष्ण को करने पडे उनका विवेचन है। श्रीकृष्ण एक अर्ध चक्रवर्ती राजा बताये गए हैं तथा उनकी कुछ बाललीलाएं जैसे रिष्ट बैल और कालिय नामक विषैले नाग की हत्या, पूतना मर्दन, कस हनन और जरासध वध का वर्णन तथा उनमें विद्यमान गुणो का विवेचन और उनकी रानियों का वर्णन तथा उनकी महानता दिखाई है। (६) निरयावलिका मे रैवतक पर्वत पर नेमिनाथ का आगमन और द्वारकाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव का वर्णन तथा नेमिनाथ की उपदेश सभा में श्रीकृष्णागमन दिया गया है। श्रीकृष्ण की धर्मप्रियता और २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के प्रति श्रद्धा का वर्णन तथा राजा बलदेव और उनकी रानी रेवती के पुत्र निषधकुमार का नेमि की सेवा मे जाना और प्रव्रज्या ग्रहण इत्यादि विवेचन है। (७) उत्तराध्ययन मे भगवान महावीर का उपदेश सकलित है। कुल ३६ अध्ययनो मे से २२ वें अध्ययन मे श्रीकृष्ण कथा के सूत्र हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबंध, बारातियो के आहार के लिए जुटाये गये पशुपक्षियो को देखकर नेमी को वैराग्य उत्पन्न होना, रैवतक पर्वत पर तपस्या के लिए जाना, राजीमती द्वारा नेमी से याचना और श्रीकृष्ण का जन्म सोरियपुर में हुआ। यह तथ्य भी हमारे हाथ लगता है।

इस प्रकार इस अध्याय मे मैंने अपने शोधाध्ययन के सूत्र जुटाये हैं। विशेष अध्ययन के लिए श्री देवेन्द्रमुनि की "भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन" यह पुस्तक दृष्टव्य है।[22]

अगले अध्याय मे इससे थोड़ा सा विस्तृत अध्ययन प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य का मैं कर रहा हू।

२२ भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण; एक अनुशीलन पृ० ३४० (परिशिष्ट) से ३६० तक तथा ३६७, देवेन्द्र मुनि शास्त्री

३

प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य

भूमिका

श्रीकृष्ण चरित्र को समग्र जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन साहित्य और श्रीकृष्ण चरित का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा मूल्यवान रहा है। जहाँ श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं तथा उनकी महत्ता के प्रचार प्रसार का श्रेय जैन साहित्य को प्राप्त होता है, वहाँ यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतो के प्रतिपादन और जन सामान्य मे उसके प्रचार के कार्य में भी किसी सीमा तक सहायता मिली है। जैसा कि पूर्व मे वर्णित किया जा चुका है, श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंग जैन साहित्य में सर्वप्रथम आगमो में समाविष्ट हुए हैं। आगम ग्रन्थों का स्वरूप समझने के क्रम में यह सारा तथ्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का एक अत्यत स्तुत्य, समर्थ और सफल प्रयत्न यह रहा है कि उन्होने अपने धार्मिक विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए तत्कालीन जनप्रिय लोक भाषाओ और कथाओं का आश्रय लिया। इन कथाओं को जनता पीढियो से समझी हुई थी तथा इन्हें हृदयंगम किये हुए थी। अत. इनमें पाया जाने वाला साम्य स्थिर करके भगवान ने अपने विचारों को सुगमता के साथ जनमानस का अग बना दिया। जिन लोक प्रचलित और जनप्रिय कथाओं के चुनाव का अपने प्रयोजन से भगवान ने चयन किया और जिनका उपयोग किया, उनमें श्रीकृष्ण के जीवन की कथाए भी सम्मिलित रही। ऐसा होना श्रीकृष्णचरित्र की तत्कालीन लोकप्रियता के आधार पर स्वाभाविक ही लगता है।

स्रोत

इस प्रकार जब भगवान महावीर ने श्रीकृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओ का उल्लेख अपने उद्देशो के अन्तर्गत, अपने ही ढंग से किया तो उनके प्रवचनो में श्रीकृष्ण के जीवन का कोई क्रमबद्ध वृत्तांत उभरकर प्रकट नही हो सकता था। जहाँ जिस सिद्धांत के स्पष्टीकरण एवं प्रतिपादन के लिए या पुष्टि के लिए भगवान ने श्रीकृष्ण जीवन की जिस घटना का प्रयोग वाँछनीय समझा और अनुभव किया, उसे उपयुक्त स्थान जैन कथा में दिया। कालांतर मे भगवान के शिष्य गणधरों ने भगवान के उपदेशों को संग्रहीत किया, उन्हे लिखित रूप देने का प्रयास भी किया। ये लिखित अलिखित रूप ही जैन आगम हैं।

उल्लेख विशृंखलनीय

स्पष्ट है कि जैन आगम ग्रन्थो में श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों को यद्यपि अति महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त अवश्य ही हुआ है किन्तु ये उल्लेख विशृंखलित रूप मे हैं। आगमो मे श्रीकृष्ण के जीवन चरित का कोई क्रमिक विकास दृष्टि गोचर नही होता। न ही यह कहा जा सकता है कि आगमों में श्रीकृष्ण के जीवन को सम्पूर्णतः ग्रहण कर लिया गया है। केवल प्रतिपाद्य विषयों में सहायक रहने की क्षमता वाले प्रसग ही इसमे समाविष्ट हुए हैं। आगमेतर ग्रन्थो (परिवर्ती ग्रंथो) मे श्रीकृष्ण जीवन की इन बिखरी-बिखरी घटनाओं को क्रमिक और व्यवस्थित रूप दिया गया है। यथावश्यकतानुसार शून्य स्थलो की पूर्ति का भी मूल्यवान उपक्रम हुआ है। परिणामत. इन परवर्ती ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण चरित्र जैसी कोई वस्तु मेरे दृष्टिगत होने लगी है। श्रीकृष्ण के भव्य चरित्र की एक झाकी प्रस्तुत होने लगी है। इनके माध्यम से श्रीकृष्ण सम्बन्धी जैन मान्यता स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हुई। यह मान्यता इस पक्ष मे पायी जाती है कि श्रीकृष्ण एक अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, तेजस्वी महामानव थे। वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण के अवतारी और चमत्कारी दिव्य रूप को जैन मान्यता ने स्वीकार्य नही समझा। जैन श्रीकृष्ण साहित्य मे उल्लेखित सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रूप एवं मूलाधार को स्वीकारते हुए जैन परम्परा में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन बड़े ही व्यापक रूप में हुआ है। वे सर्वत्र शक्तिशाली रूप मे वर्णित हुए। जैन परम्परानुसार श्रीकृष्ण गुणशील, सदाचारी, ओजस्वी, वर्चस्वी एवं यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें जैन ग्रन्थों में अमोघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित रूप मे चित्रित

किया गया है। उनका शारीरिक बल इतना विपुल था कि वे सुगमता के साथ महारत्न वज्र को भी चुटकी से मसलकर चूर्ण कर देते थे।

महापुरुषों का आभ्यंतर सौन्दर्य

बाह्य एवं आभ्यंतरिक सौन्दर्य अन्योन्याश्रित हुआ करता है। महापुरुषो मे भव्य आंतरिक सौंदर्य होता है। इसकी प्रतिच्छवि स्वरूप उनका बाह्य व्यक्तित्व भी सौन्दर्य सम्पन्न एव आकर्षक होता है। ये ओज तेज से युक्त व परमशक्ति सम्पन्न होते हैं। जैन मान्यता भी इस तथ्य की समर्थक रही है। यही कारण है कि इस परम्परा मे मान्य सभी विशिष्ट पुरुष आकर्षक व प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले हैं। प्रज्ञापना सूत्र (२३) के अनुसार जैन दृष्टि से जो ६३ श्लाघनीय पुरुष (शलाका पुरुष) हुए हैं वे सभी अत्युत्तम शारीरिक सस्थान वाले थे। 'हारिभद्रीयावश्यक' मे उनके शरीर की प्रभा को निर्मल स्वर्णरेखा के समान वर्णित किया गया है। जैन परंपरा मे ६३ शलाका पुरुषो मे श्रीकृष्ण की भी गणना होती है। वे नवम वासुदेव हुए हैं।

शलाका पुरुषो की भाति ही श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण मे पूरा सुजात और सर्वांग सुन्दर था। वे लक्षणो और गुणो से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। वे बडे ही कान्त, सौम्य, सुभग स्वरूप वाले अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रगल्भ, धीर और विनयी थे। वे सुखशील थे, किन्तु प्रमादी नही अपितु उद्योगी प्रवृत्ति के थे। उनकी वाणी गभीर, मधुर और स्नेहयुक्त थी, और वे सत्यवादी थे। उनकी गति श्रेष्ठ गजेन्द्र-गति सी लगती थी। उनका मुकुट कौस्तुभ मणि जटित था। उनके कानो में कुडल और वक्ष पर एकावली सुशोभित रहती थी। वे धनुर्धर थे। वे शख चक्र गदा शक्ति और पद्म धारण करते थे। वे उच्च गरुड ध्वजा के धारक थे। 'प्रश्नव्याकरण' के एक उल्लेख के अनुसार श्रीकृष्ण शत्रुओ का मर्दन करने वाले, युद्ध मे कीर्ति प्राप्त करने वाले, अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।[1] श्रीकृष्ण सर्वगुण सपन्न, श्रेष्ठ चरित्र वाले, दयालु, शरणागत-वत्सल, धर्मात्मा, कर्त्तव्यपरायण, विवेकशील और नीतिवान थे।

१. प्रश्नव्याकरण अध्याय ४, पृ० १२१७

वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जैनियों की दृष्टि में

उपर्युक्त स्वरूप में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जैन ग्रन्थों मे चित्रित मिलता है। जैन दृष्टि से श्रीकृष्ण 'वीरश्रेष्ठ' रूप में सम्मान्य हैं। वे शलाका-पुरुष[2] व नवम वासुदेव हैं।[3] वासुदेव परम्परा का प्रत्येक महापुरुष महान वीर, अर्द्ध चक्रवर्ती शासक होता है। श्रीकृष्ण का भी यही स्वरूप रहा है। वैताढ्यगिरि (विन्ध्याचल) से समुद्र पर्यन्त समस्त दक्षिण भारत के वे एक-छत्र-अधिपति थे।

बारवइए नयरीए अद्धभरहस्स य समस्स य आहेवच्च जाव विहरइ।

—अन्तकृद्दशा सूत्र

दक्षिण-भरतार्द्ध के स्वामी श्रीकृष्ण का उत्तर भारत की राजनीति मे भी वर्चस्व रहा। उन्होने अपने सशक्त प्रतिद्वन्द्वी जरासध व उसके सहायक कौरवो को पराभूत करके हस्तिनापुर के राज्यासन पर पाडवों को प्रतिष्ठित कर दिया था। यही नही, अपितु ३० भारत के तथा अन्य अनेक अनीतिकारी और अत्याचारी शासकों का नाशकर उनके स्थान पर अनेक उत्तराधिकारियों को शासक बनाकर भी श्रीकृष्ण ने अपना यह वर्चस्व सिद्ध कर दिया था। एक प्रकार से उन्हें अखिल भारतीय राजनैतिक महत्ता प्राप्त थी। उन्होने देश की विशृंखलित राजनैतिक शक्तियो को सगठित करने का स्तुत्य और सफल प्रयत्न भी किया। जैन साहित्य की एक और भी यह उपलब्धि रही है कि इसके माध्यम से भारतीय इतिहास के कतिपय ऐसे तथ्य प्रकाश मे आए हैं, जो सामान्यत लुप्त प्राय रहे हैं। ये सामान्य ऐतिहासिक तथ्य इस प्रकार हैं:

(१) तत्कालीन जैन धर्म के उच्चतम नेता भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे।

(२) ये २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के रूप में इतिहासख्यात रहे हैं। यह बात और है कि कतिपय विद्वज्जन भगवान महावीर

---

२ शलाकापुरुष का तात्पर्य महापुरुष से है। जैन परपरा मे ६३ शलाका पुरुष हुए हैं। इसमे से २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव, ९ प्रतिवासुदेव भी होते हैं।

३ नवमो वासुदेवोयमिति देवा जगुस्तदा।

—हरिवशपुराण ५५।६०

स्वामी के पूर्व के २३ तीर्थंकरों के विषय में प्रामाणिकता नहीं मानते।

(३) वस्तुतः यह हमारे इतिहास का अपूर्णताजनित भ्रम है।

(४) अन्यथा भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान नेमिनाथ की ऐतिहासिक प्रामाणिकता मे संदेह के लिए अब कोई अवकाश ही नही रह गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थो में अरिष्टनेमि के संदर्भ प्राप्त होते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण अन्योन्याश्रित

वस्तुस्थिति यह है कि श्रीकृष्ण के प्रसंगों के बिना भगवान अरिष्टनेमि चरित अपूर्ण ही रह जाता है। साथ ही जहाँ श्रीकृष्ण चरित वर्णित हुआ है वहाँ अरिष्टनेमि प्रसंग उसके अनिवार्य-अंग के रूप मे विद्यमान रहा है। कतिपय ग्रन्थो मे तो श्रीकृष्ण की महत्ता भगवान अरिष्टनेमि की अपेक्षा भी अधिक उभरी है। उनकी अपनी गरिमा तो रही है, साथ ही भगवान नेमिनाथ के जीवन और परिवार से संबद्ध रहने के कारण भी जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण को पर्याप्त सम्माननीय स्थान और गौरव प्राप्त हुआ है। भगवान के अत्युच्च गरिमापूर्ण धर्मव्यक्तित्व के प्रति श्रीकृष्ण के मन मे सदा श्रद्धा का स्थान रहा है। भगवान द्वारा संकेतित करुणा और अहिंसा के मार्ग पर श्रीकृष्ण भरसक गतिशील रहे। यह इस बात का प्रतीक है कि श्रीकृष्ण धर्म के प्रति अतिशय रुचिशील थे। वे करुणा, मैत्री और अहिंसा की महती भावनाओ से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने हिंसापरित यज्ञो का विरोध करते हुए उन यज्ञो की उत्तमता का समर्थन किया जिनमें जीवहिंसा का समावेश नही था। यही नही, उन्होने यज्ञों की अपेक्षा कर्म को अधिक महत्वपूर्ण माना और कर्म के लिए वे सबल प्रेरक बने। जब जब भगवान नेमिनाथ स्वामी का द्वारका आगमन हुआ, श्रीकृष्ण समस्त राजकाज छोडकर भगवान के दर्शनार्थ उनकी सभा मे जाते थे। ऐसे अनेक प्रसग आगमेतर ग्रन्थों मे वर्णित मिलते हैं।[4] वासुदेव होने के नाते वे स्वयं संयम मार्ग के अनुयायी नही हो सके, किंतु उन्होंने स्वयं ही भगवान के समक्ष संकल्प ग्रहण किया था कि "मैं इस मार्ग के अनुसरण हेतु अधिकाधिक

४ अन्तगड सूत्र—२, २२, ५२, ६८ देखिए।

जनों को प्रेरित करता रहूंगा।" उनकी पुत्रियों द्वारा संयम ग्रहण इसका सबल प्रमाण है। उनके कुटुंब के अनेक सदस्यों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की जिनमें उनकी रानियां पुत्रादि भी सम्मिलित हैं। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का यह उज्ज्वल पक्ष उन्हें जैन साहित्य मे प्रमुख स्थान दिलाने में बड़ा सहायक रहा है। यही कारण है कि पाडवों, प्रद्युम्नकुमार, गजसुकुमाल आदि से सबद्ध इन रचनाओं में भी श्रीकृष्ण का वृत्तांत सविस्तारपूर्वक दिया गया है। श्रीकृष्ण में जो धर्मानुराग की विशेषता है, उसके कारण जैन ग्रन्थकारों ने उनका चरित्र अपने अनुरूप पाया और उसका खूब बखान किया। प्राचीन और अर्वाचीन सभी भाषाओं के जैन साहित्य में कृष्ण-चरित्र विवेचन मिलता है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिंदी व कन्नड, तमिल तेलगु, गुजराती, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी ऐसे जैन ग्रन्थों की भरमार है जिनमें श्रीकृष्ण चरित्र किसी न किसी रूप मे अपनाया गया है।

श्रीकृष्ण महत्व

आगमेतर प्राकृत जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण को समुचित महत्व दिया गया है। एतएव इसी स्तर पर यहां विवेचन है। इस वर्ग के साहित्य मे भी श्रीकृष्ण का वैसा ही शुभ्र धवल करुणाशील और पराक्रमी स्वरूप स्थापित हुआ है, जो आगमो मे प्रतिष्ठित हो चुका था। आगमेतर साहित्य के लिए आगम ही आदर्श और आधारभूत स्रोत रहे हैं। अत मूल ग्रन्थो के साथ इन आगमेतर ग्रन्थो में इतना साम्य भी स्वाभाविक ही लगता है। आगमेतर ग्रन्थों का एक सारा विभाग तो ऐसा है जिसमें आगमों की व्याख्या के ही अनेक रूप मिलते हैं। यथा—निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका, आदि। इनके अतिरिक्त भी अनेक स्वतत्र आगमेतर ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण चरित्र उपलब्ध होता है, ऐसे ग्रन्थो मे 'हरिवंश चरिय' सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है जिसके रचनाकार विमल सूरि थे, किंतु यह कृति अनुपलब्ध है। श्री नाथूराम प्रेमी के मतानुसार (जैन साहित्य और इतिहास के पृ० ८७) चरियं साहित्य की परंपरा मे लेखक की रचना 'पउम चरियं' को भी उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है।

(१) वसुदेव हिण्डी-संघदास गणी

प्रस्तुत ग्रन्थ आगमेतर रचनाओ मे ऐसी प्राचीनतम उपलब्ध कृति है जिसमे श्रीकृष्ण जीवन के प्रसगो का चित्रण है। वसुदेव हिण्डी का रचना-

काल ईसा की ५वी शताब्दी माना जाता है।[5] ग्रन्थ के पूर्वभाग के रचनाकार सघदास गणि वाचक रहे हैं, किंतु इसके उत्तरभाग की रचना धर्मसेन गणि द्वारा हुई ऐसी मान्यता रही है। वसुदेव श्रीकृष्ण के पिता थे। उन्ही का भ्रमण वृत्तांत प्रस्तुत ग्रन्थ में है। देवकी लम्बक में श्रीकृष्ण के जन्म आदि का वर्णन है। पीठिका में प्रद्युम्न, शाबकुमार की कथा और श्रीकृष्ण की ६ अग्रमहिषियो का वर्णन है। साथ ही रुक्मिणी से प्रद्युम्नकुमार का जन्म, उसका अपहरण, माता-पिता से उसका पुनर्मिलन आदि की घटनाओ का भी वर्णन मिलता है। प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभवों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार जाम्बवती से शाम्बकुमार का जन्म और उसके जीवन की अन्यान्य घटनाएँ भी वर्णित की गयी हैं। इसके अतिरिक्त हरिवंश की उत्पत्ति, कस के पूर्वभव और कौरव पाडवों का वर्णन भी किया गया है।

वसुदेव हिण्डी के पूर्व भाग मे २९ लभक और ११ हजार श्लोक और उत्तर भाग मे ७१ लभक और १७ हजार श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की शैली में गुणाढ्य कृत बृहत्कथा की शैली के दर्शन होते हैं। कथासरित्सागर की भूमिका में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इस वास्तविकता की ओर संकेत किया है।[6] वसुदेव हिण्डी की भाषा प्राचीन महाराष्ट्रीय प्राकृत है।[7]

कथा का विभाजन ६ अधिकारो मे किया गया है—कहुप्पत्ति (कथा-उत्पत्ति), पीढिया (पीठिका), मुंह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसहार (उपसहार)। कथोत्पत्तिपूर्ण होने पर धम्मिल्ल-हिण्डी (धम्मिल चरित) प्रारभ होता है और इसके पूर्ण होने पर क्रमश पीठिका मुख प्रतिमुख प्रारभ होते हैं। उसके बाद प्रथम खण्ड के प्रथम अश मे सात लंभक हैं। यहीं से शरीर विभाग प्रारभ होता है जो दूसरे अश के २९वे लभक तक चलता है। वसुदेव के परिभ्रमण की आत्मकथा का विस्तार इसी

---

५ प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० 382।

६ कथा सरित्सागर की भूमिका : लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल।

७ वसुदेव हिण्डी मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सपादित, आत्मानद जैन ग्रंथ माला भावनगर की ओर से सन् १९३०-३१ मे प्रकाशित। इसका गुजराती भाषांतर प्रोफेसर सांडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रथमाला की ओर से ही भावनगर से वि० स० २००३ में प्रकाशित हुआ है। देखिये गुजराती अनुवाद।

विभाग से प्रारंभ होता है। उक्त लंभकों में १९ और २०वें लंभक अनुपलब्ध हैं तथा २८वां लंभक अपूर्ण है।

इसके द्वितीय खण्ड में नरवाहनदत्त की कथा वर्णित है। उसमें शृंगार-कथा की मुख्यता है तथापि इस कथा में धर्म का उपदेश भी यथास्थान सम्मिलित किया गया है। कुल मिलाकर दोनों खण्डों में १०० लंभकों का समावेश है। द्वितीय खण्ड के अनुसार वसुदेव १०० वर्ष तक परिभ्रमण करते हैं तथा १०० कन्याओं के साथ उनका विवाह होता है। गद्यात्मक समासांत पदावलि में लिखी गयी इस विशिष्ट रचना की भाषा सरल, स्वाभाविक व प्रसादगुण युक्त है। मुख्य कथा के साथ अनेक अतर्कथाएँ तीर्थंकर शलाका-पुरुषो की भी हैं। साथ ही जैन धर्म सबंधी महाव्रतों का स्वरूप, परलोक सिद्धि, मांसभक्षण दोष आदि तत्वों का विवेचन भी किया गया है। कहुप्पत्ति के अंत में वसुदेव चरित की उत्पत्ति बतलाई गयी है। मुख नामक अधिकार में शब और भानु की क्रीडाओं का वर्णन है। भानु के पास शुक था और शब के पास सारिका, दोनों सुभाषित कहते हैं। यथा :

> उक्कामिव जोइभालिणीं सुभुयंगामिव पुष्फियं लतं।
> विबुधो जो कामवत्तिणि, मुयइ सो सुहिओ भविस्सइ ॥

अर्थात् अग्नि से प्रज्वलित उल्का की भाँति और भुजगी से युक्त पुष्पित लता की भाँति जो पंडित कामवत्तिनी (काममार्ग) का त्याग करता है वह सुखी होता है।

प्रतिमुख में अधकवृष्णि का परिचय देते हुए कवि ने उसके पूर्वभव का सबंध बताया है।

शरीर अध्ययन प्रथम लभक से आरभ होकर २९वें लभक तक पूर्ण होता है। सामा विजया नाम के प्रथम लंभक मे समुद्रविजय आदि नौ वसुदेवो के पूर्वभवो का वर्णन है। वसुदेव घर का त्यागकर चलते हैं। सामली का परिचय सामली लभक मे दिया गया है। विष्णुकुमार का चरित गधर्वदत्ता लभक में है। नीलांजना लभक में ऋषभदेव का वर्णन करते हुए उनके जन्म, राज्याभिषेक, प्रव्रज्या आदि का वर्णन है। उग्र, भोग, राजन्य और नाग ये चार गण कौशल जनपद मे राज्य करते थे। ऋषभदेव ने प्रजा को अनेक प्रकार की कलाएँ सिखलायी।

सोमसिरि लभक मे आर्य अनार्य, वेदो की उत्पत्ति, ऋषभ का निर्वाण, बाहुबलि और भरत का युद्ध, नारद, पर्वत और वसु का सबध तथा वसुदेव के वेदाध्ययन का प्ररूपण है। सप्तम लंभक के पश्चात् प्रथम खण्ड का द्वितीय अंश आरंभ होता है। पउमा लभक मे धनुर्वेद की उत्पत्ति बताई है। पुडा लभक में पोरागम (पाकशास्त्र) मे विशारद नद और सुनद का नामोल्लेख है। पुड्रा की उत्पत्ति तथा नमि जिनेन्द्र द्वारा प्रदत्त चातुर्याम धर्म का उपदेश वर्णित है। सोमसिरि लभक मे इन्द्रमह का उल्लेख है। मयण गा लभक मे सनत्कुमार चक्रवर्ती का व्यायाम शाला में पहुंचकर तेलमर्दन कराना, कान्यकुब्ज की उत्पत्ति का वृत्तान्त, राम का जीवन वृत्त, आदि वर्णन उपलब्ध होते हैं। बालचदा लभक मे मासभक्षण निषेध का उपदेश दिया गया है। बधुमती लभक मे वसुदेव द्वारा दिया गया तापसो को उपदेश व महाव्रतो का विवेचन है। साथ ही मृगध्वजकुमार तथा भद्रकमहिष के चरित-वर्णन भी हैं।

१९ व २०वाँ लभक नष्ट हो गया है। केवल मती लभक में शाँतिजिन का जीवन चरित, त्रिविष्टप् तथा वासुदेव का परस्पर सबध, मेघरथ के आख्यान मे जीवन की प्रियता को बतलाते हुए कवि ने लिखा है[8]

हंतूण परप्पाणे अप्पाणं जो करइ सप्पाण।
अप्पाणं दिवसाण, कएण नासेइ अप्पाण॥
दुक्खस्स उव्वियंतो, हेतूण परेइ पडियाएं।
पाविहिति पुणो दुक्खं, बहुययरं तन्निमित्तेण॥

अर्थात् जो दूसरो के प्राणो की हत्या करके अपने को सप्राण करना चाहता है, वह आत्मा का नाश करता है। जो दु ख से खिन्न हुआ; वह दूसरे की हत्या करके प्रतिकार करता है, वह उसके निमित्त से और अधिक दु.ख पाता है।

पउमावती लभक मे हरिवश कुल की उत्पत्ति का कथानक है। देवकी लंभक में कस के पूर्वभव का विवेचन है।

अस्तु, भाव भाषा की दृष्टि से यह एक अति उत्तम कृति है जो जन धर्म की साहित्य गरिमा को उजागर करती है।

---

८ वसुदेव हिण्डी—मेघरथ आख्यान—वही।

(२) चउप्पन्नमहापुरिस चरियं[1]

आचार्य शीलांक द्वारा रचित यह एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमे ६३ शलाकापुरुषों मे से ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर ५४ महापुरुषो के जीवन-चरित वर्णित हुए हैं। ९ वासुदेवो के वर्णन के अतर्गत ही प्रतिवासुदेवो को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसका रचनाकाल सन् ८६८ बताया जाता है। इसके ४९-५०-५१वे अध्याय में अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण वासुदेव के चरित वर्णित हुए हैं। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक प्राकृत है। यहाँ यह ध्यान मे रखने योग्य है कि जैन साहित्य में महापुरुषो की मान्यता के स्वरूप को लेकर दो विचार धाराएँ प्रचलित रही हैं। प्रथम विचार-धारा मे प्रतिवासुदेवो की वासुदेवों के साथ गणना करके ५४ शलाका पुरुष मानती है, और दूसरी विचारधारा प्रतिवासुदेवों की गणना स्वतंत्र रूप से करके ६३ शलाकापुरुषों को मान्यता प्रदान करती है। प्रस्तुत कृति में ५४ शलाकापुरुषो के जीवन-सूत्र ग्रथित किए गए हैं। रचनाकार शीलाक आचार्य निवृत्तिकुलीन मानदेवसूरि के शिष्य थे। इनके दूसरे नाम जैसे शीलाचार्य और विमलमति भी उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत काव्य में भगवान ऋषभदेव, भरतचक्रवर्ती, शान्तिनाथ, मल्लिस्वामी और पार्श्वनाथ के चरित पर्याप्त विस्तार पूर्वक वर्णित किए गए हैं। प्रस्तुत चरित काव्य की विशेषताओ को इस प्रकार देखा जा सकता है—

(१) इसमें सूर्योदय, वसन्त, वन, सरोवर, नगर, राजसभा, युद्ध, विवाह, विरह, समुद्रतल, आदि के सुन्दर काव्यात्मक वर्णन मिलते हैं।

(२) महाकाव्य की गरिमामयी शैली में वस्तुवर्णन है।

(३) सांसारिक संघर्ष के बीच, जीवन के उन परमतत्वो का विवेचन किया गया है जिनके कारण जन्म-मरण, शुभाशुभ कर्मों का आवागमन बना रहता है।

(४) पात्रो का चरित्र चित्रण सुन्दर है।

(५) प्रसंगवश इसमें विबुधानंद नामक एकांकी नाटक भी निबद्ध है।

---

१. प्राकृत-ग्रंथ-परिषद वाराणसी ई० सन् १९६१

(६) चरित मे उदात्त तत्त्व उपलब्ध है। परिसवादों में अनेक नैतिक तथ्यों का समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ एक सवाद द्रष्टव्य है—

धन सार्थवाह के एक प्रधान कर्मचारी से एक वणिक के ईर्ष्यावश पूछने पर कि सार्थवाह के पास कितना धन है ? उसमें कौन-कौन से गुण हैं ? वह क्या दे सकता है ? इन प्रश्नो के उत्तर मे मणिभद्र सार्थवाह के सम्बन्ध मे उत्तर देता हुआ कहता है कि मेरे सेठ के पास एक वस्तु है—विवेक भाव। और, जो नही है वह वस्तु है—अनाचार। दो वस्तुएं—परोपकारिता तथा धर्म की अभिलाषा तो है, पर अहंकार व कुसंगति नही है। उनमें कुलशील एवं रूप तो है, पर दूसरे को नीचा दिखाना, औध्दत्य और परदारागमन ये दोष नही हैं। यथा—

भणिओ य तेण मणिभद्दो जहा—अहो मुद्ध मुह ! किं तुम्ह सत्यवाहस्स अत्य-जायमत्थि ? केरिसा वा गुणा ? किं पभूयं वित्तं, किंवा दाउ समत्थोत्ति। ...... इह अम्ह सामियस्स एक चेव अत्थि विवेइत्त, एवकं च णत्थि अणायारो। [10]

अस्तु, भाव-भाषा व काव्य का विविध विधाओ से युक्त आचार्य शीलाक की यह एक महत्त्वपूर्ण कृति जैन साहित्य भण्डार को गौरव प्रदान करती है। इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

(३) चउप्पन्नमहापुरिस चरियं—आम्रकवि

प्राकृत भाषा मे निबद्ध इस ग्रन्थ के १०३ अधिकारों मे चौपन महापुरुषो के चरित्र वर्णित हैं। इसका मुख्य छन्द गाथा है। श्लोक परिमाण १००५० है जिसमे ८७३५ गाथाए और १०० इतरवृत्त है। ग्रन्थ के आदि अन्त मे अम्म शब्द के अलावा कवि ने अपनी कोई विशेष जानकारी नही दी है। ग्रन्थ समाप्ति के उपसहार में बतलाया गया है कि ९ प्रतिवासुदेवो को जोड देने से तिरसठ शलाका पुरुष बनते हैं।

कुछ विद्वानो का अनुमान है कि वि० सं० ११९० मे रचित 'आख्यान-मणिकोश' वृत्तिकार आम्रदेव और प्रस्तुत कृति के रचयिता एक ही हैं।

---

१० सेठ देवचद लालभाई, बबई-सन् १९६८, अनु० आचार्य हेमसागरसूरि।

किन्तु उक्त वृत्ति मे अम्म और आम्रदेव के अभिन्न होने का कोई आधार नही मिलता है।[11]

इस ग्रन्थ की अनुमानतः १६वी शताब्दी की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमिसूरि शास्त्र संग्रह मे उपलब्ध है।[12]

(४) भवभावना

मलधारी आचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा रचित इस ग्रन्थ का रचनाकाल विक्रम संवत् ११७० सन् ११२३ माना जाता है, ग्रन्थकर्त्ता ने इसमे १२ भावनाओ का विवेचन किया है। कृति मे कुल ५३१ गाथाए वर्णित हैं। इसमे हरिवश का वर्णन सविस्तार मिलता है। कस वृत्तांत, वसुदेव चरित, देवकी वसुदेव विवाह, कृष्णजन्म, कसवध, नेमिनाथ चरित आदि विविध प्रसग इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय हैं। उक्त कृति मे हरिवश की उत्पत्ति को दस आश्रयो मे गिनाया गया है। इस प्रसग पर दशार्ह राजाओ का उल्लेख है। कंस का वृत्तात, वसुदेव का चरित्र, चारुदत्त की कथा, देवकी का विवाह, कृष्ण का जन्म, नेमिनाथ का जन्म, कसवध, राजीमती का जन्म, नेमिनाथ के वैराग्य आदि का वर्णन करते हुए कवि ने स्थान-स्थान पर अपनी काव्य प्रतिभा का भी परिचय दिया है। कथानक मे भरत चक्रवर्ती को आर्यवेदों का प्रवर्तक, तथा मधुपिग और पिप्पलाद को अनार्यवेदो का कर्त्ता बताया गया है। वसुदेव ने इन दोनो का अध्ययन किया। इसमे वाचा, दृष्टि, निजूह (मल्लयुद्ध) और शस्त्र इन चार प्रकार के युद्धो का उल्लेख है। मल्लो मे निजूह-युद्ध, वादियो मे वाक्युद्ध, अधम जनो मे शस्त्रयुद्ध तथा उत्तमपुरुषो में दृष्टियुद्ध होता है। रैवतक पर्वत पर वसन्तक्रीडा, जलक्रीडा आदि का सुन्दर चित्रण है। १२ भावनाओं का इसमे सविस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने अनेक सुभाषित दिए हैं जिनमे से कुछ द्रष्टव्य हैं—

जस्स न हिययम्मि बल कुणति किं हंत तस्स सत्थई।
निअसत्थेणऽवि निहणं पावति पहीणमाहप्पा॥

---

११ प्राकृत टैक्ट सोसायटी वाराणसी—आख्यानमणिकोश की भूमिका, पृ० ४२

१२. डॉ० गुलाबचन्द चौधरी, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० ७२

जिसके हृदय में शक्ति नहीं, उसके शस्त्र किस काम में आएंगे ? अपने शस्त्र होने पर भी क्षीण शक्ति वाले पुरुष मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

पढमं वि आवयाणं चिन्तेयव्वो नरेण पडियारो।
न हि गेहम्मि पलित्ते अवड खणिउं तरइ कोई।

—विपत्ति के आने के पूर्व ही उसका उपाय सोचना चाहिए। घर में आग लगने पर क्या कोई कुंआ खोद सकता है ?

(५) उपदेशमाला (पुष्पमाला) प्रकरण

मलधारी आचार्य अपनी इस एक अन्य कृति के लिए भी प्रसिद्ध है, कृति के तप द्वार मे वासुदेव के चरित का वर्णन हुआ है।[14]

प्रस्तुत कृति विषय, शैली और कवित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। दान, शील, तप और भावना इन ४ विषयो पर कवि का विवेचन अधिक मार्मिक दृष्टांतो के द्वारा विवेचित है। सुपात्रदान का फल अनेक दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। शील द्वार में शील माहात्म्य के उदाहरण दिए गए हैं। तपद्वार में वसुदेव, दृढ़प्रहारी, विष्णुकुमार और स्कंदक आदि के चरित्र हैं। भावना के अतर्गत सम्यकत्वशुद्धि आदि १४४ द्वारों का प्ररूपण है। इद्रियज के उपदेश में ५ इद्रियो के स्वरूप को समझाया गया है। कषाय निग्रह द्वार मे कषायो के स्वरूपो का प्रतिपादन किया गया है। कुलवास-लक्षण द्वार मे गुरु के गुणो का प्रतिपादन करते हुए शिष्य को विनीत बनने का उपदेश दिया गया है। उसे कहा गया है कि गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से प्रतिपालन करना चाहिए। गुरु के कुपित होने पर भी शात रहना चाहिए। दोष-विघटन-लक्षण द्वार मे आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत के भेदो से ५ प्रकार व्यवहार के बतलाये गये हैं। यहाँ आर्द्रकुमार का उदाहरण द्रष्टव्य है। विराग-लक्षण द्वार मे लक्ष्मी को कुलटा नारी की उपमा दी गयी है।

---

१३ भवभावना, प्र० ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वे० संस्था, रतलाम

१४ उपदेशमाला प्रकरण, प्र० ऋषभदेव जी केशरीमलजी संस्था, रतलाम सन् १९३६।

विनय लक्षण प्रतिद्वार में विनय का स्वरूप, स्वाध्याय-रति लक्षण द्वार मे वैय्यावृत्य, स्वाध्याय और नमस्कार का माहात्म्य बतलाया गया है। अनायतन त्याग-लक्षण द्वार में कुसग का फल, महिला संसर्ग के त्याग का प्रतिपादन है। पर-परिवाद निर्वृत्ति लक्षण में परदोष कथा को गर्हित कहा है। धर्म स्थिरता लक्षण द्वार में जिन-पूजा आदि का महत्त्व दिखलाया गया है परिज्ञान लक्षण द्वार में आराधना की विधि का प्रतिपादन है। एक-प्रकार से इस कृति में जैन आचार लक्षणों का प्रतिपादन हुआ है।

(६) कुमारपालपडिबोह (कुमारपालप्रतिबोध)

कुमारपालपडिबोह के रचनाकार सोमप्रभसूरि आचार्य विजयसिंह सूरि के शिष्य थे। कुमारपाल प्रतिबोध की रचना सन् ११८४ संवत् १२४१ की मानी जाती है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने गुजरात के राजा कुमारपाल को समय-समय पर जो शिक्षाएं और उपदेश दिए, उनका इन्होंने व्यवस्थित सकलन तैयार किया और प्रस्तुत ग्रन्थ ने आकार ग्रहण कर लिया। इस ग्रन्थ में दृष्टांत रूप में ५४ कथाएं भी कही गयी हैं। इसी क्रम मे मदिरापान के घातक परिणाम बताते हुए द्वारका दहन की कथा वर्णित हुई है और तप की महत्ता प्रतिपादित करने के प्रयत्न मे रुक्मिणी की कथा कही गई है।[15]

(७) कण्हचरित (कृष्णचरित)

प्रस्तुत कृति के रचनाकार देवेन्द्रसूरि जगत्चद्रसूरि के शिष्य माने जाते हैं। जैन पुराणो में वर्णित कृष्णकथा को ही प्रस्तुत कृति मे स्थान मिला है। कण्हचरित के रचनाकाल के विषय में इतिहास मौन है। किंतु इस तथ्य से इस सम्बन्ध मे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि रचनाकार देवेन्द्र-सूरि का स्वर्गवास सन् १२७० मे हुआ था। कण्हचरित मे कृष्णकथा की अतिव्यापक परिधि समाविष्ट हैं।[16] इसमे कोई सदेह नही है कि वसुदेव के

१५. कुमारपाल पडिबोह, (कुमारपाल प्रतिबोध) सम्पा० मुनि जिनविजय जी, सन् १९२० मे ओरिएण्टल गायकवाड सीरिज मे प्रकाशित—बडौदा, गुजराती अनुवाद—प्र० आत्मानन्द सभा, बबई।

१६. कण्हचरित—ले० देवेंद्र सूरि, प्र० केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९३०

पूर्वभव, कस जन्म, वसुदेव का भ्रमण, अनेक कन्याओ के साथ उनका पाणि-ग्रहण, कृष्ण जन्म, कस-वध, द्वारका निर्माण, कृष्ण की अग्र महिषियाँ, प्रद्युम्न जन्म, जरासंध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के विवाह की चर्चा आदि अनेक प्रसग चित्रित हुए है। इन मुख्य कथासूत्रों के साथ-साथ कतिपय गोण प्रसंग भी इस कृति के विषय बने है। जैसे—कृष्ण बलदेव के पूर्वभव, पाण्डवो का वर्णन, द्रौपदीहरण व श्रीकृष्ण द्वारा उसका उद्धार, गजसुकुमार चरित, थावच्चापुत्र का वृत्तात, श्रीकृष्ण के देहावसान पर बलदेव का विलाप और नेमिनाथ का वर्णन आदि।[17]

अस्तु, उपर्युक्त कुछ ऐसी रचनाए हैं जो स्वतन्त्र व प्राकृत में रचित हैं और जिनसे श्रीकृष्ण के जीवन और चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। ये आगमेतर साहित्य के अतर्गत परिगणित होती है। आगमेतर साहित्य के अन्तर्गत ही आगमो की टीका, भाष्यादि व्याख्यात्मक ग्रन्थ भी माने जाते हैं। इनका सम्बन्ध इनके मूल आगम ग्रन्थो से ही है और रचनाकार उसी सीमा मे बद्ध रहे हैं। अत. इन्हे स्वतन्त्र साहित्य की सज्ञा नही दी जा सकती। ऐसे व्याख्यात्मक, साहित्यिक भाग मे भी कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं, जिनमे श्रीकृष्ण चरित की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार की उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कतिपय रचनाएं हैं—

(१) कथाकोष प्रकरण।

(२) कथारत्न कोष।

(३) आख्यानमणि कोष आदि।

इन रचनाओ मे श्रीकृष्ण जीवन सन्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रसग की सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पडी है।

इस तरह यह देखा जा सकता है कि आगम जैन कृष्ण साहित्य में समग्र कृष्ण जीवन चरित मे से कृष्ण जीवन के कुछ प्रमुख प्रसग ही जैन कृष्ण साहित्य के विवेच्य विषय बने हैं। दूसरे और तीसरे अध्याय

---

१७ कण्ह चरित—ले० देवेंद्र सूरि, प्र० केशरीमल सस्था, रतलाम, सन् १९३०

में मैंने अपनी सुविधानुसार आगम और आगमेतर श्रीकृष्ण विषयक प्राकृत ग्रन्थो का सहारा लेकर अपने अनुशीलन के विषय को समझने और समझाने का प्रयास किया है। इसमें जो तथ्य उभरे हैं उन्हे मैंने यथासभव यथास्थान यथोचित मात्रा मे अभिव्यक्त कर दिया है। अगले अध्याय मे संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य का विशद साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया जावेगा।

४

संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य

जैन संस्कृत प्रतिनिधिक कृष्ण काव्य एक अध्ययन

भूमिका

अब तक हमने संस्कृत साहित्य मे जैन कृष्ण काव्यो के योगदान पर ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया है, पर जिन प्रातिनिधिक जैन कृष्ण काव्यो को हमने अपने अध्यनार्थ लिया है उनका विशेष अध्ययन अब यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

रविषेणाचार्य कृत "पद्मपुराण चरित" को चरित काव्य की दृष्टि से संस्कृत जैन काव्य का आदि ग्रन्थ माना गया है। जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवश पुराण की भूमिका मे बतलाया है कि पद्मपुराण मे रामचरित विवेचित है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ८४० मे की गयी थी। पर श्रीकृष्ण, चरित परंपरा को लेकर आचार्य जिनसेन का "हरिवंश पुराण" ही जैन संस्कृत कृष्ण काव्य का आदि ग्रथ माना जाता है। मेरे इस कथन की पुष्टि श्री नाथूराम प्रेमी ने अपने प्रकाशित ग्रन्थ जैन साहित्य और इतिहास ग्रन्थ मे कर दी है।[1]

संस्कृत साहित्य मे काव्य की अनेक विधाएं मिलती हैं जो अपनी सरसता व काव्य के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। इनका प्रभाव जैन साहित्य-कारो पर भी पडा। उन्ही के अनुकरण पर जैन लेखकों ने भी संस्कृत भाषा में भिन्न-भिन्न काव्य-विधाओ में श्रीकृष्ण साहित्य की सर्जना की। यहाँ

---

१ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२०-२८, ले० नाथूराम प्रेमी

पर मैं इस अध्याय मे काव्य-विधा की दृष्टि से निम्नलिखित रूप ले रहा हूँ जो क्रमश इस प्रकार हैं।

चरित नामान्त महाकाव्य, इतर नामान्त महाकाव्य, सन्धान काव्य तथा अनेकार्थ पौराणिक महाकाव्य।

चरित महाकाव्य

इस विधा मे मेरे अध्ययन मे केवल एकमात्र कृति उपलब्ध हुई है जिसका मेरे अध्येतव्य विषय से सबध है। अन्य जैन रचनाकारों की अन्य चरित्रों पर कई रचनाएं उपलब्ध हैं पर मेरे लिए उनका अध्ययन मेरी परिधि से बाहर होने से मैंने उनको अपने अध्ययन का विषय नही बनाया। चरित महाकाव्यो की सस्कृत साहित्य मे एक अपनी पद्धति रही है। जैन सस्कृत साहित्यकारो ने चरित्र विश्लेषण की अपनी एक मौलिक पद्धति को अपनाया है।

(१) प्रद्युम्न चरित

लेखक ने प्रद्युम्न चरित के साथ पूरा न्याय किया है, प्रद्युम्न चरित का लेखक लाटवागड सघ के सिद्धांतो के पारगामी आचार्य जयसेन मुनि के शिष्य गुणाकर सेन और उनके शिष्य महासेन सूरि ही इस महाकाव्य के लेखक थे। महासेन सूरि सिन्धुराज मुंज के द्वारा सम्मानित किए गए, इनके महामात्य पर्पट ने भी इनके चरणो की पूजा करके इनका सम्मान किया था तथा इस कृति को रचने की प्रेरणा भी दी थी। प्रद्युम्न चरित के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आने वाली पुष्पिका में इस प्रेरणा का उल्लेख मिलता है।[2]

इतिहास के अनुसार इस कृति का रचनाकाल वि० स० १०३१ (९७४ ई०) अनुमानाश्रित है।[3] प्रमाण मे यह बतलाया जाता है कि राजा मुज ई० स० ९७४ में अर्थात् वि० स० १०३१ मे परमारों की गद्दी पर आसीन हुआ था। मुंज के दो दान पत्र भी मिलते हैं जो इसी समय के हैं। कहा जाता है कि ई० स० ९९३-९९८ के बीच तैलप्पदेव ने मुज का वध किया था।

२ 'श्री सिंधुराजसत्कमहामहत्त्वश्रीपप्पटगुरो पण्डितश्रीमहासेनाचार्यस्य कृते' कवि आचार्य महासेन सूरि पप्पट के गुरु थे, ऐसा इससे पता चलता है।

३ प्रद्युम्न चरित, सं० नाथूराम प्रेमी, प्र० हिंदी ग्रंथ, रत्नाकर, बबई

मुंज का उत्तराधिकारी उसका अनुज सिंधुल था। जिनका दूसरा नाम नव साहसाक सिंधुराज था। इसी सिंधुल का पुत्र, भोज था। उसका वर्णन मेरुतुग की रचित प्रबध चितामणि मे मिलता है। मुंज के दो दान पत्रों का उल्लेख क्रमश. ९७४ ई० सन् अर्थात् संवत १०३१ और सन् ९७९ वि० सं० १०३६ मिलता है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि प्रद्युम्न चरित की रचना ९७४ ई० स० के आसपास हुई है, और महासेन सूरि का समय १०वी शती का उत्तरार्ध है।[4] यह रचना संवत् १९७३ में प्रकाशित हुई है।[5] जयपुर के कई ग्रन्थ भण्डारो मे इस कृति की हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं।[6]

प्रद्युम्न चरित की कथावस्तु

प्रथम सर्ग

द्वारावती की वैभवशाली नगरी मे पराक्रमी श्रीकृष्ण का शासन था। इनकी अतीव सुन्दरी पट्टरानी सत्यभामा थी। पृथुवशोत्पन्न श्रीकृष्ण स्वय भी अपूर्व सौदर्यराशि के धारक थे। उनके समक्ष समस्त शत्रु नतमस्तक हो जाते थे.

द्वितीय सर्ग

नारद जी का द्वारका आगमन होता है और शृगार व्यस्त सत्यभामा द्वारा उनकी उपेक्षा होती है। नारद जी ने सत्यभामा का रूपगर्व चूर करने के हेतु से श्रीकृष्ण का विवाह किसी अत्यत रूपवती राजकन्या से कराने की योजना बनायी। वे कुण्डिनपुर के नरेश भीष्म के यहाँ पहुंचे। उसकी राजकुमारी कन्या रुक्मिणी नारद जी का स्वागत-सत्कार करती है और उनको नम्रतापूर्वक नमन करती है। इससे प्रसन्न होकर वे उसे श्रीकृष्ण प्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इस अपरूप सुन्दरी का चित्रफलक लेकर वे पुन. श्रीकृष्ण के पास आ जाते है और श्रीकृष्ण रुक्मिणी पर अनुरक्त हो जाते हैं। वे मन ही मन उसे प्राप्त करने का सकल्प कर लेते हैं। रुक्मिणी ने भी

---

४ श्रीलाटवर्ग नभस्तलपूर्णचद्र—जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ४११

५ माणिकचद्र दिगबर जैन ग्रथमाला, बबई

६ जिनवाणी मासिक पत्रिका, जुलाई १९६९ पृ० २६,

श्रीकृष्ण की छवि को अपने हृदय में अंकित कर लिया और मन ही मन उन्हें पति मान लिया। भीष्मपुत्र रुक्मिकुमार बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। इस परिवर्तित परिस्थिति में वह शिशुपाल को विवाहार्थ निमन्त्रित करता है। इस तथ्य की सूचना देते हुए नारद जी ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी हरण कर लेने का परामर्श दिया।

तृतीय सर्ग

श्रीकृष्ण बलराम कुण्डिनपुर के उद्यान में पहुंचते हैं। उस समय कामदेवार्चनार्थ राजकुमारी रुक्मिणी भी उद्यान में आयी थी। श्रीकृष्ण उसका अपहरण कर लेते हैं। रुक्मि और शिशुपाल द्वारा पीछा किए जाने पर वे शिशुपाल का वध कर देते हैं और रुक्मिणी को द्वारका ले जाकर उसके साथ पाणिग्रहण करते हैं। इसी सर्ग में एक कौतुक और होता है, श्रीकृष्ण श्वेत वस्त्रों में सज्जित रुक्मिणी को उपवन में बैठा देते हैं और स्वयं उसके समीप ही छिप जाते हैं। सत्यभामा उपवन में आती है और इस श्वेतवस्त्रवृता अलौकिक सुन्दरी को देवांगना समझकर उसकी अर्चना करती है। वह वरदान मांगती है कि श्रीकृष्ण उसी के हो जाएं और रुक्मिणी की उपेक्षा करने लग जाएं। तत्काल श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं और उनके मन्द-मन्द हास से यह रहस्य भी प्रकट हो जाता है कि वह देवांगना रूपी स्वयं रुक्मिणी ही है। इससे दोनों सपत्नियों में घनिष्ठ मैत्री निर्माण हो जाती है।

चौथा सर्ग

श्रीकृष्ण और बलराम की उपस्थिति में रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों वचनबद्ध हो जाती हैं कि इनमें से जो भी पहले पुत्रवती होगी वह अपने पुत्र के विवाह के अवसर पर दूसरी का सिर मुण्डित करवा देगी। संयोग से रुक्मिणी को पहले पुत्र प्राप्ति हो जाती है। किंतु, जन्म के ५वें दिन ही धूमकेतु असुर द्वारा उसका अपहरण कर लिया जाता है और वह उस शिशु को वातरक्षक गिरि पर आरक्षित अवस्था में छोड़ जाता है। विद्याधर राज कालसंवर इस शिशु को अपना लेता है और घोषणा कर देता है कि उसकी रानी कनकमाला ने राजकुमार को जन्म दिया है। राजकुमार का नाम प्रद्युम्न रखा जाता है।

पाँचवां सर्ग

पुत्र के अपहरण से दु:खित रुक्मिणी विलाप करने लगती है। समस्त द्वारका मे तहलका-सा मच जाता है। घनी खोज की जाती है किंतु बालक के विषय में कोई सूत्र हाथ नही लगता है। सीमन्धर स्वामी का समवसरण जहाँ संयोजित था वहाँ नारद जी विदेह जाते हैं। वे स्वामी जी से रुक्मिणी के पुत्र के विषय में प्रश्न करते हैं और उन्हे उत्तर मिलता है कि धूमकेतु ने पूर्वभव के वैरवश उसका अपहरण कर लिया है। कालसवर के राज-परिवार मे बालक बड़ा हो रहा है और १६ वर्ष पश्चात् वह माता-पिता के पास लौट आएगा। केवली स्वामी प्रद्युम्न के पूर्वभव के वृत्तान्त भी सुनाते हैं। पूर्वभव की यह कथा सातवें सर्ग मे आयी है।

छठा सर्ग

अयोध्या नगरी मे राजा अरिंजय का शासन है। उसकी रानी प्रतिकर के दो पुत्र हैं—पूर्णभद्र और मणिभद्र। राजा मुनि के उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर विरक्त हो जाता है और पुत्र को राज्यासन सौंप देता है। दो वणिक् पुत्र भी श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं और मुनि द्वारा कुत्तियो एव मातग की पूर्वभव की कथाएँ सुनकर वे भी दीक्षित हो, अन्तत. स्वर्गलाभ करते हैं।

सातवाँ सर्ग

कौसलनगरी का राजा हेमनाभ है। इसके दो पुत्र मधु और कटभ है। मधु को राजा और कैटभ को युवराज बनाकर राजा अपनी रानी सहित संन्यास ग्रहण कर लेता है। मधु कैटभ दोनों अपार पराक्रमी होते हैं। सभी राजा महाराजा उनके चरणो मे नतमस्तक रहते हैं। भीम उनके राज्य में प्रवेश कर उत्पात मचाता है, नगर जला देता है और प्रजा को कष्ट देता है। अस्तु, मधु भीम पर आक्रमण करता है। मार्ग मे अन्य राजा हेमरथ उसका समर्थन व स्वागत करता है और मधु हेमरथ की रूपवती रानी पर आसक्त हो जाता है, किंतु मंत्रियो के परामर्शानुसार, वह पहले भीम का वध करता है और लौटते समय हेमरथ की रानी को भी अपने साथ ले आता है। प्रिया-विहीन राजा हेमरथ देवयोनि मे जाते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर मधु का जीव ही प्रद्युम्न रूप में जन्म लेता है और कैटभ का जीव जाम्बवती के पुत्र के रूप मे जन्म लेता है। राजा हेमरथ का जीव धूमकेतु के रूप में जन्मता

हैं। पूर्वभव के इसी वैर के कारण धूमकेतु प्रद्युम्न का अपहरण करता है। नारद जी को पूर्वभव की इस कथा का ज्ञान सीमन्धरस्वामी कराते हैं।

आठवाँ सर्ग

बालक प्रद्युम्न कालसंवर के राजपरिवार मे बडा होने लगता है। कालसंवर के अनेक शत्रुओं को वह पराजित करता है। प्रसन्न कालसंवर अपनी पत्नी को दिए गए वचन को पूर्ण करते हुए प्रद्युम्न को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। परिणामत. उसके ५०० पुत्र प्रद्युम्न से ईर्ष्या करने लगते हैं। प्रतिशोधवश वे उसे नाग, राक्षसादि के निवासवाली विजयार्द्ध कन्दरा में ले जाते हैं और अपने अपूर्व पराक्रम से प्रद्युम्न उन्हे अपने वश में कर लेता है।

प्रद्युम्न ज्यों-ज्यो आयु प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों वह रूप सौंदर्य और शक्ति-पराक्रम मे अधिकाधिक निखरता चला जाता है। रानी कंचनमाला उसके रूप माधुर्य पर आसक्त हो जाती है और प्रणय प्रस्ताव करती है। इस अनौचित्य से प्रद्युम्न हतप्रभ रह जाता है। किंतु, कचनमाला की काम प्रबलता देख कर वह युक्ति से काम लेता है। यदि वह कचनमाला का प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है तो उसे कालसंवर और उसके पुत्रो से सघर्ष करना पड़ेगा। ऐसी अवस्था मे आत्मरक्षा के उपाय के बहाने से वह कनकलता से विद्याएं ग्रहण कर लेता है। अंतत जब कचनमाला की मनोकामना प्रद्युम्न द्वारा पूर्ण नही होती तो वह उस पर अपने साथ बलात्कार करने का आरोप लगा देती है। राजा और उसके पुत्र क्रुद्ध हो जाते हैं। तब तक प्रद्युम्न की इस परिवार मे आवास की अवधि पूर्ण हो जाती है और द्वारका के लिए प्रस्थान करता है। उसे दंडित करने के लिए राजा सेना भेजता है। वह स्वय भी जाता है, किन्तु विद्याबल से प्रद्युम्न की सारी कथा का विवेचन करते हुए कचनमाला के षड्यत्र का रहस्य प्रकट कर देता है। इसमे कालसवर सतुष्ट होकर उस पर प्रसन्न हो जाता है।

नौवाँ सर्ग

प्रद्युम्न नारद जी के साथ जब द्वारका पहुंचता है तो उस समय वहाँ विवाहोत्सव का वातावरण है। सत्यभामा के पुत्र भानु का पाणिग्रहण दुर्योधन की पुत्री उदधि से होने वाला था। वचनबद्धता के अनुसार रुक्मिणी को अपने

सिर के केश कतरवाने थे। वह पति और पुत्र के जीवित होते हुए भी इस आसन्न विवशता की परिस्थिति से बडी दु:खित हो जाती है। माता को इस सकट से उबारने के लिए प्रद्युम्न वनेचर के वेष मे उदधि का हरण कर लेता है ताकि विवाह ही सम्पन्न न हो सके। नारद जी के समक्ष उदधि विलाप करती है और प्रद्युम्न अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। उदधि उस पर अनुरक्त हो जाती है। युद्ध मे वह सत्यभामा के पुत्र भानु को पराजित कर देता है। मरकट रूप धारण कर वह उपवन और नगर के अनेक भागो को नष्ट कर देता है। मेष द्वारा बलराम को भी मूर्च्छित कर देता है। तब वह अत्यन्त कुरूप और मलिन वेश में माता रुक्मिणी के भवन मे आता है। श्रीकृष्ण के निमित्त बने हुए सभी पकवान वह उसे खिलाता है। तब वह अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। विद्याबल से वह माता को बाल-क्रीडाओं के दृश्य दिखाता है। प्रद्युम्न इसके पश्चात् यादवों और दुर्योधन की सेनाओं के साथ मायावी युद्ध करता है।

दसवाँ सर्ग

इसी भीषण युद्ध मे प्रद्युम्न का बाण-कौशल देखकर श्रीकृष्ण चकित रह जाते हैं। वे उससे बाहुयुद्ध का प्रस्ताव करते हैं जिसे प्रद्युम्न स्वीकार कर लेता है। परस्पर सम्बन्ध से अपरिचित पिता श्रीकृष्ण अपने ही पुत्र प्रद्युम्न से बाहुयुद्ध के लिए उसके सामने खडे होते हैं। पिता-पुत्र को आमने-सामने देखकर नारद जी बडे कौशल से प्रद्युम्न का परिचय दे देते हैं। श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न होते हैं। आवभगत के साथ प्रद्युम्न का नगर प्रवेश होता है। श्रीकृष्ण उदधि के साथ प्रद्युम्न का विवाह कराते हैं। कालसवर और कनकलता भी विवाहोत्सव मे सम्मिलित होते हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग

श्रीकृष्ण जाम्बवती पुत्र शाम्ब को एक कुलीन स्त्री के शीलभंग के अपराध में निर्वासित कर देते हैं। वसन्तविहारार्थ वन को गए हुए प्रद्युम्न की भेंट शाब से होती है। वह शांब का विवाह सम्पन्न करता है, प्रद्युम्न के भी अन्य अनेक विवाह होते हैं। उसको अनिरुद्ध नामक पुत्र की प्राप्ति भी होती है।

बारहवाँ सर्ग

तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का पल्लव देश से विहार कर सौराष्ट्र मे आगमन होता है। यादवों ने समवशरण मे जाकर प्रभु की वदना की। भगवान ने बलदेव के प्रश्न के उत्तर मे व्यक्त किया कि द्वैपायन ऋषि, मदिरा और अग्नि के कारण द्वारका नष्ट हो जाएगी और जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्ण का निधन होगा। आत्मग्लानि वश जरत्कुमार वन मे जाकर आखेटक जीवन बिताने लगता है। यादवगण प्रभु की इस भविष्य-वाणी से चिन्तित हो उठते हैं।

तेरहवाँ सर्ग

श्रीकृष्ण अपनी राजसभा में आसीन थे। अन्य यादवकुमारों के साथ प्रद्युम्न हरि की सेवा में उपस्थित होता है और भगवान नेमिनाथ के सान्निध्य मे दीक्षा ग्रहण कर लेने की अपनी अभिलाषा व्यक्त करता है। माता-पिता से अनुमति पाकर वह दीक्षा ग्रहण कर लेता है। सत्यभामा और रुक्मिणी भी दीक्षित हो जाती हैं।

चौदहवाँ सर्ग

प्रद्युम्न मुनि घोर तपस्या करते हैं। गुणस्थानो का आरोहण करके और कर्म प्रकृतियों का क्षय करके वे केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। शाब, अनिरुद्ध, काम आदि भी मुनि जीवन ग्रहण कर लेते हैं। अंततः मुनि प्रद्युम्न अघातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाण लाभ कर लेते हैं।

संक्षेप मे चतुर्दश सर्गों मे वर्णित प्रद्युम्न चरित की यही कथा है।

आधार-ग्रन्थ कथानक-स्रोत

इस संस्कृत महाकाव्य के कथानक के आधार मुख्यत दो जैन पौराणिक ग्रन्थ रहे हैं।[7] जिनसेनाचार्य (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण एव २ गुणभद्राचार्य विरचित उत्तरपुराण।[8] प्रस्तुत कथानक का सबंध हरिवशपुराण के ४७ सर्ग (२०वें पद्य से) एव ४८ वे सर्ग (३९वे पद्य तक) से है। इसी प्रकार उक्त कथावस्तु उत्तरपुराण के ७२वें पर्व मे विवेचित है।

---

७. भारतीय ज्ञानपीठ काशी—हरिवशपुराण प्र० सन् १९६२

८ भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित उत्तरपुराण प्र० सन् १९५४

कवि महासेन ने प्रद्युम्नचरितम् की कथावस्तु में कतिपय स्थलों पर परिवर्तन भी कर दिए है। उदाहरणार्थ हरिवंशपुराणानुसार अनुरक्ता रुक्मिणी श्रीकृष्ण को प्रणयपाती भेजकर बुलाती है, जब कि प्रस्तुत काव्य मे श्रीकृष्ण नारद जी के परामर्श से स्वत. पहुंच जाते हैं और रुक्मिणी का हरण कर देते हैं। हरिवशपुराण के अनुसार प्रद्युम्नकुमार कालसंवर के एक शत्रु सिंहरथ को ही वश में करता है। जब कि प्रस्तुत रचना मे प्रद्युम्न द्वारा उसके सभी शत्रुओं का पराभव अंकित किया गया है। इसी से प्रसन्न होकर कालसवर उसे युवराज घोषित कर देता है। यह उल्लेख तो दोनों ग्रन्थो में मिलता है किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार शिशु प्रद्युम्न को अपनाते समय ही कालसंवर उसे युवराज बनाने का वचन कचनमाला को दे देता है। अब उसका पराक्रम देखकर वह अपना वचन पूरा करता है। दोनों काव्यो मे वर्णित है कि कालसंवर के पुत्र प्रद्युम्न को अनेक वनो कन्दराओं का भ्रमण करना पड़ा है, जहाँ पर उसे नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र प्राप्त होते हैं। हरिवशपुराण में यह प्रसंग पर्याप्त रूप से विस्तृत है। कतिपय वनों के नामों (कपित्थ, वल्लीक आदि) का उल्लेख भी है। प्रस्तुत काव्य मे ऐसा नही किया गया।

उत्तरपुराण में प्रद्युम्न चरित संक्षेप में वर्णित है, किन्तु महासेन कवि ने (प्रद्युम्नचरितम्) काव्य मे इसे ही पर्याप्त रूप से आधार के रूप में स्वीकारा है। धूमकेतु का वैर एव उसके द्वारा प्रद्युम्नहरण, प्रद्युम्न को अपनाते समय कचनमाला द्वारा कालसंवर से अनुरोध कि इस बालक को युवराज बनाया जाए। कालसवर द्वारा प्रद्युम्न को वन भ्रमण कराया जाना और प्रद्युम्न द्वारा नाग, राक्षसादि को वश मे किया जाना, जैसे कई ऐसे प्रसग हैं जो उत्तरपुराण और प्रस्तुत काव्य मे समान रूप से उपलब्ध होते हैं। साथ ही इन दोनों रचनाओ में कतिपय अन्तर भी मिलते हैं। कालसवर के परिवार मे बालक का नाम प्रद्युम्न या मदन नही है। यहाँ पर एक नाम देवदत्त रखा जाता है। प्रद्युम्न को गौरी और प्रज्ञप्ति दो विद्याएँ प्राप्त होती हैं। उत्तरपुराण के अनुसार केवल एक प्रज्ञप्ति विद्या की प्राप्ति होती है। एक प्रमुख असमानता विशेष रूप से ध्यातव्य है।

वह यह कि कचनमाला सर्व प्रकार से निराश होकर जब प्रद्युम्नकुमार पर शील भग करने का मिथ्या आरोप लगाती है तो उत्तरपुराणानुसार

कालसवर अपने पुत्रो को आदेश देता है कि प्रद्युम्न को वन मे ले जाकर उसका वध कर दें। वे उसे वन में ले जाते हैं और अग्निकुड में कूद पड़ने के लिए उसे प्रेरित करते हैं। देवी से उसे रत्नमय कुडल प्राप्त होते हैं। एक अन्य देवी उसे शंख और महाजाल प्रदान करती है। कतिपय अन्य स्थानों के देवियो से भी उसे अनेक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत काव्य का यह प्रसग अन्य ही प्रकार का है। इसी प्रकार द्वारका लौटने पर प्रद्युम्न प्रस्तुत काव्यानुसार जो लीलाएं करता है वे उत्तरपुराण के प्रसग से भिन्न रूप की हैं।

प्रद्युम्नचरितम् का महाकाव्यत्व

प्रस्तुत कथाकाव्य महाकाव्यत्व की कसौटी पर सफल सिद्ध होता है। कथावस्तु नियमानुसार अनेक सर्गों मे विभक्त है और सर्गों की सख्या भी १४ है। एक सर्ग में एक ही छद प्रयुक्त हुआ है और सर्गान्त सूचक छद-परिवर्तन भी मिलता है। काव्य की कथा वस्तु पुराण प्रसिद्ध है और इसमें करुण, वीर और शृगार रस अंगी रूप मे तथा शान्तरस अग रूप मे मिलता है। नगर, समुद्र, पर्वत, सन्ध्या, प्रात, ऋतु, यात्रा, युद्धादि के प्रभावपूर्ण वर्णन हैं। महाकाव्य का नायक प्रद्युम्नकुमार है, उसकी गणना कामदेवो मे की जाती है। यथा—

> कालेसु जिणवराणं चउवीसाणं हवंति चउवीसा।
> ते बाहुबलिप्पमुहा कंदप्पा णिरुवमाणाय ॥[१]

प्रतिनायक इसमे नही मिलता। यद्यपि प्रद्युम्न का संघर्ष श्रीकृष्ण से होता है और कालसवर से भी, किंतु इनमे से कोई भी खलनायक अथवा प्रतिनायक की कोटि मे नही है। खलनायक तो नायक द्वारा फलाप्ति के मार्ग में पग-पग पर अवरोध उपस्थित करने वाला पात्र होता है। पाठको की सहानुभूति भी उसके प्रति नही रहती। श्रीकृष्ण अथवा कालसवर की यह स्थिति नही रहती। युवराज घोषित होने पर कालसवर के पुत्र अवश्य ही प्रद्युम्न से ईर्ष्या रखते हैं किंतु वे भी निरन्तर विरोध नही करते।

१. चौवीस तीर्थंकरो के समयों मे अनुपम आकृति के धारक बाहुबली आदि चौवीस प्रमुख कामदेवो में माने गए हैं। कामदेव एक पद है जिस पर प्रत्येक तीर्थंकर के काल में किसी पुण्यात्मा को प्रतिष्ठित किया गया है। भगवान् नेमिनाथ के समय प्रद्युम्न को यह स्थान प्राप्त था।

नायक के जीवन को सर्वांश मे ग्रहण करते हुए कथानक का गठन किया गया है। इस प्रकार कथानक महाकाव्योपयुक्त बन गया है; किन्तु कथा क्रम का शास्त्रीय विकास इसमे नही मिलता। यह एक चरित काव्य ही है और सीधे-सीधे नायक के जीवन की घटनाओं को चित्रित करने की ओर ही कवि का ध्यान रहा है। यदि प्रद्युम्न द्वारा मोक्ष प्राप्ति को फल माना जाए तो इस फल को लक्ष्य मानते हुए कथानक का विकास ही नही हुआ। आद्योपांत इस फल की प्राप्ति का प्रयत्न नायक द्वारा नही होता और न इस प्राप्ति के मार्ग मे व्यवधान आये हैं।

वस्तु-व्यापार-वर्णन

देश-काल परिस्थिति के चित्रण में भी कवि का कौशल प्रकट हुआ है। महाकाव्य द्वारा सौराष्ट्र देश का बहुपक्षीय, सजीव चित्र उभरकर आया है। नदी-सरोवर, वन-उपवन, वनचर, जीवजन्तु आदि का यथास्थान सुदर वर्णन हुआ है। वस्तु वर्णन से कथ्य भी काफी सरस हो गया है। महाकाव्य मे यह वस्तु वर्णन दो रूपो मे प्रस्तुत किया जाता है। कवि द्वारा शुद्ध वस्तु वर्णन और दूसरा पात्रो की भावनाभिव्यजना के रूप मे। दोनो स्वरूप प्रस्तुत काव्य मे वर्णित हैं।

प्रथम प्रकार के वस्तुव्यापार वर्णन मे सौराष्ट्रदेश के वस्तुव्यापार-वर्णन द्रष्टव्य है·

> सहस्रसंख्यै सितरक्तनीलैः सरासि यस्मिज्जलजैर्विरेजु।
> कुतूहलेनेव मदीयलक्ष्मी द्रष्टुं समेतैं सुरराजनेत्रैं।[19]

जिस सौराष्ट्र देश के सरोवरो मे श्वेत रक्त और नीलवर्ण के सहस्रों कमल विकसित हो सुशोभित हो रहे थे। उन्हे देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो इन्द्र के सहस्र नेत्र कुतूहल के कारण इस देश की लक्ष्मी को देखने के लिए प्रस्तुत हो गए हो।

रमणियाँ अपने भवनो की छत पर बैठकर गीत गाती थी, उनके मनोहर गीतो को सुनकर चन्द्रमा की गोद मे रहने वाला हरिण मधुर गान

१०. प्रद्युम्नचरित्र, सपा०— नाथूराम प्रेमी, प्र० हिन्दीग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

से आकृष्ट होकर वहाँ चला आता था। अतएव चन्द्रमा को वहाँ से आगे चलाना कठिन था क्योंकि जिस स्थान पर चन्द्रमा स्वय उपस्थित हो उस स्थान के सौन्दर्य का चित्रण करने के लिए कवि को उपमान नही मिला।

दूसरे प्रकार का वस्तुवर्णन चरित्र विवेचन के साथ आपातत आ गया है। अत. यहाँ मैंने उसे नही लिया है।

चरित्र-चित्रण

प्र स्तुत कथाकाव्य का नायक प्रद्युम्न राजवशोत्पन्न कुलीन और गुण-शाली पुरुष है। वह २४ कामदेवो मे स्थान प्राप्त प्रतिष्ठित बाहुबली और पुण्यपुरुष है। वह जितेन्द्रिय सत्पुरुष है। प्रद्युम्न मे शास्त्रीय दृष्टि से एक धीरोदात्त नायक के समस्तगुण विद्यमान हैं। सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियो से घिर जाने पर भी वह कभी अधीर नही होता और साहस नहीं खोता। विजयाद्रि की गुफा मे उसकी इस विशेषता का परिचय मिलता है जब वह फुफकारते हुए प्रचड विषधर से भिड जाता है और पूछ पकडकर वह उसे भूमि पर पटक देता है।[11] आम्रवृक्ष पर रहने वाले कपिरूपधारी धनद से भी प्रद्युम्न निर्भयता के साथ युद्ध करने लगता है।[12] इसी प्रकार कपित्थवन मे कपिरूपधारी भयकर असुर से उसने बाहुयुद्ध किया और उसकी सूड, दांत और पैर पकडकर उसे ऐसा घुमाया कि वह मदहीन हो गया।[13] वराहगिरि पर वराह के साथ भी उसने वीरता के साथ युद्ध किया।[14] प्रद्युम्न सयम और प्रलोभनो पर विजय प्राप्त करने वाला है। कचनमाला के प्रणयप्रस्ताव मे उसकी सयम-शीलता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। द्वारका-विनाश सम्बन्धी भविष्यवाणी से उसके मन मे विरक्ति जागृत हो जाती है और वह दीक्षित होकर अतत. निर्वाण प्राप्त कर लेता है। कवि ने इस प्रकार प्रद्युम्न कुमार के चरित्र का एक उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है।

अन्य पुरुष-पात्रों मे श्रीकृष्ण, बलराम, नारद और कालसवर के

---

११. प्रद्युम्न चरित ८।१५-१८
१२ " ८।५६-६२
१३ " ८।६४-६८
१४ " ८।७१-८२

उल्लेखनीय चित्रण मिलते हैं। कालसंवर उदात्त और दयालु स्वभाव का है। पर्वतशिखा पर असहाय शिशु को देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठा और उसने उसे पुत्रवत् अपना लिया। कंचनमाला को यह आश्वासित किया कि उसके शिशु को युवराज बनाया जाएगा। कालसवर वीर भी है। प्रद्युम्न के साथ के युद्ध में उसकी इस विशेषता का परिचय मिलता है।

नारी-पात्रों मे रुक्मिणी और सत्यभामा को चित्रण मे प्रमुखता मिली है। सत्यभामा के चरित्र में सपत्नी डाह का रग विशेष रूप से उभरा है। इसके विपरीत रुक्मिणी को सद्गुण-सम्पन्न, सुशील और विवेकयुक्त दिखाया गया है। शिशु प्रद्युम्न के अपहरण के समय वह जिस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करती है उससे उसके वात्सल्यपूर्ण मातृत्व की झलक प्राप्त होती है। पुत्र के पुनर्मिलन से वह हर्षोन्मत्त हो बाल-लीलाओं से विभोर हो उठती है। इससे उसकी ममता की गहनता का परिचय मिलता है। कवि ने रुक्मिणी के चरित्र मे नारी सुलभ सभी सद्गुणो का समावेश बडी कुशलता के साथ कर दिया है।

रस, छंद और अलंकार योजना

प्रस्तुत काव्य प्रद्युम्नचरितम् मे कवि महासेन ने स्थान-स्थान पर विभिन्न रसो की सृष्टि की हैं। शृंगार, करुण, बीभत्स, रौद्र, शान्त आदि का परिपाक इस रचना मे दृष्टिगत होता है। भावो के स्वाभाविक उद्रेक एवं विभावो के प्रत्यक्षीकरण के निमित्त अलंकारो का आश्रय सार्थक रहता है। इस उद्देश्य से अलंकारो के प्रयोग में कवि प्रस्तुत कृति मे सफल रहा हैं। काव्य मे सगीत तत्त्व की अभिवृद्धि के लिए कवि ने अनुप्रासो का विशेष रूप से प्रयोग किया है। यमक, पुनरुक्ति, वोप्सा, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रान्तिमान, संदेह, अपन्हुति, अतिशयोक्ति, असगति, व्यतिरेक, अर्थान्तर-न्यास, परिसख्या आदि अनेक प्रकार के अलकार काव्याभूषण नगीनों की भाँति जडे हुए हैं। इसी प्रकार प्रसंगानुरूप छदो का प्रयोग भी व्यवस्थित ढग से हुआ है। उपजाति, शार्दूल विक्रीडित, वसततिलका, वशस्थ, प्रहर्षिणी, द्रुतविलबित, पृथ्वी, अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, ललिता, शालिनी आदि अनेक प्रकार के छदो का कवि ने प्रयोग किया है।

रस

शृगाररस—काव्य मे रुक्मिणी और श्रीकृष्ण की केलिक्रीडा के रूप में संयोग शृगार का चित्रण चित्रित है—यथा[15]—

> नर्मंमर्मपरिबालनागिर सत्यया सह विधाय केशव'।
> स्वाञ्चलस्थांकितवक्त्रपङ्कज. स्वापकेलिमालम्ब्य तस्थिवान्।

यहाँ रुक्मिणी आलम्बन और श्रीकृष्ण आश्रय हैं। रुक्मिणी के साथ भोगे हुए भोगो को श्रीकृष्ण सत्यभामा के यहाँ शृगारोचित सपत्नीक ईर्ष्या के रूप मे व्यक्त करते हैं। अतः रति के स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

मालती, चन्दन, शरत्कालीन चाक्ष, कमल, घनसार, उशीर आदि शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुए सताप को वृद्धिगत करती थी। विरहाग्नि से सतप्त उसे किसी भी प्रकार से शाति प्राप्त नही हो रही थी।

इस प्रसग मे हेमरथ की पत्नी आलबन है। उद्दीपन वसत ऋतु है, अनुभाव मधु की शारीरिक चेष्टाएं हैं और हर्ष-चिन्ता और औत्सुक्य आदि सचारी भाव है। इसी प्रकार शातरस वीररस आदि का भी कवि ने सुन्दर प्रयोग किया है।

कतिपय अलंकारो के उदाहरण

काव्य-सौष्ठव की श्रीवृद्धि के लिए अलकारो का अपने आप मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत कृति अलकारो की दृष्टि से भी समृद्ध है।

अनुप्रास[16]

> मुखपंकज मुखसुगन्धियया न हि।
> पीयतेऽस्य सरसं सुदृशा ॥

यहा मुखपकज और मुख सुगन्धि मे अनुप्रास है।

विरोधाभास [17]

> मातगसंगसक्तोऽपि भुञ्जानो मेदिनीमपि।
> स्त्रीमनोनेत्रचोरोऽपि स तथापि सतां यत।

---

१५ प्रद्युम्न चरित्र ३।४५
१६ वही ८।११७
१७. वही ६।१४

मातग चाण्डाल के साथ रहने पर भी सतां/सज्जनो द्वारा मान्य है। यह विरोधाभास है। अत जो नीच दुराचारी चाण्डाल के साथ रहेगा, वह सज्जनो द्वारा मान्य नही हो सकता। चाण्डाल हाथियो के सहित होने पर भी वह सज्जनो द्वारा मान्य था। यहां पर भी यही विरोधाभास है। इसी प्रकार यमक, उपमा, भ्रान्तिमान आदि के उदाहरण भी दृष्टव्य हैं।

भाषा-शैली

प्रसाद मधुर वाणी द्वारा संस्कृत काव्य को रस सरसता प्रवाहित करने के लिए प्रख्यात कवि महासेन की काव्यशैली वैदर्भी ढग की है। इसी शैली का प्रयोग उनके काव्य मे भी हुआ है। परिणामतः इसमे सरलता, प्रासादिकता ओर स्वाभाविकता के सहज दर्शन हो जाते हैं। पद-लालित्य इस काव्य की प्रमुख शैलीगत विशेषता है। स्थान-स्थान पर सूक्तियो के प्रयोगों से शैली और भी सशक्त हो उठी है। जैसे कुछ सूक्तियां इस पद में सूचित हैं।

प्राकृतो हि विनयो महात्मनाम्।
शाक्तो हि नाम परमानवतामुपैति ॥

प्रद्युम्नचरितम् सौंदर्य और शृगार का काव्य है। प्रथम दो सर्ग तो बडे ही रसयुक्त और आकर्षक हैं। काव्य के प्रणयन मे कवि को सौन्दरानन्द, बुद्धचरित, रघुवश, मेघदूत, कुमारसभव आदि महान रचनाओ से प्रेरणा मिली है, ऐसा प्रतीत होता है। पदलालित्य के लिए निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

न दीनजाता नवलस्वभावा न निम्नगावा न कलंकितापि।
जलाशया नैव च सत्यभामा भार्याभवत्तस्य पराजितश्री ॥

समाधि टूटने पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के उठते हुए सौंदर्य का अवलोकन करते हैं, ऐसा कवि ने लिखा है—

निघुन्तुद केशकलापमर्मणा, मुखेन्दुमादातुमिवाप सनिधिम्।
अजायतास्याः सुपयोधरोन्नति समुन्मनीकर्तुं मनगकेकितम् ॥

शीतल वायु के चलने से ससार काप रहा है और बादलो से मूसलाधार वृष्टि हो रही है। कृषक लोग कापते हुए समस्त हलोपकरणो को छोडकर घर चले गए हैं।

प्रसाद माधुर्य तथा ओज इन समस्त गुणों का समन्वय भी यत्र तत्र उपलब्ध होता है। यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

माधुर्यगुण[18]

तन्वी स्वयं मुरजिता करपंकजाभ्यां उत्थापिता मलयजादि रसेन सिक्ता।
पूर्णं नभो विदधती करुणस्वनेन मूर्च्छां विहाय हरिणा सहसा रुरोद ॥

ओजगुण[19]

रेणुर्घण्टासैन्ययोर्वारणानां चक्रुः शब्द काहलं काहलश्च।[20]
भेरीभम्भास्तूर्यभेदाश्च येऽन्ये चेरुर्विश्वे व्याप्तदिक्काः स्व न्तात्।[21]

प्रसाद

मित्रं समोहारि यशो विभूषा।
नियतितो जलधौ पतिते रवौ।

यह सत्य है कि महाकवि ने किसी भी भाव को ज्यो का त्यो ग्रहण नहीं किया है, उसने अपनी प्रतिभा से भावो में स्फीति उत्पन्न की है और उन्हे एक नया परिवर्तन रूप प्रदान किया है जो अत्यंत मनोहारी वन गया है।

छन्द-योजना

काव्य मे छदों का उपयोग कवि अपनी विशद अभिव्यंजना के लिए करता है। यह अभिव्यक्ति नाद सौन्दर्य युक्त शब्दों से प्रकट होती है। छंद काव्य के लिए ध्वनि सम्बन्धी एक कला है। इसके साथ गति, यति और लय ये भी आवश्यक हो जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में छद वास्तव में बधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढाचो (पैन्टर्स) का योग है, जो निर्दिष्ट लम्बाह का होता है। लय-स्वर के चढाव-उतार-स्वर के छोटे-छोटे

---

१८ प्रद्युम्न चरित्र ५।१६

१९ वही ९।३४६

२० वही १।२१

२१ वही ४।२८

ढाँचे ही हैं जो किसी छद के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं।[22] कवि ने विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

प्रकृति-चित्रण

कवि ने वसन्त, शरद्, सन्ध्या, रजनी, चन्द्र, सूर्य और उषा आदि का प्रकृति चित्रण बडे सुन्दर ढग से किया है। यहाँ पर दो उदाहरण वसन्त के वर्णन मे द्रष्टव्य हैं—प्रथम मे वसन्त के प्रभाव का विवेचन है तो दूसरे में वसन्त की रात्रि की क्षीणता का विवेचन है—

> सर्वतो मुकुलयन् सहकारान् पुष्पयन्ननु वनं वनराजीम्।
> अन्तरेऽत्र समवाप वसन्तः क्षारसेवनमिव क्षतमध्ये॥[23]
> यामिनी प्रियतमापवृशत्व खण्डितेव शशिना दयितेन।
> वायवो मलयजा ववुरस्य तापशान्तिकृतये कृपयेव॥[24]

(२) नेमिनिर्वाणकाव्यम्

कृति और कृतिकार

महाकाव्य नेमिनिर्वाणकाव्यम्[25] अपने १५ सर्गों की परिधि मे २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का जीवन वृत्तात प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत महाकाव्य के कर्त्ता वाग्भट प्रथम हैं। वाग्भट की यह प्रसिद्ध कृति जहाँ अपने काव्य चमत्कारो के लिए विख्यात है वहाँ अपने दूसरे पक्ष मे भी वह पीछे नही है। काव्य अपने मार्मिक प्रसगो के कारण पाठको के मानस पटल पर छा जाता है और अपना प्रभाव अकित कर देता है।

वाग्भट नामधारी एकाधिक विद्वान हुए हैं। प्रस्तुत महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है जिसका लेखनकाल १७२७ विक्रम-संवत् है।[26] उक्त प्रति में एक प्रशस्ति श्लोक मिलता है।

---

२२ आचार्य रामचद्र शुक्ल, काव्य मे रहस्यवाद, पृ० १३५, प्रथम सस्करण, स० १९८६

२३ प्रद्युम्न चरित्र ७।३७

२४ वही ७-३८

२५. नेमिनिर्वाण—स० प० शिवदत्त शर्मा तथा काशीनाथ शर्मा, प्रका० निर्णय सागर प्रेस, बबई, १९३६ ई० मे प्र०।

२६. जैन सिद्धात भवन आरा की प्रति।

अहिच्छत्रपुरोत्पन्न प्राग्वाट्कुलशालिनः ।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

यह प्रशस्ति श्लोक श्रवण बेलगोला के स्व० पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्री के पुस्तकालय वाली नेमिनिर्वाण काव्य की प्रति में प्राप्त है।[27] और, इससे विदित होता है कि कवि वाग्भट प्रथम का जन्म प्राग्वाट् (पोरवाड) वंश मे अहिच्छत्रपुर में हुआ और उनके पिता का नाम छाहड था। कवि दिगंबर संप्रदाय का था। अतः उसने मल्लिनाथ को कुमार रूप में नमन किया है। ओझा जी के अनुसार नागोर का पुराना नाम नागपुर या अहिच्छत्रपुर है।[28]

नेमिनिर्वाण काव्य के रचनाकाल के विषय में कोई अन्तर्साक्ष्य उपलब्ध नहीं होती। वाग्भट्टालंकार के रचयिता वाग्भट द्वितीय ने अपने लक्षण ग्रन्थ मे प्रस्तुत काव्य के कतिपय अंशों को ग्रहण किया है। इससे जहाँ यह विदित होता है कि नेमिनिर्वाणम् काव्य का कर्त्ता वाग्भट द्वितीय का पूर्ववर्ती कवि अर्थात् वाग्भट प्रथम है। वहीं यह भी संकेतित हो जाता है कि यह काव्य वाग्भटालंकार से पूर्व की रचना है। इस आधार पर अनुमानित किया जाता है कि नेमिनिर्वाण काव्य की रचना वि० स० ११७९ से पूर्व की है।[29]

कथानक-प्रथमसर्ग—आरंभ में कवि ने २४ तीर्थंकरो को श्रद्धा सहित नमस्कार किया है और तत्पश्चात् मूलकथा आरंभ की है। सौराष्ट्र में दुवारावती नगरी मे यदुवंश श्रेष्ठ समुद्रविजय का शासन है। प्रजाहित और सुव्यवस्थित शासन चले इसलिए राजा अपने अनुज वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। पुत्राभाव में राजा चिंतित रहते हैं और अनेक व्रतादि करते हैं।

द्वितीय एवं तृतीय सर्ग—एक दिन राजा समुद्रविजय आकाश से देवागनाओं का अवतरण देखते हैं। उनसे उनको सूचना मिलती है कि

---

२७ जैन हितैषी भाग १२ अंक ७-८, पृ० ४८२

२८. सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियो का योगदान, पृ० २८२, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

२९ वही पृ० २८३

शिवारानी के गर्भ मे तीर्थंकर का जीव आने वाला है। शिवारानी १६ उज्ज्वल स्वप्न देखती है और पति से उनके फल के विषय मे पूछती है। राजा उत्तर में कहता है कि पुत्र रत्न की प्राप्ति होने वाली है।

चौथा सर्ग—तीर्थंकर के गर्भ मे आने से रानी का सौन्दर्य विकसित होने लगता हैं। श्रावण शुक्ला षष्ठी को पुत्र का जन्म होता है। चतुर्निकाय देवगण द्वारावती पहुच जाते हैं।

पाँचवाँ सर्ग—इद्राणी एक मायावी पुत्र को लेकर प्रसूति गृह मे आती है। शिवारानी के पास उसे लिटाकर त्रिलोकीनाथ को अपने साथ ले जाती है। इद्र बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है और पाण्डुशिला पर देवता भगवान का अभिषेक करते हैं। इद्र उनका नाम रखता है अरिष्ट-नेमि।

छठा सर्ग—अरिष्टनेमि जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। क्रमशः विकसित होते हुए अरिष्टनेमि युवा हो गए। यादवगण रैवतक पर्वत पर वसन्तोत्सव मनाने जाते हैं। सारथी अरिष्टनेमि को भी वहाँ जाने को प्रेरित करता है।

सातवाँ सर्ग—रैवतक पर्वत अपनी प्राकृतिक शोभा से सजा अनूठी छटा बिखेर रहा था। नेमिनाथ इस शोभा से बडे प्रभावित हुए। प्रकृति के सौंदर्य से और प्रकृति के इस अपार रूप पर मुग्ध होकर वृक्षो की सघन छायातले पट-मदिर मे निवास करने लगे।

आठवाँ सर्ग—माधव भी क्रीडार्थ रैवतक पर्वत पर पहुंचते हैं। यादव अपनी सुन्दरी युवतियो के साथ भाँति-भाँति की जल क्रीडाएं करते है और आनदित होते हैं।

नौवाँ सर्ग—सूर्यास्त हो जाता है। चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी बिखेरने लगता है। यादव युवक-युवतियाँ नाना भाँति की प्रणय-क्रीडाओ से सभोग सुख प्राप्त करने लगे।

दसवाँ सर्ग—मधुपान का दौर चलता है। यादव कुमार और युवतियाँ छककर मधुपान करती हैं। उन्मत्त और अलमस्त युवक बहुविधि से सुरत-क्रीडाओ में प्रवृत्त होते हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग—इसी अवसर पर उग्रसेन की अतीव सुन्दरी कन्या राजीमती भी रैवतक पर्वत पर पहुचती है। अरिष्टनेमि पर वह मुग्ध हो जाती है। सखिया राजकुमारी को शात करने लगती हैं, किन्तु अरिष्टनेमि के स्मरण मात्र से उसकी आखें डबडबा आती है। सयोग से राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण को महाराज उग्रसेन के पास अरिष्टनेमि के लिए राजीमती की याचना के साथ भेजते है और उग्रसेन अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं। दोनों पक्षो मे विवाहोत्सव के आयोजन की तैयारियाँ होने लगती हैं।

बारहवां सर्ग—वरयात्रा सजी। अरिष्टनेमि रथारूढ़ होकर राजमार्ग पर क्रमश. आगे बढ रहे थे। भाति-भाँति के अलकारो से सारा मार्ग सज्जित था। वधूवेष मे सज्जित राजीमती वर के स्वागतार्थ राज भवन के द्वार पर आकर उपस्थित होती है।

तेरहवा सर्ग—रथ से उतरने के लिए अरिष्टनेमि प्रस्तुत होते है। इतने मे वे अनेक पशु-पक्षियो का रुदन सुनते हैं और ठिठक जाते हैं। सारथी से उन्हे ज्ञात हुता है कि विवाह के अवसर पर सामिष व्यंजनो के लिए अनेक पशु-पक्षियो को समीप के वाडे मे बद कर रखा है। यह सुनकर नेमिकुमार को अपना पूर्वभव स्मरण हो आता है। विवाह त्याग कर वे सयम का वरण करते हैं और तोरण से ही लौट जाते हैं। वे अपने आखेटक जीवन से लेकर जयन्त विमान मे उत्पन्न होने तक का पूर्वभव वृत्तान्त भी सुनाते हैं।

चौदहवां सर्ग—मुनि अरिष्टनेमि घोर तप करते हैं। कायोत्सर्ग पूर्वक तप मे लीन मुनि शुक्ल द्वारा कर्मबन्धनो को नष्ट कर केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेते हैं।

पन्द्रहवाँ सर्ग—केवली हो जाने पर देव भगवान की स्तुति करते हैं। विशाल समवशरण रचा जाता है। धर्मोपदेशार्थ भगवान् विभिन्न देशो मे विहार करते रहते हैं। अन्त मे अघातिया कर्मों का क्षयकर मुक्त हो जाते हैं।

कथानक के आधार ग्रथ

आचार्य जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवश पुराण को प्रस्तुत काव्य के

कथानक की दृष्टि से कवि द्वारा आधार माना गया है। अधिकांश कथानक इसी पुराण ग्रंथ पर आधारित हैं। प्रस्तुत काव्य में अरिष्टनेमि की जन्म तिथि श्रावण शुक्ला ६ दी गयी है। जो हरिवंशपुराण से भिन्न है।[30] उत्तर पुराण में अवश्य ही इसी तिथि का उल्लेख किया गया है।[31] हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण के अतिरिक्त कवि वाग्भट्ट के द्वारा तिलोयपण्णति जैसे आर्षग्रंथ का सहारा भी लिया गया है। रैवतिक पर्वत पर अरिष्टनेमि और राजीमती के मिलन का प्रसंग और दोनों में परस्पर स्नेह जागरित हो जाना, कथानक यह भाग कदाचित् तिलोयपण्णति के प्रभाव स्वरूप ही आया है। प्रबन्ध काव्य के कथानक के स्वरूप की कसौटी पर नेमिनिर्वाण काव्य के कथानक को कसकर देखें तो हमें ज्ञात होता है कि इस दृष्टि से प्रस्तुत कथानक में शिथिलता है। कवि ने अधिकतर बाह्य प्रकृति का अथवा कुछ आयोजनों का ही वर्णन किया है। अरिष्टनेमि के जीवन के कतिपय मार्मिक प्रसंगों को ही कवि ने चुना है और उन्हीं का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत वर्णन कर दिया है। नायक के समग्र जीवन को अधिक महत्व नहीं दिया है। अरस्तू ने कथानक गठन में अन्विती पर पर्याप्त बल दिया है।[32]

महाकाव्य

महाकाव्य के स्वरूप-संरचना संबंधी लक्षण इस ग्रंथ में निहित हैं। मानव-मात्र के हृदय में स्थापित धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक और निजन्धरी विश्वासों का भी कवि के द्वारा अच्छा विवेचन हुआ है। प्रभा, सन्ध्या, रात्रि, नगर, देश, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप आदि के अलंकृत वर्णनों की प्रचुरता भी इस काव्य में मिलती है। महाकाव्य का नामकरण नायक द्वारा फल प्राप्ति के आधार पर किया गया है। द्वारावती नगरी के वैभव एवं

---

३० शुद्धवैशाखत्रयोदशतिथौ —हरिवंशपुराण, १९६२ ई०। भारतीय विद्यापीठ, काशी

३१. श्रावणे सिते षष्ठ्या —उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४।

३२ अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ० नगेन्द्र, पृ० २४, प्रकाशक—हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली वि०वि०, १९५४ ।

सौन्दर्य का चित्रण बड़े विस्तार के साथ किया गया है। उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, स्रग्धरा, अनुष्टुप् आदि छदो का व्यवहार पाया जाता है। कवि ने वर्णन चमत्कार-सृजन के लिए वस्तुओ का चित्रण करते हुए लिखा है—

विराजमानामृषभाभिरामैर्ग्रामैर्गरीयो गुणसंनिवेशाम् ।
सरस्वतीसन्निधिमाजमूर्वी ये सर्वतो घोषवतीं वहन्ति ।।[33]

सुराष्ट्र देश बैलो द्वारा सुन्दर ग्रामो से शोभायमान गुरुतर, गुणो की सन्निवेश रचना, पवितबद्ध गृहो से युक्त, सरस्वती नदियो के सामीप्य को प्राप्त और गोपवसतिकाओ से युक्त पृथ्वी को सब ओर से धारण करते हैं।

श्लेष के कारण उक्त पद्य का अप्रकृत अर्थ भी है, जिसमे कवि ने संगीत के सिद्धातो का निरूपण किया है तथा सुराष्ट्र देशवासियो को सगीत प्रेमी सिद्ध किया है। द्वारामता नगरी का सजीव और सुन्दर चित्रण चित्रित करते हुए कवि ने लिखा है कि—

एवविधां तां निजराजधानीं, निर्मापयामीति कुतूहलेन ।
छायाछलादच्छजले पयोधौ, प्रचेतसाया लिखितेव रेजे ।।[34]

अर्थात् स्वच्छ जल से युक्त समुद्र मे द्वारावती नगरी का जो प्रतिबिंब पड रहा था उससे ऐसा प्रतीत होता था कि जलदेवता वरुण ने "मैं भी अपनी राजधानी को इसके समान सुन्दर बनाऊगा" इस कुतूहल से मानो एक चित्र खीचा हो।

प्रकृति-वर्णन

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि मे प्रकृति-वर्णन का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत महाकाव्य मे यह गुण भी यत्र तत्र दिखलाई देता है। कुमुदिनी की सहानुभूति का वर्णन करता हुआ कवि उसमे मानवीय भावो का सचार कर रहा है—

करुणस्वर विलपतोरनेकश
पुरतो निशाविरहिणोर्विहगयो ।

---

३३ नेमिनिर्वाणकाव्यम् १।३३
३४. ,, १।३८

विपदं विलोकयितुमक्षमा ध्रुव
　　　　नलिनी सरोजनयनं न्यमीलयत् ॥[35]

रात्रि में विहार करने वाले और सूर्य के वियोग से विलाप करते हुए पक्षियों की करुण-क्रन्दनरूपी विपत्ति को देखने में असमर्थ कुमुदिनी ने अपने कमल के समान नेत्र वन्द कर लिए। यहा कुमुदिनी मे मानव भावनाओं का आरोप किया गया है।

रसभाव योजना

प्रस्तुत काव्य मे अङ्गी रस शात है और शृ गार, वीर, करुण रसो का अङ्ग रूप में समावेश हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्व हैं—

शृंगार रस

नलिनीदलानि न न हारयष्टय-
　　　　स्तुहिनांशवो न न जलार्द्रमशुकम्।
त्ववृते तवगपरितापशान्तये,
　　　　विपदोऽथवा स्वजनसगभेषजा ॥[36]

प्रस्तुत श्लोक मे दुर्वह नितम्व मण्डल वालो नायिका विनयान्वित होने पर भी, नायक को पास में आया हुआ जानकर भी अपना आसन न छोड सकी। शयन कक्ष में पति के आने पर उसके मुख से अनायास ही दूसरी नायिका का नाम सुन लेने से शरीर-दाह के साथ कमलिनियो से निर्मित शय्या को नायिका ने छोड़ दिया। प्रियमग न होने पर उसके हृदय पर दृढतापूर्वक अपने मुख कमल को रख देना तथा पहले सोची हुई बात को कह डालना, इस प्रकार सखियो द्वारा कहे जाने पर नववधुओ ने कृत्रिम क्रोध प्रकट किया। यथा—

दृढमासजेररसि वक्त्रमर्पयेर्भणित च पूर्वगुणितं प्रकाशये ॥
प्रियसङ्गमेत्विति सखीभिरीरिता कृतक प्रकोपमकरोन्नवा वधू. ॥[37]

३५.　　"　　८।११

३६.　　"　　६।४६

३७　　"　　६।५४

इस प्रकार संयोग श्रृंगार का सांगोपांग चित्रण कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है।

शान्त रस

संसार से निर्वेद प्राप्ति के प्रसंग में शांत रस की योजना हुई है। कवि ने लिखा है कि—

> दानं तपो वा विववृक्षमूल श्रद्धानतो ये न विवर्ध्य दूरम्।
> स्वनन्ति मूढा स्वयमेव हिंसा-कुशीलतास्वीकरणेन सद्यः ॥[38]

अर्थात् जो दान और तपरूपी धर्मवृक्ष पर श्रद्धा न करते हुए दूर तक उनको नही बढाते हैं वे मूर्ख हैं और हिंसा कुशीलादि का सेवन कर वे धर्मवृक्ष की जड़ को खोद डालते हैं। जो व्यक्ति द्रव्य या भाव हिंसा करता है उसे दुर्गति मे जाना पडता है। अतएव विवेकी को जागृत बनकर धर्म का सेवन करना चाहिए। यही उसके लिए उपादेय है।

अलंकार

कवि के काव्य मे अलंकारो का भी सुन्दर रूप से समावेश हुआ है। उपमा अलंकार सबसे प्रधान है। भावो द्वारा कल्पना को जितनी अधिक प्रेरणा प्राप्त होती है, उपमान योजना उतनी ही सिद्ध होती है। यथा दन्तीव[39] भावी-पुत्र गज के समान भूरितर दान से युक्त होगा। जिस प्रकार हाथी के मद से दानवारि निकलता है, निरन्तर दानजल-मदजल झरता रहता है, इसी प्रकार पुत्र दानी होगा।

यमक

अन्त्य यमक की योजना करते हुए कवि ने पुष्पदन्त का स्तवन किया है।

> भूरिप्रभानिर्जितपुष्पदन्त करायतिन्यक्कृतपुष्पदन्तः।
> त्रिकालसेवागतपुष्पदन्त. श्रेयांसि नो यच्छतु पुष्पदन्तः ॥[40]

जिनके दांतो ने अपनी विशाल प्रभा से पुष्पों को जीत लिया है,

---

३८ „ १३।११

३९ „ ३।४०

४० „ १।६

जिनके हाथो की लम्बाई ने पुष्पदन्त (दिग्गज) के शुण्डादण्ड को तिरस्कृत कर दिया है और जिनकी सेवा मे पुष्पदन्त सूर्य चन्द्रमा त्रिकाल उपस्थित होते हैं, वे पुष्पदन्त भगवान् हम सबको कल्याण प्रदान करें।

श्लेष

दो से अधिक अर्थ जिस श्लोक मे श्लिष्ट-निबद्ध रहते हैं, उस श्लोक मे श्लेषालकार का चमत्कार दिखलाई पड़ता है—यथा

> सुवर्णवर्णद्युतिरस्तु भूत्यै श्रेयान्विभुर्वो विनताप्रसूत ।
> उच्चैस्तरां य सुगति ददानो विष्णो सदानन्दयतिस्म चेत. ।[41]

अर्थात जिनके शरीर की काति सुवर्ण के समान उज्ज्वल थी, जो भक्त पुरुषो को स्वर्ग, अपवर्ग आदि उत्तम गति को देने वाले थे, जो स्वसमानकालिक नारायण के चित्त को सर्वदा प्रसन्न किया करते थे और हित का उपदेश देकर आनदित किया करते थे वे विनता माता के पुत्र श्रेयासनाथ तुम सबको विभूति प्रदान करें। इस पद्य का द्वितीय अर्थ—

जिसके शरीर की आभा सुवर्ण के समान पीतवर्ण है, जो विभु है तथा श्रेय कल्याणरूप है, जिसने ऊचे आकाश मे सुन्दर गति प्रदान की है तथा जो श्रीकृष्ण के चित्त को हमेशा आनदित करता है, वह विनतासुत वैनतेय-गरुड तुम सबको विभूति प्रदान कर।

भाषा-शैली

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा शैली भी अत्यन्त समृद्ध है। प्रसादगुण होने से कविता सहज बोधगम्य है। यथा—

> विलोकयन्त्रत्र कुतूहलेन लीलावतीनां मुखपङ्कजानि ।
> जज्ञे स्मर' सेर्ष्यरनिप्रयुक्त-कर्णोत्पलाधातसुख चिरेण ॥[42]

अर्थात् सुन्दरियो के मुखकमल को कुतूहलपूर्वक देखते हुए युवक ईर्ष्यापूर्वक कर्णों में प्रयुक्त कमलो की मार के सुख को बहुत समय तक अनुभव करते रहे।

---

४१ „ १।११
४२ „ १।४४

(3) नरनारायणनन्द महाकाव्यम्

आनन्द नामान्त काव्यो की प्रणाली का आरंभ पतजली के द्वारा उल्लिखित महानद काव्य के निर्देश से मिलता है।[43] आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने कौमुदी-मित्रानद नाटक लिखा है।[44] वस्तुपाल का नरनारायणानन्द एक ऐसा महाकाव्य है, जिसके आधार पर आगे चलकर आनन्द, नामान्त काव्यो और नाटको की एक परपरा ही विशेष रूप से प्रारभ हो गई थी। अमरचद्रसूरि ने पद्मानन्दमहाकाव्य लिखा है।[45] नेपाल के कवि मणिक ने भारत नद नाटक १४वी शती मे लिखा है। कुवलयानद की रचना अप्पय्य दीक्षित ने १७वी शती मे की है। इस तरह १७वी शती मे और भी अनेक आनन्द नामांत रचनायें हुई हैं।[46] आनन्दनामान्त काव्यो का प्रमुख विषय मित्रता, आनन्द एवं उल्लास का प्रतिपादन करना हो हुआ करता था।

रचयिता और रचनाकाल

वस्तुपाल गुजरात और मालबे का राजा एव एक कुशल प्रशासक था। साथ ही वह एक महाकवि भी था। वस्तुपाल राजा वोरधवल और उसके पुत्र वीसलदेव का महामात्य था। कवि होने से उसे अच्छे कवियो की परख थी, इसका प्रमाण गिरनार के शिलालेखो मे मिलता है।[47] आबू

---

४३ सस्कृत-साहित्य का इतिहास लेखक वाचस्पति गैरोला, प्र० चौखबा विद्याभवन वाराणसी सन् १९६०, पृ० ६४५

४४. नाट्यदर्पणम्—ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट, बडौदा, सन् १९५१, पृ० ५१।

४५ पद्मानन्द, स० एच०आर० कापडिया, प्रकाशन ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट बडौदा, सन् १९३२।

४६ सस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक वाचस्पति गैरोला, वाराणसी संस्करण पृ० ८१३, ९६६, ८१५।

४७ महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल और सस्कृत साहित्य मे उसकी देन। डॉ० भोगीलाल साडेसरा, प्र० जैन सस्कृति सशोधन मण्डल, वाराणसी, सन् १९५९, पृ० ५५।

मन्दिर की प्रशस्ति मे सोमेश्वर उसे सर्वश्रेष्ठ कवि कहता है ।[48] राजशेखर सूरि ने उसे सरस्वती कण्ठाभरण कहा है ।[49] कवि होने से उसके आश्रय लेने वाले कवियो का एक विद्यामण्डल था, जिसमे राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक पण्डित, मदन सुभट, अरिसिंह और मत्री यशोवीर थे ।[50] इनके अतिरिक्त वस्तुपाल के सपर्क मे अनेक जैन कवि और पण्डित आए थे । उनमे अमरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, नरचन्द्र सूरि, नरेन्द्रप्रभ सूरि, बालचन्द्र सूरि आदि हैं । इस अमात्य ने अणहिलवाड, स्तम्भ तीर्थ और भृगुकच्छ मे पुस्तक भडार भी स्थापन किए थे । वसन्त-पाल यह उपनाम वस्तुपाल को हरिहर, सोमेश्वर और अन्य कवियों ने प्रदान किया था। वस्तुपाल का जन्म अणहिलवाड के शिक्षित परिवार मे हुआ था । उसके पिता का नाम आसराज या अश्वराज और माता का नाम कुमारदेवी था। कवि के गुरु विजयसेन सूरि थे । वस्तुपाल जब मत्री बने तो उन्होंने शत्रुजय और गिरनार के लिए सन् १२२१, १२३४, ३५, ३६, ३७ मे यात्रा-सघ के द्वारा यात्राए करायी थी। सन् १२४० मे वह शत्रुजय की अन्तिम यात्रा के लिए निकला था पर मार्ग मे ही उसका निधन हो गया । फलत यात्रा अधूरी रह गयी ।[51] सन् १२३२ मे वस्तुपाल ने गिरनार मे जैन मदिरो का निर्माण कराया । आबू का मदिर देलवाडा के मन्दिरो के बीच मे है । इसे वस्तुपाल के बड़े भ्राता लूणिग की स्मृति में बनवाया गया था ।

सन् १२२१ के बाद नरनारायणानद महाकाव्य की रचना हुई है।

---

४८ प्राचीन जैन शिलालेख सग्रह, भाग २, स० मुनि जिनविजय सन् १९२१, लेख स० ६५ ।

४९ प्रबन्धकोश के अन्तर्गत वस्तुपाल प्रबन्ध, स० मुनि जिनविजय अहमदाबाद तथा "सरस्वतीकण्ठाभरण—लघु भोजराज—महाकवि महामात्य—श्रीवस्तुपालेन-" प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी जैन विद्यापीठ, सन् १९३३, पृ० १०० ।

५० वस्तुपाल का विद्यामण्डल, भोगीलाल साडेसरा, प० जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, पत्रिका न० १६, पृ० ३

५१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल—भोगीलाल साडेसरा, वाराणसी सन् १९५६, पृ० ४८

इस महाकाव्य के १६वें सर्ग की प्रशस्ति मे आबू और गिरनार के मंदिरों का उल्लेख नही है । इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि इस महाकाव्य की रचना सन् १२३०-३१ मे हुई होगी । कवि वस्तुपाल का निधन वि॰ सं० १२९६ माघकृष्णा ५ सन् १२४२ को हुआ ।[52]

इसलिए कहा जा सकता है कि वस्तुपाल का समय १३वी शती है । वस्तुपाल की इस कृति के अतिरिक्त आदिनाथ स्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र और आराधना गाथा, ये ४ कृतिया हैं ।[53]

कथानक

प्रथम सर्ग—प्रथम सर्ग में कवि समुद्र तट स्थित द्वारका नगरी के वैभव और शोभा का वर्णन करता है । इस नगर मे चित्ताकर्षक रमणीय भवन हैं । प्रशस्त और सुशोभित राजमार्ग है । जन-संकुल हाटें हैं—इत्यादि ।

द्वितीय सर्ग—द्वितीय सर्ग मे श्रीकृष्ण राजसभा में विराजित हैं । दूत आकर उन्हे सदेश देना है कि रेवतक पर्वत स्थित प्रभास तीर्थ मे अर्जुन का आगमन हुआ है । श्रीकृष्ण सोत्साह अर्जुन का स्वागत करने तथा उससे भेंट करने जाते हैं ।

तृतीय सर्ग—तृतीय सर्ग में श्री कृष्ण अर्जुन मिलन का वर्णन है । श्रीकृष्ण अर्जुन से कुशल क्षेम पूछते हैं ।

चौथा सर्ग—चौथे सर्ग मे ऋतु वर्णन है । षड्ऋतुएं सेवा के लिए उपस्थित होती हैं । सर्वत्र प्रसन्नता, उल्लास और उमग का वातावरण छा जाता है ।

पाँचवाँ सर्ग—पांचवें सर्ग मे प्रकृति वर्णन की प्रधानता है । सूर्यास्त हो जाता है, सर्वत्र सांध्य सुषमा छा जाती है । कालान्तर मे चन्द्रमा की शुभ्र-शीतल चांदनी छिटक जाती है ।

छठा सर्ग—छठे सर्ग मे द्वारावती के नगरवासियो का सुखमय

---

५२ वसन्तविलास, बडौदा १९१७ ई० १४।३७

५३ जैनस्तोत्र समुच्चय, स० चतुरविजयमुनि, प्र०निर्णयसागर प्रेस बम्बई, पृ०१४३

जीवन वर्णित है। नव-दम्पत्ति सुरापान का आनन्द लेते हैं और मधुमय क्रीडाएं करते हैं। रात्रि इसी प्रकार व्यतीत हो जाती है।

सातवां सर्ग—सातवें सर्ग मे सूर्योदय का वर्णन आता है। कमल पुष्प विकसित हो जाते है। उन पर रात-भर से बन्दी भ्रमर उड़ने लगते है।

आठवा सर्ग—आठवें सर्ग मे बलराम रेवतिक पर्वत पर सपरिवार पहुंचते हैं। उनकी सेना भी साथ है। अर्जुन को लेकर श्रीकृष्ण सपरिवार वन विहार के लिए जाते है।

नौवां सर्ग—नौवें सर्ग मे युवक-युवतियाँ पुष्पचयन करती हैं। दिन भर के इस कार्य मे थकित सर्वजन विश्राम करने लगते हैं।

दसवाँ सर्ग—दसवे सर्ग मे पुनः मूल कथानक का सूत्र पकड़ मे आता है। जलक्रीडारत सुभद्रा को देखकर अर्जुन उस पर मुग्ध हो जाता है, सुभद्रा भी अर्जुन के प्रति आकृष्ट होती है।

ग्यारहवा सर्ग—ग्यारहवे सर्ग मे अर्जुन और सुभद्रा की पारस्परिक वियोग स्थिति के कारण उत्पन्न उदासीनता का चित्रण है। सुभद्रा अर्जुन के पास दूत भेजती है और उसे रेवतिक उद्यान मे मिलन के लिए निमन्त्रित करती है।

बारहवाँ सर्ग—बारहवे सर्ग मे मन्मथ पूजन के बहाने सुभद्रा उद्यान मे पहुचती है और अर्जुन उसका हरण कर लेता है। इस अपहरण की सूचना पाकर बलराम सात्यकि को उनका पीछा करने के लिए सेना सहित भेजता है। श्रीकृष्ण मध्यस्थ बनकर बलदेव को शात करते है।

तेरहवा सर्ग—तेरहवे सर्ग मे सात्यकि और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। बलदेव रणभूमि मे जाकर युद्ध रोकने का आदेश देता है।

चौदहवा सर्ग—चौदहवे सर्ग मे युद्ध समाप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर द्वारिका लौट जाते हैं।

पन्द्रहवां सर्ग—पन्द्रहवें सर्ग मे अर्जुन सुभद्रा विवाह वर्णित है। स्वय बलराम यह पाणिग्रहण सपन्न करवाते हैं। यही इस काव्य का कथानक इति पर पहुँच जाता है।

कथानक का स्रोत या आधार ग्रंथ

महाभारत इस काव्य के कथानक का आधार ग्रंथ है।[54] आद्योपात श्रीकृष्ण और अर्जुन के पारस्परिक स्नेह और मित्रता ही सर्वत्र व्याप्त है, यही इस काव्य का मूल प्रतिपाद्य है। महाभारत में वर्णित प्रस्तुत प्रसग और नरनारायणानन्द काव्य के कथानक में साम्य है। पुष्टि के प्रयोजन से महाभारत में वर्णित उक्त प्रसंग भी उल्लेखनीय है। महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत २१७ से २२०वें अध्याय तक यह कथा वर्णित है। कथा की रूपरेखा कतिपय बिन्दुओं में प्रस्तुत की जा सकती है।

—अर्जुन से मिलनार्थ श्रीकृष्ण का रैवतिक पर्वत पर आगमन।
—बलराम का भी सपरिवार एवं सेना सहित पर्वत पर आगमन।
—जल क्रीड़ा के प्रसंग में सुभद्रा और अर्जुन का परस्पर मुग्ध होना।
—अर्जुन द्वारा सुभद्रापहरण।
—सात्यकि एवं अर्जुन के मध्य युद्ध।
—श्रीकृष्ण की मध्यस्थता से युद्ध की समाप्ति।
—अर्जुन सुभद्रा का पाणिग्रहण।

महाभारत मे आई हुई इस कथा की उपर्युक्त रूपरेखा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि ने महाभारत को ही अपने काव्य के कथानक का आधार बनाया है और प्रस्तुतीकरण की भिन्नता के साथ यही कथा पुनः विवेचित कर दी गई है। कथानक के स्वरूप और घटनाक्रम के आकार-प्रकार को देखते हुए काव्य-प्रबन्ध रचना तो अवश्य है, किन्तु फलक विस्तार के अभाव मे इसे महाकाव्य कहने मे सकोच ही होता है। कृति को महाकाव्य मानने वाले विद्वज्जनों के पक्ष मे यह तथ्य अवश्य हो हैं कि कथानक सर्गबद्ध है, किन्तु यह लक्षण प्रबंध-काव्य का है। खण्ड काव्य मे भी सर्गबद्धता होती है। नायक के जीवन की एक ही घटना वर्णित है। समग्र जीवन चित्रित नही है। इसका मन्तव्य भी मात्र श्रीकृष्ण अर्जन

---

५४ महाभारत—गीताप्रेस गोरखपुर, आदि पर्व।

मैत्री या स्नेह को व्यक्त करने मात्र तक ही सीमित है । ऐसी स्थिति मे इसे महाकाव्य के स्थान पर खण्ड काव्य मानना ही अधिक समीचीन है ।

स्पष्ट है कि अर्जुन इस प्रबन्ध काव्य का नायक है । बलदेव प्रतिनायक है जो सुभद्रा प्राप्ति के फल के मार्ग मे नायक के लिए बाधक बनता है । अन्य पात्र हैं—श्रीकृष्ण, सुभद्रा, सात्यकि आदि । काव्य मे अलंकृत शैली का प्रयोग विशेषतः द्रष्टव्य है । प्रकृति चित्रण मे कवि ने कथावस्तु की घटनाओ को आधार प्रदान करने के लिए प्रकृतिगत स्थितियो की योजना की है । दिन-रात, सन्ध्याएं, ऋतुए जीवन के साथ-साथ चलती हैं । कवि ने प्रकृति के सहज चित्रो के बीच नरनारायण की मैत्री का विकास चित्रित किया है ।

चरित्र-चित्रण

उत्कृष्ट चरित्र का होना महाकाव्य के लिए एक आवश्यक तत्व है, चरित्र की परिभाषा करते हुए अरस्तू ने लिखा है—"चारित्र्य उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि-विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे ।"[55]

प्रस्तुत काव्य मे अर्जुन, श्रीकृष्ण, सुभद्रा, बलराम, सात्यकि और दूत वनपाल आदि पात्र हैं । जिनमे अर्जुन तथा श्रीकृष्ण के चरित्र का विकास स्पष्ट प्रतिभासित होता है । अर्जुन नायक है और इसके चरित्र मे सौन्दर्य, शील और शक्ति का समन्वय है । अर्जुन सुदर ,प्रकृति प्रेमी, सहृदय और पराक्रमी है । सुभद्रा के सौन्दर्य को देखकर अर्जुन व्याकुल हो जाते हैं । उन्हे अपना जीवन नीरस प्रतीत होने लगता है । मित्र श्रीकृष्ण के परामर्श से वे सुभद्रा का अपहरण करते हैं । श्रीकृष्ण बलराम से अर्जुन के गुणो का चित्रण करते हुए कहते हैं ।

हरि पर इवैश्वर्ये शास्त्रे गुरुरिवापर ।
स्मरोऽन्य इव सौन्दर्ये शौर्ये किन्तु स एव स ॥१२-७८॥

---

५५ अरस्तू का काव्यशास्त्र डॉ०नगेन्द्र (हिन्दी अनुवाद) हिन्दी अनुसधान परिषद्, दिल्ली, वि०स० २०५४. पृ० २२

अर्जुन ऐश्वर्य में विष्णु, ज्ञान में गुरु, सौंदर्य में कामदेव और शौर्य में वह अपने समान अकेला ही है। कवि वस्तुपाल ने ऐसे महनीय चरित्रो का उद्घाटन किया है। यद्यपि कथावस्तु अत्यल्प है तो भी चरित्रो का विकसित स्वरूप सुन्दर रूपेण चित्रित है।[56]

जैसाकि मैं पूर्व मे विवेचित कर चुका हूं कि आनन्द-नामान्त महाकाव्यो मे मित्रता, आनन्द और उल्लास की भावनाओ का मनोरम चित्रण हुता है। उसी के अनुसार इस काव्य का कथानक विविध घटनाओ की अन्विति से युक्त तथा मानव जीवन की गहनतम अनुभूतियो और उच्चादर्शों को उद्भावना से पूर्ण है। मानव हृदय की शाश्वत वृत्तियो का उद्घाटन, कर्त्तव्यपरायणता, स्वार्थत्याग और उदात्तभाव भूमि काव्य-रसिको और पाठकों को सहज ही अपनी ओर खीच लेती है।

रस-वर्णन

रसो के वर्णन मे भी कवि ने अद्भुत सफलता अर्जित की है। शृंगार, वीर, रौद्र, बीभत्स आदि रसो का प्रस्तुत महाकाव्य मे सुन्दर समायोजन हुआ है।

पार्थ सुभद्रा के अङ्ग-प्रत्यगो के सौदर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। आर्द्र वस्त्रो के भीतर से उसका कुसमुवत् लोभनोय लावण्य उसके हृदय मे सम्भोगेच्छा उत्पन्न कर देता है। यथा—

> नारार्द्रचीरान्तरदृश्यमान-सर्वांगलावण्यविशेषरम्याम्।
> पश्यन्निमां मन्मथमथ्यमानचेताश्चिरं चिन्तयतिस्म पार्थः ॥[57]

सयोग शृंगार के साथ ही वियोग शृंगार के वर्णन मे भी कवि पीछे नही रहा है। अर्जुन और सुभद्रा दोनो ही विरह पीड़ित हैं :—

> किमु चन्दनचर्चनं वृथा विहितं वक्षसि तापशान्तये।
> अमुना दयितास्मितप्रभा-स्मृतिबीजेन हहा हतोऽस्म्यहम्।[58]

---

५६ सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान, पृ० ३३८
लेखक डॉ० नेमिचन्द्र जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी

५७ नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् १०-५३

५८ नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् ११-११

यहां सुभद्रा आलम्बन विभाव है। चन्दन चर्चन, उशीर आदि का का लेप उद्दीपन विभाव है। छाती या शय्या मे मुह छिपाना अनुभाव है। स्मृति, हर्ष, लज्जा, विबोध आदि संचारो विभाव हैं। इन भावो से परिपुष्ट रति स्थायीभाव है जो विप्रलभ शृंगार को बतलाता है।[59]

अलकार-वर्णन

जैसे स्वस्थ शरीर पर आभूषणो का प्रयोग उचित लगता है। इस प्रकार के सरस काव्यो मे अलकारो का प्रयोग अपना महत्व रखता है। प्रस्तुत महाकाव्य मे कवि ने अलंकारो का समावेश सुन्दर रीति से किया है।

भाषा-शैली

भाषा-शैली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य मे अलकृत शैली का प्रयोग हुआ है। चतुर्दश सर्ग मे चित्रालकार का उपयोग करते हुए कवि ने एकाक्षर, द्यक्षर, चतुरक्षर, षडक्षर, अन्तस्थ, दन्त्य, तालव्य, ओष्ठ्य और मूर्धन्य आदि वर्णों का प्रयोग कर भाषाशैली को कलापूर्ण रूप प्रदान किया है। एकाक्षर मे मात्रालकार का प्रयोग करते हुए कवि ने अभिनव अर्थ की सृष्टि की है—

> लोलालोल लुलोलेली लाली लालल्ललोल्लल: ।
> लोल लील लुलल्लोलोल्लोलल्लीलाललोलल: ।[60]

इसे गौडीय शैली का काव्य मान सकते हैं क्योकि इसमे प्रसगानुकूल भाषा में रूप परिवर्तन की क्षमता है। भाव और परिस्थिति के अनुसार भाषा कही कोमल कहीं मधुर तो कही ओजस्विनी दिखाई देती है। भावों के अनुसार ध्वनियो का नियोजन करने मे कवि सफल हुआ है।

छन्द-योजना

कवि ने अपने समस्त सर्गों मे भिन्न-भिन्न छदो का प्रयोग किया है। जैसे इन्द्रवज्रा, उपजाति, शार्दूल-विक्रीडित, प्रमिताक्षरा, वसन्त-

---

५९. सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियो का योगदान, पृ० ३४०-४१; भा० ज्ञानपीठ

६०. नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् १४।२३

तिलका, मंदाक्रांता, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, आर्या, ललिता, और अनुष्टुप् आदि। कवि को छन्दों की अच्छी जानकारी है और उनका योग्यरीति से प्रयोग किया है। यह बात कवि स्वयं अन्य कवियो का आश्रयदाता और प्रेरक व प्रशासक था, इस ऐतिहासिक तथ्य से और उसके राजा होने से स्वय प्रमाणित है।

नेमिनाथ महाकाव्यम्

जैन कवियो द्वारा रचित महाकाव्यो की शृंखला में कविवर कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्यम् का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें जैन धर्म के २२वें तीर्थंकर प्रभु नेमिनाथ का प्रेरक चरित्र महाकाव्योचित विस्तार के साथ १२ सर्गों मे प्रस्तुत किया गया है। काव्य मे भाव पक्ष व कलापक्ष दोनों का सुमेल यत्र-तत्र विद्यमान है।

महाकाव्यत्व—महाकाव्य के जो मापदड निश्चित किए हैं तदनुसार कवि ने पालन किए हैं, इसमे शृंगाररस को अगीरस के रूपमे स्वीकारा गया है। क्षत्रिय कुल प्रसूत देवतुल्य नेमिनाथ इसके धीरोदात्त नायक हैं, धर्म व मोक्ष प्राप्ति हेतु इसका उद्देश्य है। इसमे जैन पुराण का मुख्य आधार है। प्रथम सर्ग मे शिवादेवी के गर्भ मे जिनेश्वर के अवतरित होने में मुख सन्धि है। इसमें काव्य के फलागम का बीज निहित है। उसके प्रति पाठक की उत्सुकता जागृत होती है। द्वितीय सर्ग मे स्वप्न दर्शन से लेकर तृतीय सर्ग में पुत्र जन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है। चतुर्थ से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना की गई है। नवें से ग्यारहवें सर्ग तक एक ओर नेमिनाथ द्वारा विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुख्य फल की प्राप्ति मे बाधा उपस्थित होती है, किन्तु दूसरी ओर पशु रुदन सुनकर दीक्षा ग्रहण करने से फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है। यहा विमर्श सन्धि का निर्वाह हुआ है। ग्यारवें सर्ग के अन्त मे केवलज्ञान तथा बारहवें सर्ग मे शिवत्व प्राप्त करने के वर्णन मे निर्वहण सन्धि विद्यमान है। महाकाव्य के लक्षणानुसार नगर, पर्वत, वन, दूतप्रेषण, सैन्यप्रयाण, युद्ध, पुत्रजन्म, षड्ऋतु आदि के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं। इसमें आरंभ नमस्कारात्मक मगलाचरण से किया गया है। भाषा-शैली मे उदात्तता है। अन्तिम सर्ग के एक अंश मे

चित्रकाव्य को योजना की गई है। शीर्षक व सर्गों का नामकरण भी शास्त्रोचित है। सज्जन-प्रशसा, खल-निन्दा तथा नगर-वर्णन की रूढ़ियो का भी पालन किया है। छन्द प्रयोग सम्बन्धी परम्परा का कवि ने निर्वाह नही किया है। इस प्रस्तुत काव्य मे अनिवार्य सभी तत्व विद्यमान हैं।

शास्त्रीयता—इसमे पौराणिक महाकाव्यो के अनुरूप शिवादेवी के गर्भ मे जिनेश्वर का अवतरण होना, फलस्वरूप १४ स्वप्नो का दिखलाई देना, दिक्कुमारिया नवजात शिशु का सूतिकर्म करती हैं। उनका स्नात्रोत्सव स्वय देवराज द्वारा सम्पन्न होता है। इस महाकाव्य मे पौराणिकतानुसार नारी को जीवन-पथ को बाधक मानी गयी है। काव्य का पर्यवसान शान्त रस मे हुआ है। काव्यनायक दीक्षित होकर केवलज्ञान व शिवत्व को प्राप्त करते हैं। पौराणिकता के साथ शास्त्रीय तत्व भी प्रचुर मात्रा मे हैं। अलकारो का भावपूर्ण विधान, काव्य-रूढियो का विनियोग, तीव्र रस-व्यजना, सुमधुर छन्दो का उपयोग, प्रकृति व मानव सौन्दर्य का प्रयोग, आदि-आदि इसके शास्त्रीय महाकाव्यत्व को सिद्ध करने वाले तत्व हैं।

कवि-परिचय, रचना-काल

प्रस्तुत काव्य मे कविवर कीर्तिराज के जीवन-परिचय का उल्लेख नही है। ऐतिहासिक लेखो के आधार पर कीर्तिराज अपने समय के प्रख्यात खरतरगच्छीय आचार्य थे। आप संखवालगोत्रीय शाह कोचर के वंशज दीपा के कनिष्ठ पुत्र थे। आपका जन्म सम्वत् १४४५ मे दीपा की पत्नी देवलदे की कुक्षि से हुआ था। जन्म नाम देल्हाकुँवर था। आपने १४ वर्ष की अवस्था मे आचार्य जिनवर्द्धन सूरि से दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम कीर्तिराज रखा गया। गच्छनायक जिनभद्र सूरि ने सम्वत् १४५७ मे आपको आचार्य पद प्रदान किया। सम्वत् १५२५ मे ७६ वर्ष की आयु मे आपका देहावसान हुआ। आपको जब १४८० मे उपाध्याय पद प्राप्त हुआ था तभी इस महाकाव्य की रचना की गयी थी। यह १४८० तथा १४९७ के मध्य लिखा गया महाकाव्य है।

कथानक

प्रथम सर्ग में यादवराज समुद्रविजय की पत्नि शिवादेवा के गर्भ

में २२वें तीर्थंकर का अवतरण होना । राजधानी सूर्यपुर का रोचक वर्णन किया गया है ।

द्वितीय सर्ग मे शिवादेवी द्वारा १४ स्वप्नो का देखना । भावी में पुत्र की प्राप्ति । भविष्य मे ४ दिशाओ को जीतकर अधिपति बनने आदि के उल्लेख के साथ प्रभात-वर्णन नामक इस सर्ग के अन्त मे प्रभात का मार्मिक वर्णन किया गया है ।

तृतीय सर्ग मे पुत्रजन्म का वर्णन है ।

चतुर्थ सर्ग मे दिक्कुमारियो द्वारा सूति कर्म करना ।

पंचम सर्ग मे इन्द्र शिशु को जन्माभिषेक के लिए मेरुपर्वत पर ले जाते हैं । छठे सर्ग मे शिश के स्नानोत्सव का वर्णन है । सातवे सर्ग मे पुत्र जन्म का समाचार पाकर समुद्रविजय का आनन्द विभोर होना , बंदियों को मुक्त करना, जीव वध पर प्रतिबध लगाना, शिशु का नाम अरिष्टनेमि रखा जाना है । ८वें सर्ग मे अरिष्टनेमि के सौन्दर्य का एवं परम्परागत षड् ऋतुओ का हृदयग्राही वर्णन व शक्ति परीक्षा मे कृष्ण को पराजित करना है । नवें सर्ग मे माता-पिता द्वारा विवाह का आग्रह करना, नेमिनाथ द्वारा अस्वीकार कर देना, परन्तु माता-पिता के आग्रहवश शादी के लिए उग्रसेन की पुत्री राजीमती क साथ तैयार होना है । दसवें सर्ग मे नेमिनाथ वधूगृह को प्रस्थान करते हैं । वधूगृह मे बारात हेतु पशुओ की करुण चित्कार को सुनकर वे विवाह को बीच मे ही छोडकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं । ग्यारहवें सर्ग मे राजीमती का नेमि-वियोग से उत्पन्न विलाप का वर्णन है, मोह-सयम युद्ध-वर्णन नामक इस सर्ग के उत्तरार्द्ध मे मोह पराजित होकर नेमिनाथ के हृदयदुर्ग को छोड देता है, जिससे उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । बारहवें सर्ग मे श्रीकृष्ण का दर्शनार्थ जाना, देशनोपदेश श्रवण कर कई लोगो द्वारा सयम ग्रहण करना, आदि का सुन्दर वर्णन कवि द्वारा सम्पन्न किया गया है । कथानक अत्यल्प है, किन्तु कवि ने विस्तार करने का प्रयास किया है । काव्य कथानक की दृष्टि से ढीला पड़ता नजर जाता है । लेकिन, महाकाव्य की दृष्टि से काव्यरूढ़िया भी जगह-जगह दिखलाई पडती हैं ।

प्रकृति-चित्रण

कवि ने महाकाव्य के अन्य पक्षो की भाँति प्रकृति-चित्रण मे अपनी

मौलिकता का परिचय दिया है। उद्दीपन व आलम्बन पक्ष का सरस वर्णन किया है। शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है;—

शरददभ्रजला कलगर्जिता स चपला चपलानिलनोदिता ।
दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली, गजघटेव मनोभवभूपते ॥

प्रकृति के विविध रूपो का वर्णन कवि ने किया है।

सौन्दर्य-चित्रण

काव्य मे कतिपय पात्रो के कायिक सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण किया गया गया है। नख-शिख वर्णन, नवीन-नवीन उपमानो की योजना से काव्य कला मे प्रशसनीय भाव-प्रेषणीयता आई है। देवागनाओ की जघनस्थली की तुलना कामदेव की आसनगद्दी से करते हुए लिखा है—

वृतादुकूलेन सुकोमलेन विलग्नकांचीगुणजात्यरचना ।
विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगद्दिकेव ॥

इसी प्रकार राजीमती की जङ्घाओ को कदलो स्तम्भ व कामगज के आलान के रूप में चित्रित किया गया है।

रसयोजना

मनोरागो का चित्रण करने मे कीर्तिराज कुशल कवि हैं। साधारण सा प्रसग भी तीव्र-रसानुभूति कराता है। इसमे शृगाररस, अगीरस के रूप मे है। करुण, रौद्र आदि का भी यथोचित प्रयोग किया गया है। ऋतु-वर्णन द्वारा शृगार के अनेक रमणीय चित्र अङ्कित किए हैं—

उपवने पवनेरितपादपे, नवतर बत रतुमना परा ।
सकरुणा करुणावचये प्रिय, प्रियतमा यतमानमवारयत् ॥

उपवन के मादक वातावरण से कामाकुल नायिका नये छैल पर रीझ गयी हो तो इसमे आश्चर्य क्या ?

चरित्र-चित्रण

काव्य के संक्षिप्त कथानक मे पात्र सख्या भी सीमित है। कथा-नायक नेमिनाथ के अलावा उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवा, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा संयम और दूत कैतव एवं मन्त्री विवेक ही काव्य के पात्र है।

नेमिनाथ—जिनेश्वर नेमिनाथ काव्य के नायक हैं। वे देवोचित विभूति तथा शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके धरा पर अवतरित होते ही समुद्रविजय के समस्त शत्रु निस्तेज हो जाते हैं। दिक्कुमारिया उनका सूति में करती हैं। जन्माभिषेक करने स्वय सुरपति इन्द्र आते हैं। नेमिनाथ का चरित्र विरक्ति के केंद्र बिंदु पर घूमता है। वे वीतराग नायक हैं। यौवनावस्था मे भी वैराग्य रग मे रगे रहते हैं। उनका मन्तव्य है कि वास्तविक सुख ब्रह्मलोक मे ही विद्यमान है—

हित धर्मौषध हित्वा मूढा कामज्वरार्दिता ।
मुखप्रियमपथ्यं तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥

उनकी साधना की परिणति मोक्ष-प्राप्ति मे होती है। अदम्य काम-शत्रु को पराजित करना, उनकी धीरोदात्तता की प्रतिष्ठा है।

समुद्रविजय—यदुपति समुद्रविजय कथानायक के पिताश्री हैं। आप मे सम्पूर्ण राजोचित गुण विद्यमान हैं। समुद्रविजय तेजस्वी शासक हैं। उनके बन्दी के शब्दो में अग्नि तथा सूर्य का तेज भले ही शांत हो जाए किन्तु उनका पराक्रम अप्रतिहत है।

विध्यायतेऽम्भसा वन्हि, सूर्योऽब्देन पिधीयते ।
न केनापि परं राजस्त्वत्तेज परिहीयते ॥

उनका राज्य पाशविक बल पर आधारित नही है। समुद्रविजय पुत्रवत्सल पिता हैं। ये अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति हैं। आर्हत् धर्म उन्हे पुत्र, पत्नी, राज्य तथा प्राणो से भी अधिक प्रिय है।

राजीमती—राजीमती काव्य की सती नायिका है। शील-सम्पन्ना व रूपवती है। नेमिनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य मिला था पर विधि के विधान ने परिवर्तन ला दिया। वह ससार मार्ग को छोडकर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होती है। केवलज्ञानी नेमिप्रभु से पूर्व परमपद पाकर अद्भुत सौभाग्य प्राप्त करती है।

उग्रसेन—भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र भी मानवीय गुणो से ओत-प्रोत है। लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनो उसके सहयोगिनी हैं। विपक्षी नृपगण उनके तेज से भयभीत होकर कन्याओ के उपहारो से उनका रोष शान्त करते हैं।

अन्य पात्र—शिवादेवी नेमिनाथ की माता है। प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा सयम राजनीति कुशल शासको की भांति आचरण करते हैं। मोहराज दूत कैतव को भेजकर संयम नृपति को नेमिनाथ का हृदय-दुर्ग छोडने का आदेश देता है। संयमराज का मत्री विवेक दूत की उक्तियो का मुहतोड़ उत्तर देता है।

भाषा

भाषा-शैली की दृष्टि से काव्य की अपनी गरिमा है। प्रसादपूर्ण प्राजल भाषा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। काव्य मे भाव व कलापक्ष का सुन्दर सगम है। अनुप्रास तथा यमक के प्रयोग भी दिखलाई पडते हैं। सरलता के साथ कोमलता भी द्रष्टव्य है—

> विवाहय कुमारेन्द्र ! बालाश्चचललोचना ।
> भुक्ष्व भोगान् सम ताभिरप्सरोभिरिवामर ॥

प्रसाद गुण युक्त काव्य मे सूक्तियो और लोकोक्तियों का विशाल कोश है। इन सब गुणो के बावजूद कुछ दोष भी भाषा-शैली को लेकर रह गये हैं, जैसे कुछ स्थलो पर विकट समासात पदावली का प्रयोग हुआ है जहा उसका औचित्य नही था। छन्द पूर्ति के लिए कुछ स्थानो पर अतिरिक्त पदो को जोड़ दिया गया है। सब मिलाकर नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा मे निजी आकर्षण है।

विद्वत्ता-प्रदर्शन

भारवि की राह पर चलते हुए कीर्तिराज ने भी अन्तिम सर्ग मे चित्रकाव्य के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है, पर ऐसे पद्यो की सख्या बहुत कम है। निम्नोक्त पद्य मे एकाक्षरानुप्रास द्रष्टव्य है, इसकी रचना केवल एक व्यजन पर आश्रित है। ३ स्वर भी इसमे प्रयुक्त हुए हैं—

> अतीतान्तेत एतां ते तन्तन्तु ततताततिम् ।
> ऋततां तां तु तोतोतु, तातोऽततां ततोन्ततुम् ॥

अलंकार-विधान

प्रकृति-चित्रण आदि के समान अलंकारो का प्रयोग भी कवि द्वारा किया गया है। कीतिराज ने अप्रस्तुता की खोज में अपना जाल दूर-दूर तक फेंका है। जीवन के विविध पक्षो से उपमान ग्रहण किए हैं। प्रभुदर्शन से इन्द्र का क्रोध ऐसे शांत हो गया जैसे अमृत पान से ज्वर पीडा, वर्षा से दावाग्नि। अनेक मार्मिक उपमाएं भी दी गयी हैं। उत्प्रेक्षाओ का प्रयोग भी कुशलता के साथ किया गया है। सदेह, विरोधाभास, विषम, व्यतिरेक, विभावना, निदर्शना, सहोक्ति, विषम आदि अलंकार भी नेमिनाथ महाकाव्य मे दर्शनीय हैं।

छन्द-योजना

काव्य मे अनेक छन्दों की योजना की गयी है। प्रथम, सप्तम, नवम सर्ग मे अनुष्टुप् की प्रधानता है। कुछ श्लोक मालिनी, उपजाति, उपगीति व नन्दिनी मे हैं। सर्गान्त में उपजाति व मन्दाक्राता का उपयोग हुआ है। सब मिलाकर काव्य मे २५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। नेमिनाथ महाकाव्य की रचना कविवर कालिदास की परम्परा मे हुई है। एक धार्मिक कथानक चुनकर भी कीर्तिराज ने अपनी कवित्व-शक्ति एवं सतुलित दृष्टिकोण के कारण साहित्य को एक ऐसा रोचक महाकाव्य प्रदान किया है जिसे संस्कृत जगत युगो-युगो तक स्मरण रखे बिना नही रह सकता।

प्रस्तुत महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित नाहटा ब्रदर्स, ४-जगमोहन मलिक लेन कलकत्ता से प्रकाशित है।

नेमिसदेश काव्य	:	१७वी सदी की रचना लेखक—हर्षप्रमोद
प्रद्युम्नलीलाप्रकाश (चम्पूकाव्य)	:	१८९९ लेखक—शिवचन्द्रोपाध्याय

उपरोक्त काव्य उपलब्ध न होने के कारण यहाँ पर सकेत मात्र उल्लेख किया गया है।

(4) सप्तसन्धानकाव्य (अनेकार्थ काव्य)

कृति और कृतिकार

'सप्तसन्धानमहाकाव्यम्' मे समानांतर रूप में सात महापुरुषों के

वर्णन सम्मिलित हैं। यथा—ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, श्रीराम और श्रीकृष्ण। इनके चरित्र इस कृति मे सात सर्गों में व्याप्त हैं।

सप्तसंधान महाकाव्य के प्रणेता श्री मेघविजय उपाध्याय हैं। कवि मेघविजय साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, तर्कशास्त्र जैसे अन्यान्य विधाओ के भी निष्णात पण्डित थे। ये कृपाविजय जी के शिष्य थे और तपागच्छ के थे। प्रस्तुत महाकाव्य के अतिरिक्त देवानन्द महाकाव्य, हस्तसंजीवन, वर्षप्रबोध युक्तिप्रबोध नाटक, चन्द्रप्रभा आदि कवि की प्रमुख रचनायें हैं। देवानन्द महाकाव्य की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार यह रचना वि० स० १७२७ (ई० सन् १६७०) की है।[61] इससे कवि के काल के विषय मे अनुमान लगाया जा सकता है। सप्तसंधान की रचना १७६० (ई० सन् १७०३) मे सम्पूर्ण हुई थी।[62] यह कृति प्रकाशित है।[63]

कथानक का सार

प्रथम सर्ग—गंगा और सिन्धु ये दो पावन सरिताएं भारत क्षेत्र मे प्रवाहित होती है। इस क्षेत्र के इतिहास मे ख्यात जनपद—कोशल, कुरु, मध्य प्रदेश और मगध देश है। इन्ही जनपदो मे अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वैशाली, वाराणसी, मथुरा, कुण्डपुरी आदि प्रसिद्ध नगर हैं। अयोध्या मे भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) और श्रीरामचद्र का जन्म हुआ। हस्तिनापुर मे भगवान शांतिनाथ ने, शौर्यपुर मे भगवान नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) ने, वाराणसी मे भगवान पार्श्वनाथ ने, वैशाली मे भगवान महावीर ने और मथुरा मे श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। इन महापुरुषो के नामो से जुड़कर ये नगर ही धन्य हो उठे है। अपने-अपने समयो

---

६१ मुनिनयनाश्वेन्दुमिते (१७२७ वि० स०) वर्षे हर्षेण सादडीनगरे
— देवानन्द-प्राप्तप्रशस्ति

६२ बिदुरसमुनीन्दूना (१७६० वि० स०) प्रमाणात् परिवत्सरे कृतोयमुद्यम
— सप्तसन्धानप्राप्तप्रशस्ति

६३ सप्तसन्धानकाव्य (वि० स० २०००) श्री जैन साहित्यवर्धक संभा, गोपीपुरा, सूरत।

में अयोध्या में नाभिराय और दशरथ, हस्तिनापुर में विश्वसेन, शौर्यपुर में मे समुद्रविजय, वाराणसी मे अश्वसेन, कुण्डपुर मे सिद्धार्थ राजा का राज्य था। इन यशस्वी नरेशों को रानियो ने उज्ज्वल स्वप्न देखे थे। परिणामतः इनके द्वारा पुत्र प्राप्ति की आशा का साफल्य संभव प्रतीत होने लगा।

द्वितीय सर्ग में गर्भवती रानियो ने यथासमय ऋषभदेव, शातिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान, राम और श्रीकृष्ण को जन्म दिया। चतुर्निकाय के देव अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वाराणसी और कुण्डपुर पहुंचे। प्रथम पाच महापुरुषो का इन्द्र ने सुमेरु पर जन्माभिषेक सम्पन्न किया।

तृतीय सर्ग मे तीर्थंकरो का नामकरण सम्पन्न होता है। सातो शिशु क्रमश. बड़े होते हैं। बालक्रीडाएं करते है। उचित वय-प्राप्ति होने पर इनके विवाह भी हुए।

चतुर्थ सर्ग मे तीर्थंकरत्व के परिणामस्वरूप देश मे समृद्धि बढ़ने लगी। ऋषभदेव को बाहुबली आदि पुत्र प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण का सबध पांडवो से होता है। कभी हस्तिनापुर मे राजा शान्तनु राज्य करते थे। उनके भीष्म पितामह जैसे पराक्रमी पुत्र हुए। इसी वंश मे कुरु और पाडु कुमार भी हुए। कुरु के पुत्र कौरव, पाण्डु के पुत्र पांडव हुए। बड़ ही कौशल और निपुणता के साथ श्लेष के प्रयोग द्वारा कवि ने एक-एक पद्य में एक साथ इन सात महापुरुषो के जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किए हैं। राम को वनवास होता है, भरत विरक्त होकर शासनकार्य का सचालन करते हैं। तीर्थंकरगण दीक्षा ग्रहण का उपक्रम करते है।

पंचम सर्ग में दीक्षोप रांत तीर्थंकर विहार आरम्भ करते है। पाँचो तीर्थंकर तप साधना मे प्रवृत्त हो जाते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता वन विहार करते हैं। रावण द्वारा सीता का हरण होता है। उधर श्रीकृष्ण की पाडवो के साथ सुदृढ मित्रता होती है। द्वारका को वे सभी भाति दृढ़तर बनाते हैं। शिशुपाल जरासन्ध के साथ द्वारका पर आक्रमणार्थ प्रस्थान करता है।

छठे सर्ग में तीर्थंकरा का कवलज्ञान की, राम को (रावण के साथ युद्ध के पश्चात्) अर्धचक्री पद की प्राप्ति होती है।

सातवें सर्ग में तीर्थंकरो के समवशरण की रचना होती है। वें मुनिमण्डलियों के साथ विहार करते हैं। उनके प्रभाव पूर्ण उपदेशो से विरक्त हो अनेक राजा महाराजा दीक्षा ग्रहण करते हैं।

आठवें सर्ग मे ऋषभनन्दन-भरत चक्रवर्ती दिग्विजय अभियान पर प्रस्थान करते हैं। वे विजय लाभ करते हैं। भगवान ऋषभदेव के मोक्ष कें पश्चात् भरत उनके द्वारा परिपालित भूमि की रक्षा करते हैं।

नौवें सर्ग में जगत भर मे तीर्थंकरो का धवलयश व्याप्त हो जाता है। राम अयोध्या नरेश हो जाते हैं। कालातर मे वे तप द्वारा निर्वाण प्राप्त करते हैं। द्वैपायन ऋषि द्वारा द्वारका का विनाश होता है। बलराम तपस्या कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

महाकवि मेघविजय ने प्रस्तुत महाकाव्य के कथानक मे सात कथानको का समानान्तर रूप से निर्वाह कर प्रचुर पाण्डित्य का परिचय दिया है। श्लेष द्वारा एक-एक शब्दावली से सात-सात भिन्नार्थों का सम्प्रेषण कर पाना अपने आपमे एक अद्भुत चमत्कार है। इसके प्रदर्शन मे कवि सर्वथा सफल हुआ है। महाकाव्य के कथानक सूत्रो का चयन हरिवशपुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि प्रतिष्ठित ग्रंथो से किया गया है। यह एक सफल महाकाव्य है और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी सम्पन्न है। 'सप्तसधान' अपनी अर्थवत्ता और अलकार प्रयोग के लिए शाश्वत महत्व रखता है।

आधार व महाकाव्यत्व

कवि ने अपने पूर्ववर्ती पुराण एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि से प्रस्तुत कथा का चयन किया है। यद्यपि कथावस्तु मे नवीनता के दर्शन नही होते तथापि कवि ने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय अवश्य दिया है। महाकाव्य की दृष्टि से देखा जाए तो भी प्रस्तुत काव्य खरा उतरता है। कथावस्तु सर्गबद्ध है, मंगलाचरण स्तुतिरूप मे किया गया है। दुर्जन-निन्दा, सज्जन-प्रशसा, देश, नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन, कथा के नायको का चरित्र, भिन्न-भिन्न रसो का प्रयोग, ऋतु-चित्रण,

अनेक भावधाराओं के बीच समन्वय, युद्ध, विवाह, जन्म, तपस्या, दीक्षा और केवलज्ञानोत्सव का वर्णन एवं शक्तिगत वैशिष्ट्य आदि इसे महाकाव्य की कोटि में प्रस्तुत करते हैं। चतुर्वर्ग फलप्राप्ति काव्य में निहित है।

रसवर्णन

प्रस्तुत काव्य मे अगी रस शान्त है, अंगरूप वीर, भयानक, शृगार और करुण रस का नियोजन किया है। कथा के सातो ही नायक अतिम जीवन मे संसार से विरक्त बन तपश्चरण करते हैं और निर्वाण को प्राप्त होते हैं। शात रस का निरूपण करते हुए निर्वेद स्थायीभाव की व्यंजना की है—

सविषयो विषयोजनभक्ष्यवत्
सुमनसां मनसां भयकारणम्।
भुविवितो विदितो पि तवामया,
शवरसंवरसफलितोऽभवत्॥[64]

विषयों की अभिलाषा विषमिश्रित भोजन के सेवन करने के समान है, अत विषयेच्छा विचारशील व्यक्तियों के हृदय मे भय उत्पन्न करती है। अतएव इस जगत्प्रसिद्ध विषयाभिलाषा का त्याग करने के लिए सवर की चर्चा करके कवि ने निर्वेद की व्यजना की है।

अलकार वर्णन

प्रस्तुत काव्य मे अलंकारो के तीनों प्रकार शब्दालकार, अर्थालंकार और उपमालकार की योजना की है। अनुप्रास, यमक, चित्र, शब्दालकार हैं तो श्लेष उभयालकार भी निहित हैं। अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोध, अतिशयोक्ति प्रभृति अलकार प्रधान हैं। यथा—

उत्प्रेक्षा—कवि ने भरत क्षेत्र का वर्णन करते हुए लिखा है—

मूर्धास्य हेमाद्रिरमुष्यचूला
स्वाद्रोहिताभ्रू भ्रु सरिच्च वामा।
सावक्षिणा सिन्धुसरिद् रसाग्रं
तयो. पथस्ते नयने च मन्ये॥[65]

---

६४. सप्तसन्धानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, वि० सं० २०००, ८/२५

६५ सप्तसन्धानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, १/२१

इस भरत क्षेत्र का सिर हिमालय पर्वत है और हिमालय से प्रवाहित होने वाली रोहिता नाम की नदी इसकी चूडा है। आकाशगगा वाम भ्रू और सिन्धु दक्षिण भ्रू है। नदी निर्गमनलिका जिह्वा है और गगा तथा सिन्धु के ऊपरी भाग दोनों नेत्र हैं। इस प्रकार हिमालय की कल्पना सिर के रूप मे की गयी है।

शैली—प्रसादगुण युक्त शैली होने पर भी श्लेष के कारण अर्थबोध मे कुछ कठिनाई अवश्य आ जाती है। कवि ने अनुप्रास के साथ कोमलकान्त पदावली का व्यवहार किया है। यथा—

> दिवानिशं केलिकलाकलापै-रालीषु तालीविपिनोपजापैः।
> सत्यासुदव्या दिवसाः सुखेन, सूर्यः सतूयागमयांबभूवु ॥[66]

अस्तु, काव्य कसौटी पर कसने से कवि का प्रस्तुत काव्य खरा उतरता है तथा कवि ने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय प्रदान किया है।

इन प्रातिनिधिक जैन कृष्ण काव्यो का अनुशीलन कर मैंने अपना वक्तव्य यहा पर प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य रचनाएँ छूट जाती हैं। जिनको कालक्रमानुसार मैंने सूची के रूप मे यहा पर प्रस्तुत कर दी है। इनमें कुछ अरिष्टनेमि के चरित्र से सबधित हैं तो कुछ कृष्ण, प्रद्युम्न, पाण्डव और हरिवश से संबधित चरित्र काव्य हैं। इनका विवेचन हमारे विवेच्य विषय की परिधि के उपयुक्त नही था इसलिए इनका अधिक विवेचन न कर केवल सूचना मात्र दे दी हैं, जो इस प्रकार हैं —

नाम	सवत	कृतिकार
अरिष्टनेमि चरित	वि० स० १२२३	रत्नप्रभसूरि
पाण्डव चरित	वि० स० १२५७	देवप्रभसूरि
नेमिनाथ चरित	वि० स० १२८५	उदयप्रभसूरि
प्रद्युम्न चरित	वि० स० १५३०	सोमकीर्ति
नेमिनाथ पुराण	वि० सं० १५७५	ब्रह्म नेमिदत्त
प्रद्युम्न चरित	वि० स० १६४५	रविसागर
पाण्डवपुराण	वि० स० १६५७	श्री भूषण
नेमिनाथ चरित	वि० सं० १६६८	गुणविजय

६६ सप्तसन्धानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, २/६

अरिष्टनेमि चरित	वि० स० १६६८	विजय गणि
प्रद्युम्न चरित	वि० स० १६७१	रतनचन्द
हरिवशपुराण	वि० स० १६७१	भट्टारक यश:कीर्ति
हरिवंशपुराण	वि० स० १६७५	,, श्रीभूषण
नेमिनाथ चरित	वि० स० १९९५	कीर्तिराज
प्रद्युम्नचरित	१७वी शदी	मल्लिभूषण

इसके अतिरिक्त सस्कृत जैन कृष्ण साहित्य से सबधित एक अन्य विधा नाटक को लेकर भी कुछ कृतिया मिलती हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय हस्तिमल्ल के दो नाटक हैं—

(१) विक्रान्त कौरव

(२) सुभद्रा

इसके कृतिकार के बारे मे जानकारी उपलब्ध नही है। केवल कुछ सूचना मिलती है, जो इस प्रकार है। एक बार एक मदोन्मत्त उद्दण्ड हाथी को वश मे करके हस्तिमल्ल ने पाण्डच राजा को प्रभावित किया था तब राजा ने उन्हे यही नाम देकर इसी उपाधि से उन्हे विभूषित किया। दिगबर जैन सप्रदाय के साहित्यकारो मे इनका विशेष नाम गिनाया जाता है। ये एक मात्र ऐसे नाटककार है जिनकी रचित नाटक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनका हम पूर्व मे ही उल्लेख कर चुके हैं। ये जन्म से ब्राह्मण थे, परन्तु श्री समन्तभद्र कृत देवागम स्तोत्र को सुनकर ये प्रभावित हुए और इन्होने जैन दीक्षा अगीकार की।

(५) द्विसन्धान (राघव पाण्डवीय) महाकाव्य : कृति एवं कृतिकार

द्विसन्धानम् काव्य एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इसमे रामायण, महाभारत दोनो कथाओ को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही इस काव्य के कर्ता धनजय की उच्चश्रेणी की काव्यप्रतिभा का परिचय इस विशिष्ट रचना से भलीभाति मिल जाता है। कवि ने इस कृति मे प्रत्येक छद की रचना इस प्रकार से की है कि उसके दो अर्थ व्यक्त हो जाते हैं। एक अर्थ रामकथा से सबधित है तो दूसरा अर्थ श्री कृष्ण कथा से। इसी कारण इस रचना का अपर शीर्षक राघवपाण्डवीयकथा भी है।

समानान्तर रूप से दो कथानको के निर्वाह के कारण इसे द्विसन्धानम् कहा है। इसका कथानक १८ सर्गों मे व्याप्त है।

कृतिकार

कृतिकार—"द्विसन्धानम्" काव्य की टीका से कवि परिचय पर यत्किञ्चित् प्रकाश पडता है। इस रचना के अतिम छद की व्याख्या मे कहा गया है कि कवि धनंजय के पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम श्रीदेवी था। इसी स्रोत से ज्ञात होता है कि कवि के गुरु का नाम दशरथ था।[67] रचना-प्रेरणा के विषय मे भी एक किंवदन्ती प्रचलित है कि कवि धनजय के पुत्र के साथ सर्पदंश की दुर्घटना हो गयी थी। अत. सर्पविष के प्रभाव को दूर करने के प्रयोजन से कवि ने स्तोत्र रूप मे यह रचना की।

रचनाकाल

द्विसन्धानम् काव्य के विषय मे भी मत-मतान्तर हैं। डॉ० के० बी० पाठक की मान्यता है कि कवि धनजय का काल ११२३-११४० ई० के मध्य था। डॉ० ए० बी० कीथ ने अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास में पाठक के मत को स्वीकार किया है। अन्यान्य उपलब्ध उल्लेखो के साथ इस मान्यता का मेल नही बैठता है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने कवि धनंजय का उल्लेख "प्रमेयकमलमार्तण्ड" मे किया है। आचार्य प्रभाचन्द्र का समय ११वी शदी का पूर्वार्द्ध था।[68]

वादिराज ने भी अपनी रचना पार्श्वनाथ चरित मे द्विसन्धान के कर्ता धनंजय की चर्चा की है। पार्श्वनाथचरित काव्य का काल १०२४ ई० है। और वादिराज का १०२५ ई० है। अस्तु, धनंजय का काल इससे भी पूर्व का होना चाहिए। जल्हण ने राजशेखर के नामवाला एक श्लोक उद्धृत किया है।[69]

यह राजशेखर "काव्यमीमांसा" के रचनाकार हैं और इनका समय १०वी शताब्दी है। फलतः धनंजय का समय १०वी शदी से पूर्व का होना चाहिए।

---

६७ य श्रीदेव्या मातुनन्दनः पुत्रो वसुदेवत प्रतिवसुदेवस्य पितु प्रतिनिधिः १८/१४६

६८ प्रमेयकमलमार्तण्ड—माणिकचन्द ग्रथमाला पृ० ४०२।

६९. द्विसन्धाने निपुणता सता चक्रे धनजया । यथाजातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयाः
—सस्कृतसाहित्य का इतिहास डा० बलदेव उपाध्याय, शारदामंदिर काशी षष्ठ सस्करण, पृ० ३०४

स्वयं धनजय ने अपनी रचना नाममाला (प्रमाणमकलकस्य) में अकलक का निर्देश किया है।[70] अत कवि का काल अकलंक के पूर्व का नही हो सकता। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि कवि धनजय का काल अकलक के पश्चात् और वादिराज के पूर्व का ही हो सकता है। अनुमानत. उनका समय ईसा की आठवी शताब्दी के लगभग है।

कथावस्तु

प्रथमसर्ग—ग्रथारंभ में कवि मुनिसुव्रत और नेमिनाथ तीर्थकरों को नमस्कार करता है। राम कथा का आरंभ करते हुए अयोध्या और श्रीकृष्ण कथा का आरभ करते हुए हस्तिनापुर का वर्णन किया गया है। प्रजाजन शाति और सुख से जीवन यापन करते हैं। प्रथम सर्ग मे यही चित्रण है।

द्वितीय सर्ग मे दोनो राज-परिवारो का वर्णन है। अयोध्या मे राजा दशरथ और हस्तिनापुर मे राजा पाण्डु का राज्य है। राजा दशरथ की पट्टरानी कौशल्या और राजा पाण्डु की पट्टरानी कुन्ती थी। दोनो अपने सदाचार और उच्चशील के लिए विख्यात थी।

तृतीय सर्ग में कौशल्या के गर्भ धारण करने पर सर्वत्र छाये हुए प्रसन्न वातावरण का वर्णन किया गया है। माता कौशल्या राम को जन्म देती है। कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक पुत्र होते हैं। राजा जनक की पुत्री जानकी के साथ राम का विवाह हुआ। पाण्डुराजा की पट्टरानी कुन्ती युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को और माद्री नकुल एव सहदेव को जन्म देती है। ये पाडव कहलाये। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए।

चौथे सर्ग मे वर्णन है कि एक दिन दशरथ ने दर्पण मे अपने श्वेत केश देखे और निश्चय कर लिया कि राम को राज्य सौंपकर अब मुझे तपस्या आरभ करनी चाहिए। कैकेयी ने दशरथ से वर मागा कि राम को १४ वर्ष का वनवास मिले और भरत को अयोध्या का राज्य। राम, सीता

---

७०. प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्। द्विसन्धानकवे काव्य, रत्नत्रयमपश्चिमम्—नाममाला, भारतीयज्ञानपीठ काशी, १९४० ई० श्लोक २०१ पृ० ९२

और लक्ष्मण के साथ वन को गये और दशरथ मुनि बने। दूसरी ओर युधिष्ठिर को राज्य सौंप कर पाण्डु ने तपस्या आरंभ करने का निश्चय किया। दुर्योधन ने छलपूर्वक जुए में युधिष्ठिर से राज्य जीत लिया। पाण्डवो को वनवास भोगना पडा।

पाचवे सर्ग में राम का आगमन दण्डकारण्य में होता है। लक्ष्मण चंद्रहास खड्ग प्राप्त करते हैं। शूर्पणखा राम पर मोहित होती है किंतु अपमानित और असफल होकर वह सीताहरण के लिए वातावरण बना देती है। राम लक्ष्मण राक्षसों का वध करते है। पाण्डव अज्ञात वास के निमित्त विराट राजा के यहा पहुचते हैं। कीचक द्रौपदी को देखकर उस पर मोहित हो जाता है। भीम कीचक का वध कर देता है।

छठे सर्ग मे राम लक्ष्मण का खर दूषण से युद्ध होता है। अपनी शक्ति और पराक्रम से वे खर दूषण की सेना को पराजित कर देते हैं। खर दूषण का वध हो जाता है। अर्जुन और भीम का युद्ध उन दस्युओ के साथ होता है जो गायो को चुराते हैं। वे उनको बधन से मुक्त करके गायो की रक्षा करते हैं।

सातवे सर्ग मे रावण शूर्पणखा को सान्त्वना देने के लिए पहुचता है। दण्डक वन में सीता के सौंदर्य से वह प्रभावित हो जाता है और उसका अपहरण कर वह लका की ओर चल देता है। दूसरी ओर द्यूतक्रीडा मे पराजय के कारण राज्यहीन युधिष्ठिर को भीम कहता है कि आपको अपने अपमान का बदला लेना चाहिए। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की सहायता से हमें विजय प्राप्त होगी। और, धर्मराज युधिष्ठिर द्वारिका के लिए प्रस्थान करते हैं।

आठवे सर्ग मे वर्णन है कि रावण को इस बात की आशा थी कि अपहरण के बाद निराश सीता आत्मसमर्पण कर देगी, किंतु सीता अपने मार्ग पर दृढ रहती है। द्वारिका के राजभवन के गवाक्षो से युधिष्ठिर सागर दर्शन करते हैं। उनके लिए दुर्योधन की निरकुशता और अन्याय असह्य हो गये, किंतु वे वचन बद्धता के कारण निरुपाय थे।

नौवें सर्ग मे सीताहरण के कारण राम चिंतित और दु खित बताये गए हैं। वे सीता की खोज करते हैं। विद्याधर सुग्रीव की पत्नी का अपहरण कर साहसगति ने अनीतिपूर्वक राज्य हथियाया और उसका शासन किया।

राम इस अनीति का विरोध करते हैं। किष्किधा मे भयकर युद्ध होता है और साहसगति मारा जाता है। नल, नील, जावबन्त आदि राम का स्वागत करते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण के साथ जरासध वैरभाव रखता है। वह श्रीकृष्ण पर आक्रमण करता है किन्तु पराजित हो जाता है। द्वारिका मे विजय के हर्ष मे उत्सव मनाया जाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की वीरता से वहुत प्रभावित होते हैं और बहन सुभद्रा का उसके साथ विवाह करने के विषय पर सोचते हैं।

दसवे सर्ग मे लक्ष्मण राजा सुग्रीव के पास-जाते हैं और उससे कहते हैं कि तुम्हे सीता की खोज का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा राम का क्रोध तुम्हे नष्ट कर देगा। दूसरी ओर श्रीकृष्ण के पास पुरुषोत्तम नामक दूत आता है जो कहता है कि आपको जरासध के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।

ग्यारहवे सर्ग मे सुग्रीव अपनी राजसभा मे चर्चा कर निश्चय करता है कि रावण प्रवल पराक्रमी है अत शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए मुझे राम के साथ मैत्री कर लेनी चाहिए। वे ऐसा सोचते है, परतु विचलित सुग्रीव को जावबान धीरज दिलाता है। हनुमान, जाम्बवान और सुग्रीव पुन विचार विमर्श करते हैं। दूसरी ओर जरासध के दूत के लौट जाने पर श्रीकृष्ण अपने अनुभवी सहयोगियो से विचार विमर्श करते है। भीम जरासध के विनाश का विचार प्रकट करता है। वलराम मध्यस्थता की वात करते है।

वारहवे सर्ग में लक्ष्मण हनुमान के साथ कोटिशिला पर पहुचते हैं और वे उस शिला को उठा लेते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण भी अपने मित्रो सहित कोटिशिला पर पहुंचते है और वे भी शिला को उठा लेते है।

तेरहवें सर्ग मे हनुमान सीता का समाचार लाने अकेले लका जाते हैं। हनुमान रावण को कुमार्ग को त्यागने और राम की शरण ग्रहण करने की सलाह देते है, किंतु वे उसमे सफल नही होते। दूसरी ओर श्रीकृष्ण का दूत श्रीशैल राजगृह जाता है और जरासध से कहता है कि तुम श्रीकृष्ण की अधीनता स्वीकार कर लो या कन्दरा मे जाकर ध्यान करो।

चौदहवे सर्ग मे राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि द्वारा रावण से युद्ध की तैयारी का वर्णन है। एक ओर राम की सेना लका की ओर बढने

लगी है तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण बलराम पाण्डवो के साथ राजगृह की ओर बढ़ते हैं।

पन्द्रहवे सर्ग में वर्णन है कि राम की सेना समुद्र तट तक पहुच गयी और वानर योद्धाओ ने वनविहार तथा जलक्रीडाएँ की। दूसरी ओर यादव-वशी राजागण गगा के किनारे जाकर वन विहार करने लगे।

सोलहवें सर्ग मे राम की सेना ने लका पर आक्रमण कर दिया है इस बात को सुनकर रावण अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश देता है। दोनो पक्षो की सेनाएँ रणभूमि मे आमने सामने आ जाती हैं। राम के बाणो के समक्ष रावण के प्रख्यात पुत्र योद्धा मेघनाद तथा भाई कुभकर्ण आदि टिक नही पाते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण की सेना जरासध पर आक्रमण करती है और अपने प्रचड प्रहारो से जरासध के पक्ष मे आतक मचा देती है। कबंध नाचने लगते हैं।

सतरहवे सर्ग मे रावण की सेना की प्रबलता का चित्रण भी किया गया है। उसके सैनिक कवचधारी थे, अत बाण उनके शरीर तक नही पहुंच पाते थे। राम ने अग्नि के समान तीक्ष्ण बाणो की वर्षा कर दी, अत राम की विजय हुई। दूसरी ओर श्रीकृष्ण, बलराम, अर्जुन आदि ने जरासध की सेना को घेर लिया। भयकर बाण वर्षा होने लगी और श्रीकृष्ण द्वारा जरासध का वध हो जाता है।

अठारहवे सर्ग मे लका का राज्य विभीषण को सौंपकर राम सीता सहित पुष्पक विमान मे बैठकर लका से अयोध्या मे आ जाते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण जरासध के पक्ष को पूर्ण ध्वस्त करके पाण्डवो के साथ मित्रता को निबाहते हुए राज्य का सचालन करते हैं।

इस प्रकार द्विसधान काव्य में कवि धनजय ने श्रीकृष्ण और राम की कथा के प्रमुख अंशो का वर्णन एक साथ किया है। इस दुर्गम कार्य मे कवि को अभिनदनीय सफलता भी मिली है। काव्य का आरंभ तीर्थंकरो की स्तुति से हुआ है। मत्रणा, दूत प्रेषण, युद्धवर्णन, नगर वर्णन, समुद्र, उद्यान वन आदि के वर्णन आये हैं। कथानक का सयोजन इस प्रकार हुआ है कि उसमे हर्ष, शोक, भय, रोष आदि विभिन्न मनोभावो का सुदर चित्रण हो पाया है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना समृद्ध है।

महाकाव्यत्व—प्रस्तुत काव्य की राम-कृष्ण कथा १८ सर्गों मे विभक्त है। काव्यारंभ तीर्थंकरो की वदना से हुआ है। इतिवृत्त पुराण प्रसिद्ध है।

मत्रणा, दूतप्रेषण, युद्धवर्णन, नगरवर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चद्र, सूर्य, पादप, उद्यान, जलक्रीडा, पुष्पावचय, सुरतोत्सव आदि का चित्रण सुदर रीति से विवेचित है। कथानक में हर्ष, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि भावों का सयोजन हुआ है। शब्दक्रीडा के बावजूद रस का वैशिष्ट्य विद्यमान है। महत्कार्य और महदुद्देश्य का निर्वाह भी हुआ है। विवाह, कुमारक्रीडा, यौवराज्यावस्था, पारिवारिक कलह, दासियो की वाचालता का भी सुदर चित्रण हुआ है। यथा—

> विसा रिभिः स्नग्नकषायभूषितैर्विभीषितेव प्रियगात्त्रमड्गना ।
> शुचौ समालिङ्गति यत्र साखे, ह्रदेतरन्ती कलहंससकुले ॥[71]

ग्रीष्मऋतुओ में जहा पर सुदर हसो से पूर्ण सरयू नदी के घाटो पर तैरती हुई युवती स्नान के समय लगाए लेप आदि से रगी हुई मछलियो से डरकर अपने पति के शरीर से चिपट जाती हैं।

द्वितीय अर्थ—हस्तिनापुर मे सुदर हसो से परिव्याप्त और उनके कोलाहल से युक्त स्वच्छ तालाब में तैरती हुई अगनाए उनके शरीर से चिपट जाती हैं।

प्रकृतिचित्रण

कविवर धनजय ने प्रस्तुत महाकाव्य में प्रकृति के रम्यरूप को प्रस्तुत कर मानवीय भावनाओ को उद्वेलित किया है। यथा—

> भूजायते प्रदेशेऽस्मिन्सालतालीसमाकुले ।
> अभिख्यातियुता नित्य शष्पच्छायोदकान्विता ॥[72]

साल एव ताल वृक्षो से व्याप्त, भोज पत्रो के समान विस्तृत और समतल क्षेत्र मे दूब की छाया और जल से पूर्ण शीतल भूमि अत्यत रमणीय प्रतीत होती है।

रसवर्णन

प्रस्तुत काव्य मे वीररस अगी रस है तथा अग रूप मे शृगार, भयानक, रौद्र और बीभत्स रसो का निरूपण हुआ है।

---

७१ द्विसन्धानम्, शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १-१२, १८९५ ई०
७२ ,, ,, ,, ७/५५

श्रृंगाररस—जीवन में श्रृगार भावना का व्यापक अस्तित्व है। इसका स्थायी भाव रति है कविवर धनजय ने सयोग-श्रृगार और विलास-लीला का सुदर चित्रण करते हुए लिखा है—

> क्षुपविपिनलतान्तरेजनामा—मितिसुरतव्यवहारवृत्तिरासीत् ।
> ननु दयितपरस्परानिकार-व्यवहरण भुवि जीविलव्यमाहुः ॥[73]

छोटे-छोटे पौधो की सघन पक्ति और लताओं की ओट मे क्रीडा करते हुए लोगो की सुरत क्रिया का आचरण हुआ था। सत्य है कि प्रेमी प्रेमिकाओ के परस्पर निश्छल व्यवहार से ही ससार मे जीवन प्रवाह चलता है।

अलंकार वर्णन

कवि ने अतिम सर्ग को यमकालंकार से सुशोभित कर चमत्कार से सर्जित किया है। इस सर्ग के १४६ पद्य यमक के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। श्लेष तो समस्त पद्यो मे उपलब्ध है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलकारों की सुदर सयोजना करके कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

पाण्डित्य

प्रस्तुत महाकाव्य पाण्डित्य की दृष्टि से भी समृद्ध है। व्याकरण, काव्यशास्त्र, राजनीति और सामुद्रिक शास्त्र सबधी चर्चाए भी इस काव्य मे उपलब्ध होती हैं। यथा—

> पदप्रयोगे निपुर्णं विना मे सन्धौ विसर्गे च कृतावधानम् ।
> सर्वेषु शास्त्रेषु जितश्रमं तच्चापेपि न व्याकरण मुमोच ॥[74]

शब्द और धातुओ के प्रयोग मे निपुण, षत्व-णत्वकरण, सधि तथा विसर्ग का प्रयोग करने मे न चूकने वाले तथा समस्त शास्त्रो के परिश्रम-पूर्वक अध्येता वैय्याकरणी भी व्याकरण के अध्ययन के समान चापविद्या को अचूक बना देते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य काव्य सौष्ठव के समस्त गुणो मे अपना एक वैशिष्ट्य रखता है।

---

७३. द्विसन्धानम् स० शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस बबई, १८९५ ई० १५/१८

७४ द्विसन्धानम्, स० शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, बबई, ३/३६

(६) **पुराणसार संग्रह**[75] (दामनन्दि)

प्रस्तुत कृति के रचयिता दामनन्दि आचार्य हैं। प्रस्तुत कृति मे आदिनाथ, चद्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के जीवन चरित्र उपलब्ध होते है। २७ सर्गों वाली इस कृति मे आदिनाथ के ४, चद्रप्रभ के १, शान्तिनाथ के ६, नेमिनाथ के ५, पार्श्वनाथ के ५ और महावीर के ५ सर्ग सबधित हैं। ग्रन्थ के नाम को लेकर भिन्न-भिन्न पूचना ग्रन्थ की अतिम पुष्पिका-वाक्यो मे उपलब्ध होती है, जिसके अनुसार १० सर्गों मे पुराणसारसग्रह, बारह मे पुराणसग्रह, दो मे महापुराण-पुराणसग्रह, एक में महापुराणसग्रह, एक मे केवल महापुराण और तीन मे केवल अर्थाख्यान सग्रह ही सूचित किए गए हैं।

इसका मैंने अधिक विवेचन नही किया क्योकि मेरे अध्ययन से इसका उतना घनिष्ठ सबंध नही है।

(७) **हरिवंशपुराण**—आचार्य जिनसेन

हरिवश पुराण के कर्त्ता जिनसेन दिगबर आचार्य थे। समग्र जैन वाङ्मय मे इस कृति का अपनी विशेषताओ के कारण बडा महत्वपूर्ण स्थान है। इस बृहद्ग्रथ मे कुल ६६ सर्ग हैं, और कुल श्लोक १२ हजार हैं। ग्र थ के शीर्षक से ही यह स्पष्ट है कि हरिवश पुराण का मुख्य विषय भगवान अरिष्टनेमि के वश का परिचय है। हरिवंश ही भगवान का वश है और इसमे यादवकुल का वर्णन १९ वे सर्ग से ६३ वें सर्ग तक है। ३२ वें सर्ग मे श्रीकृष्ण के बडे भाई बलदेव का वर्णन है। ३५ वे सर्ग से श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन किया गया है। यहाँ से अतिम सर्ग तक श्रीकृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसगो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कालियमर्दन, कसवध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा से विवाह, जरासध के पुत्र का वध, प्रद्युम्न का जन्म, जाम्बवती से विवाह, दक्षिणभारत की विजय, श्रीकृष्ण का दक्षिण गमन, कृष्ण मरण, बलदेव विलाप, बलदेव की जिन दीक्षा आदि कृष्ण जीवन के प्रसगो की अवधारणा "हरिवशपुराण', मे मिलती है जो जैन श्रीकृष्ण कथा की रूपरेखा प्रस्तुत कर देती है।

आचार्य जिनसेन पुन्नाट प्रदेश (कर्नाटक का प्राचीन नाम) के मुनि-समुदाय के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। इनके माता-

---

७५ हरिवशपुराण—आचार्य जिनसेन, प्रस्तावना, पृ० ३; सपादक—पन्नालाल जैन प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

पिता के जन्म स्थान और जीवन वृत्तान्त के उल्लेख उपलब्ध नही होते हैं।

ग्रथ का रचनाकाल नौवी शताब्दी वि० का मध्य है। शक स० ७०५ (ई० सन् ७८३) मे यह पूर्ण हुआ।[76] ग्रथ के उल्लेखानुसार वर्धमानपुर में नन्दराजा द्वारा निर्मापित प्रभु पार्श्वनाथ के मदिर मे इसकी रचना प्रारभ की गई, पर यहाँ पर यह रचना पूर्ण न हो सकी। दोस्तटिका नगरी की प्रजा के द्वारा निर्मित अर्चना और पूजा स्तुति से वहाँ के शातिनाथ मदिर मे इसकी रचना पूर्ण हुई।[77]

काव्यसौष्ठव

प्रस्तुत पुराण मे इतिहास, राजनीति, धर्मनीति आदि विषयो पर भी प्रकाश डाला गया है। लोक सस्थान के रूप मे सृष्टिवर्णन भी ४ सर्गों में उपलब्ध है। तिरसठ शलाका पुरुषो का व राजागण, विद्याधर आदि के चरित्रो का भी वर्णन कवि ने सुदर रूप से किया है।

इस ग्रथ के पूर्व भद्रबाहु कृत "वसुदेव चरित" जो उपलब्ध नही है और सघदास गणि कृत वसुदेव हिण्डी मे वसुदेव की कौतुकपूर्ण कथा वर्णित है। यह न केवल एक कथा ग्रथ मात्र है अपितु महाकाव्य के गुणो से युक्त उच्चकोटि का काव्य भी है। इसमे प्राय सभी रसो का वर्णन किया गया है। जरासध और श्रीकृष्ण के बीच रोमाचकारी युद्धवर्णन मे वीररस का सुदर समावेश कवि द्वारा किया गया है। नेमिनाथ का वैराग्य और बलराम का विलाप जहाँ करुण रस को उभारता है वही द्वारिका निर्माण और यदुवशियो का प्रभाव अद्भुत रस की द्योतक घटनाएँ प्रस्तुत करता है।

ग्रथ की भाषा भावपूर्ण प्रौढ और उदात्त है। यत्र-तत्र अलकारो की छटा भी बिखरी पडी है साथ ही विविध छदो का सुदर प्रयोग भी कवि ने किया है और अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। वसुदेव की सगीत कला को देखने के लिए १९वें सर्ग के १२० श्लोक पठनीय हैं। इनका सबध भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से जोडा जा सकता है। जहाँ लोकविभाग तथा शलाकापुरुषो का वर्णन तिलोयपण्णत्ति से मेल खाता है वहाँ ा का वर्णन राजवार्तिक से साम्य रखता है।

---

७६. सर्ग ६६ श्लोक ४२।

७७ सर्ग ६६ श्लोक ४३

भारत की राजनैतिक परिस्थिति दिग्दर्शन

राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन करते हुए जिनसेन ने लिखा है कि उस समय उत्तर दिशा मे इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा मे कृष्ण का पुत्र श्री वल्लभ और पूर्व में अवन्तिनरेश वत्सराज तथा पश्चिम में सौरो के अधि-मण्डल सौराष्ट्र में वीर जयवराह राज्य करते थे।[78] इसके अलावा भगवान महावीर से लेकर गुप्तवश एवं कल्कि के समय तक मध्यदेश के शासन कर्ता प्रमुख राजवंशो की परपराओ के उल्लेख, अवन्ती के गद्दीपर आसीन होनेवाले राजवंश और रासभवश के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य का भी क्रम दिया है।[79] भगवान महावीर से लेकर ६८३ वर्ष की सर्वमान्य गुरुपरम्परा और उसके आगे अपने समय तक की अन्यत्र अनुपलब्ध अवि-च्छिन्न गुरु परपरा भी दी गयी है।[80] अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियो तथा कृतियों का परिचय भी प्रस्तुत पुराण मे उपलब्ध होता है। ग्रंथकर्ता जिन-सेन यद्यपि दिगम्बर सप्रदाय से सबद्ध थे, तथापि हरिवश के अतिम सर्ग मे उन्होंने प्रभु महावीर के विवाह प्रसंग को उल्लेखित किया है। यह बात दिगबर संप्रदाय को मान्य नही है।[81]

जिनसेन ने अपने मे पूर्ववर्ती जिन विद्वानो का उल्लेख किया है वे हैं—समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन, सुलोचना कथा के कर्ता, रविषेण पद्मपुराण के कर्ता, जटासिंहनन्दि वरागचरित के कर्ता, शान्त किसी काव्यग्रथ के कर्ता, विशेषवादि गद्यपद्यमय विशिष्ट काव्य के रचयिता कुमारसेन, वीरसेन, कवियो के चक्रवर्ती जिनसेन—पार्श्वाभ्युदय के कर्ता तथा एक अन्य कवि वर्धमान पुराण के कर्ता हैं।[82]

इससे जिनसेन के अध्यवसाय का पता चलता है।

(७) नेमिदूत

यह एक लघुकाव्य है। नेमिदूत के रचयिता विक्रम कवि हैं। इसके

---

७८ हरिवशपुराण सर्ग ६६-५२-५३

७९ हरिवशपुराण सर्ग ६०, ४८७-४९२

८० हरिवशपुराण सर्ग ६६, २१-३३

८१ ,, ,, ६६, ८ यशोदयाया सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाह मंगलम्।

८२ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास पृ० ४८, भाग-६, डॉ० गुलाबचद चौधरी

कुल १२६ पद्य हैं। इसमे तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्रवर्णन है। पण्डित नाथूराम प्रेमी ने इस कवि को दिगबर जैन सप्रदाय का सिद्ध किया है। खम्भात के चितामणि पार्श्वनाथ मंदिर में एक शिलालेख है जो वि० स० १३५२ का है। इस लेख मे २८ से ३१वे पद्यो मे मालवा, सपादलक्ष और चित्तौड (चित्रकूट) से सभात मे आए हुए सागण जयता और प्रल्हादन आदि धनी श्रावको का उल्लेख है। जिन्होने उक्त मदिर की निरतर पूजा होते रहने के लिए व्यापार पर कुछ लाग बाध दी थी। इनमे सागण हुंकार-वश (हूम्बड) के और जयता सिंहपुर वश (नरसिंहपुरा) के थे। सभव है कि इनमे से पहले श्रावक सागण के पुत्र ही विक्रम रहे हो। सागण आदि दिगबर सप्रदाय के मालूम होते हैं। क्योकि, इस लेख के चौथे पद्य मे सहस्र-कीर्ति और सत्ताइसवे पद्य मे यश कीर्ति गुरु का उल्लेख है और ये दोनो दिगबर साधु हैं। इसके सिवाय हूम्बड और नरसिंहपुरा जातियों के श्रावक इस समय भी दिगबर आम्नाय के अनुयायी है।[83]

दूसरा तर्क देने वाले श्री मोहनलाल दलीचद देसाई हैं। इन्होने अपने "जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास" मे सागण सुत विक्रम को गुर्जर महाकवि ऋषभदास का भाई माना है और इनका समय १७वी शती निर्धारित किया है। श्री प्रेमीजी ने इस मत की आलोचना की है।[84] तीसरा मत मुनि विद्याविजय जी का है। इनकी मान्यता है कि वि० की १२वी शदी के कर्णावती के मन्त्री सागण के पुत्र विक्रम थे।[85]

इन तीनो मान्यताओ की समीक्षा मुनि विनयसागर जी ने इस प्रकार की है—खरतरगच्छालकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि (१४वी शदी के उत्तरार्ध की रचना) के अनुसार श्रीजिनपतिसूरिजी के शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरि ने वि० स० १२८५ से १३३० तक लगभग १२, १५ शिष्य कीर्ति नन्दी मे दीक्षित किए थे, जिनमे यश कीर्ति का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त एक और बात यह भी है कि इसी गुर्वावलिमे स० १२२६ मे श्री जिनेश्वरसूरि जी की अध्यक्षता मे एक यात्रासघ निकला था जो क्रमश यात्रा करते-करते खभात मे पहुचा। वहाँ मदिर मे फूलमाला की बोलियाँ लगी थी। उनमे सागणसुत ने द्रमो मे चमरधारक पद धारण किया था।

---

८३ जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी पृ० ३६१

८४ जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, पृ० २८१, ४८५, ७६०, ७६२, ८८२, ८९६, ९०४, १००३।

८५ , नेमिदूत, कोटा प्रकाशन वि० सं० २००४, प्रस्तावना, पृ० २

जिस हूवड जाति को देखकर कवि को दिगंबर बताया गया है, वह हूबड जाति श्वेताम्बरो में भी होती है और आज मालव देशस्थ प्रतापगढ में लगभग ७५ घर हूबड जाति के हैं। ये सब के सब श्वेताबर है। पूर्व मे भी १२ वी शदी के युगप्रधान दादा पदधारक श्री जिनदत्तसूरि जी भी हूबड जाति के ही थे।[86]

नेमिदूत काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कृति साप्रदायिक नही है। यहाँ श्वेतावर या दिगवर आम्नाय की कोई वात नही मिलती। जब तक कवि के गण-गच्छ का पता न लगे तब तक कवि के आम्नाय का यथार्थ निर्णय नही किया जा सकता। केवल श्वेतावर-वृत्ति के आधार पर कवि को श्वेतावर मानना ठीक नही। प्रेमीजी के तर्कों का अभी खण्डन नही हो पाया है।[87]

नेमिदूत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति वि० स० १४७२ की लिखी हुई है और दूसरी वि० स० १५१९ की है।[88] अत वि०स० १४७२ के पूर्व कवि को मानने मे किसी प्रकार का विरोध नही है। प्रेमीजी ने १३ वी शती और विनयसागर जी ने १४वी शदी माना है। कवि विक्रम खरतरगच्छ के जिनेश्वरसूरि के भक्त श्रावक थे।

कथावस्तु

नेमिकुमार विरक्त होकर जब तपश्चरण करने के लिए गए तब विरह विधुरा राजीमती ने एक वृद्ध ब्राह्मण को नेमि की तपोभूमि मे उनके कुशलक्षेम के समाचार जानने के लिए भेजा। इसके बाद अपने पिता की आज्ञा से अपनी एक सखी को साथ लेकर वह स्वय अनुनय विनय करती हुई अपने विरह से जले हुए हृदय की भावनाओ का प्रलाप व्यक्त करने लगी। पति के त्याग तपश्चरण का प्रभाव भी उस पर पडा और वह भी तपस्विनी बन तपाचरण करने लगी।

कवि ने नाना प्रकार से द्वारिका नगरी का सौंदर्य और वैभव चित्रित किया है। राजीमती अनेकानेक उपायो द्वारा नेमिकुमार को ससाराभिमुखी वनाने का प्रयास करती रही पर उसे सफलता न मिली। रेवतक

---

८६. वही, प्रस्तावना पृ० ३

८७ सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान, डॉ० नेमिचन्द शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी, सन् १९७१, पृ० ४७९

८८ नेमिदूत स० विनयसागर, प्रस्तावना पृ० ४

पर्वत से द्वारिका के मार्ग तक पड़ने वाले अनेक प्राकृतिक दृश्यों का सजी वर्णन कवि ने किया है। स्वर्णरेखा नदी व उसके तट, वामनपुरी, भद्रान तथा पौर नामक नगर का भी उल्लेख कवि ने किया है। इसके बाद गं मादन वेणुल पर्वत से द्वारका पहुचने का अनुरोध किया गया। नेमिकुमा राजीमती का अनुरोध स्वीकार नही करते। तब सखी राजीमती विरहावस्था का करुण चित्र प्रस्तुत करके नेमिकुमार को लौटाने का प्रया करती है। अंत में नेमिकुमार दयार्द्रभाव से राजीमती को धर्मोपदेश देते ह राजीमती भी साध्वी बन जाती है। वृद्ध ब्राह्मण के दूतरूप में प्रेषित क से संभवतः इस कृति का नाम नेमिदूत रखा गया हो। डॉ० फतेहसिंह मतानुसार नेमी ने राजीमती को पत्नी रूप में भले ही ग्रहण न किया हो उसे आनदपथ की सगिनी के रूप मे ग्रहण करने का निश्चय अवश्य किय था।[89] सचमुच यह दूतकर्म बडा विचित्र रहा। संभवत इसीलिए प्रेम जी ने इसका नाम नेमिचरित रखा होगा।

समीक्षा

कवि ने सखी के द्वारा राजीमती के विरह वेदना की मानसि अवस्था का चित्रण, नायिका के शील और लज्जा का सुदर ढग से रक्ष करते हुए करवाया है। पतिपरायणा साध्वी राजीमती ने अपने वक्तव् द्वारा कभी भी अपने आराध्य के समीप मर्यादा का उल्लघन नहीं किया है काव्य में विप्रलंभ शृंगार और शातरस का अद्‌भुत संगम हुआ है राजीमती के विरह से काव्य आरभ होता है और शांतरस की मोक्ष सौख्य की प्राप्ति मे काव्य का अत होता है। इसलिए काव्य विरह-सुखांत है कुमारसभव के नायक की तरह नेमिनाथ योगासक्त होकर पर्वत शिखर पर बैठे हैं, और नायिका उनकी अभिलाषा से वियोगव्यथित होकर, सम्मुख खड़ी होकर प्रेम की याचना करती है। वह कर्तव्य का नायक को ध्यान दिलाती है। सौंदर्य, वैभव व आकर्षण का वर्णन करती हैं। अंत में पार्वती के समान निराश होकर सखी के मुख से अपनी पवित्र प्रेम विरह वेदना को संजीवता से कहलाती हैं।

राजीमती को स्वप्न मे भी प्रियमिलन नही हुआ है। कवि ने राजीमती की विरह वेदना और करुणदशा का चित्रण ८० से १२१ पद्यो मे किया

---

८९ साहित्य और सौंदर्य, संस्कृतिसदन कोटा, ले० डॉ० फतेहसिंह, पृ० ६६

है। भाव व भाषा की दृष्टि से ये ३२ पद्य सरस चित्रण करते हुए लिखे है—यथा—

अन्तर्भिन्ना मनसिजशरैर्मीलिताक्षं मुहूर्तं
लब्ध्वा संज्ञामियमथ दृशा वीक्षमाणातिदीना ।
शय्योत्संगे नवकिशलयस्रंस्तरे शर्म लेभे
साभ्रन्हीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥[90]

इस तरह से विप्रलंभ शृंगार रस की अभिव्यक्ति सरस बन पड़ी है। शातरस के पर्यवसान होने पर भी शृगारपूर्ण अनेक भावचित्र इस कृति में मिल जाते हैं। द्वारिका की रमणिया मेघदूत की अलका की रमणियो की तरह मुग्ध दिखाई देती हैं।

कवि की रचना में कही भी कृत्रिमता नही दिखाई देती। भाषा प्रसादगुण युक्त है और काव्य मे सर्वत्र प्रवाह मिलता है। जिस प्रकार मेघदूत का यक्ष प्रेयसी के स्पर्श से आई हुई वस्तु में प्रेयसी के स्पर्श सुख का लाभ करता है उसी तरह राजीमती भी नेमिनाथ के स्पर्श से आई हुई वायु में स्पर्श सुख का आनद लाभ करती है (पद्य ११५ में): शातरस प्रधान होते हुए भी विरहभावना का सागोपांग चित्रण सजीवता व सरसता के साथ वर्णित है। श्री देवेन्द्रमुनि जी शास्त्री के कथनानुसार वैदिक साहित्य में जैसा स्थान राधा और श्रीकृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य में राजीमति और अरिष्टनेमि का है। राजीमती देह की नही, देही की उपासना करना चाहती है। इसीलिए अरिष्टनेमि की साधना का मार्ग ग्रहण कर वह अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त हो जाती है। उसका प्रेम वासना का प्रेम नहीं है, यह लोकोक्ति प्रसिद्ध ही है कि "जो न होते नेम राजीमति तो क्या करते जैन के यति"।[91]

विरहिणी राजीमति गिरनार पर्वत पर रहती थी। विरक्त नेमिनाथ को संसाराभिमुख बनाने के लिए सखी के साथ अपनी विरह-व्यथा को व्यक्त करते हुए उसने कहलवाया है, यह व्यथा द्रष्टव्य है—

९० नेमिदूत पृ० ६६

९१ भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन - ले० देवेंद्रमुनि शास्त्री, पृ० ६४

'विरहानलतप्ता सीदति सुप्ता
　　रचितनलिनदलतल्पतले मरकतविमले
न सखीमभिनन्दति गुरुमभिवन्दति
　　निन्दति हिमकरनिकरपरितापकरम्
करकलितकपोल गलितनिचोल
　　नयति सततरुदितेन निशामनिमेषदृशा
मनुते हृदि भार मुक्ताहार
　　दिवसनिशाकरदीनमुखी जीवितविमुखी ॥[92]

इस प्रकार इस काव्य मे विरहिणी राजीमती की विरह वेदनाओ का गभीर चित्रण हुआ है।

(८) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित—आचार्य हेमचन्द्र

श्वेताबर जैन कृष्ण साहित्य परपरा की यह एक अति महत्त्पूर्ण रचना है। इसके कर्ता आचार्य हेमचन्द्र "कलिकालसर्वज्ञ" के विरुद से विभूषित थे। वस्तुत यह समर्थ कवि उच्चकोटि की काव्यात्मक प्रतिभा से सम्पन्न कुशल काव्य-शिल्पी थे। इस महाचरित मे जैनो के कथानक, इतिहास, सिद्धात व तत्त्वज्ञान का कवि ने समावेश किया है। यह ग्रथ १० पर्वों मे विभक्त है तथा प्रत्येक पर्व मे अनेको सर्ग हैं। ग्रथ का श्लोक प्रमाण ३६००० है।[93] तिरसठ शलाका पुरुषो का चरित १० पर्वों मे इस प्रकार कवि ने सयोजित किया हैं—

- प्रथम पर्व मे ऋषभदेव व भरत चक्रवर्ती।
- द्वितीय पर्व में अजितनाथ व सगरचक्री।
- तृतीय पर्व मे सभवनाथ से लेकर शीतलनाथ तक के ८ तीर्थंकरो के जीवन वृत्त।
- चतुर्थ पर्व में श्रेयासनाथ से लेकर धर्मनाथ तक पाच तीर्थंकर, पाच वासुदेव, पाच प्रति-वासुदेव, पाच बलदेव तथा दो चक्रवर्ती-मघवा व सनत्कुमार इस प्रकार २२ महापुरुषो का वर्णन किया गया है।

---

९२ नेतिदूत ६-८८, जैन साहित्य नो इतिहास खड २, ले० प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया, पृ० ४४९,

९३ जैन आत्मानद सभा भावनगर

- पंचम पर्व में शान्तिनाथ का चरित्र जो एक ही भव में तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती दोनों होने से दो चरित्र गिने गए हैं।
- षष्ठ पर्व में कुन्थुनाथ से मुनिसुव्रत तक के ४ तीर्थंकर, चार चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव तथा दो प्रतिवासुदेव इस प्रकार १४ महापुरुषों का चरित्र वर्णित हुआ है। इनमें कुन्थुनाथ और अरनाथ इसी भव में चक्रवर्ती हुए। अतः इनकी दो चक्रवर्तियों के रूप में गिनती की गयी है।
- सप्तम पर्व में नमिनाथ, १० वें व ११ वें चक्रवर्ती हरिषेण और जय तथा आठवें बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव—राम, लक्ष्मण, रावण के चरित्र मिलाकर ६ महापुरुषों के वर्णन हैं।
- अष्टम पर्व में नेमिनाथ तीर्थंकर तथा नवम वासुदेव, कृष्ण, बलदेव बलभद्र, तथा प्रतिवासुदेव जरासंध को मिलाकर ४ महापुरुषों के चरित्र वर्णित हैं।
- नवम पर्व में पार्श्वनाथ तीर्थंकर, और ब्रह्मदत्त नामक १२ वें चक्रवर्ती के चरित्र वर्णित हैं।
- दशम पर्व में भगवान महावीर का जीवन वृत्त जो कि १३ सर्गों में है, ग्रंथकार की प्रशस्ति भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रशस्ति अत्यंत उपयोगी है।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार हेमचंद्र के जीवन वृत्त पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। प्रशस्ति के आधार पर ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ की रचना हेमचंद्र ने चौलुक्य नृप कुमारपाल के अनुरोध से की थी।[94] डॉ० बूल्हर ने इसकी रचना का समय वि० सं० १२१६ से १२२८ माना है। वि० सं० १२२९ में हेमचंद्र का स्वर्गवास हुआ था।[95]

जैन परंपरा में मान्य ६३ शलाका पुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव, ९ प्रतिवासुदेव) के जीवन चरित्र इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं।

'प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ के पृ० २१९ में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा व्यक्त यह धारणा आचार्य हेमचंद्र के मूल्यांकन में सफल सहायक

---

९४ पर्व १० प्रशस्ति, पद्य १६-२०

९५. हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र : ले., कस्तूरमल बांठिया,

सिद्ध होती है कि वे मध्यकालीन साहित्य और सस्कृति के चमकते हुए हीरे थे।

(९) **लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित**—मेघविजय

उपाध्याय मेघविजय द्वारा रचित प्रस्तुत कृति मे हेमचद्राचार्य विरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित का ही आधार रहा है। इसमे विशेष रूप से शातिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्रो के सकलन मे अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया है। इसमे तीर्थंकर चरित्र, रामायण, महाभारत, बलदेव, बासुदेव, प्रतिवासुदेवो का वर्णन भी यथाप्रसग कवि ने किया है। इसका श्लोक प्रमाण ५ हजार है। प्रस्तुत कृति के लेखक सम्राट अकबर के कल्याणमित्र तपागच्छीय हीरविजयसूरि जी की परपरा मे हुए हैं। इनके रचित ग्र थो मे जो प्रशस्तिया दी गई हैं उनमे कुछ का रचनाकाल दिया गया है, जो वि० स० १७०९ से १७६० तक का है। कृतिकार ने अनेक काव्यग्र थ रचे हैं। इनता ही मैं विवेचन कर आगे बढ रहा हू। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित तथा महापुराण पर आधारित कुछ अन्य रचनाओ की नामावली इस प्रकार है—

१ लघुमहापुराण या लघुत्रिषष्टि लक्षण महापुराण—इसके रचनाकार हैं—चद्रमुनि

२. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र—रचयिता विमलसूरि

३. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित रचयिता—वज्रसेन

४ त्रिषष्टिशलाकापचशिला—रचयिता कल्याणविजय के शिष्य

५ एक अज्ञात लेखक ने ६३ गाथाओ में त्रिषष्टिशलाकापुरुष विचार नामक ग्र थ की रचना की है।[96]

(१०) **त्रिषष्टिशलाकापुरुष विषयक काव्य**

महापुराण—उत्तरपुराण (जिनसेन व गुणभद्र)

महापुराण जिसका अपर नाम उत्तरपुराण भी है। यह जैन सस्कृत कृष्ण साहित्य परपरा की एक महत्त्वपूर्ण एव विशाल कृति है। महापुराण दो भागो मे रचित है, प्रथम भाग का नाम आदिपुराण तथा द्वितीय भाग का नाम उत्तरपुराण है। ७६ पर्वों मे यह सपूर्ण ग्र थ निर्मित हुआ है।

---

९६ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग—६, पृ० ७८

आरभ के ४२ पर्व (सर्ग) तथा ४३ वें पर्व के प्रारंभिक ३ पद्य आचार्य जिनसेन रचित हैं। इस प्रकार आचार्य जिनसेन ने पूर्वार्द्ध की रचना की थी, शेषाश उत्तरपुराण की रचना गुणभद्राचार्य के द्वारा पूर्ण की गयी है। जो इन्हीं आचार्य जिनसेन के एक विद्वान पण्डित सिद्धकवि व सुयोग्य शिष्य रत्न थे। उत्तरपुराण के ७१, ७२ व ७३ वें पर्व मे श्रीकृष्ण कथा का विवेचन है।

महापुराण के उत्तरार्द्ध उत्तरपुराण की रचना को समाप्ति विक्रम सवत् ६१० सन् ८५३ के लगभग बतायी जाती है।[97]

हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण परवर्ती ग्रथकारों के लिए आधार-भूत ग्रथ रहे हैं। इन्हो आदर्शों पर विशेपत दिगवर जैन विद्वानो ने श्रीकृष्ण जन्म संबधी अनेक रचनाएं प्रस्तुत की है। इसके प्रथम अश आदि-पुराण मे प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋपभदेव का चरित्र वर्णन है, तो शेप २३ तीर्थं-करो तथा अन्य शलाका पुरुपो का जीवन चरित्र उत्तरपुराण मे विवेचित हुआ है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कृष्ण वर्णन हरिवश पुराण की अपेक्षा सक्षिप्त हुआ है। इसमें परंपरागत कृष्णचरित्र के प्रमुख प्रसगों का ही विवेचन है। अन्य घटनाओ का उल्लेख मात्र आ पाया है। महापुराण के कर्ता जिनसेन से हरिवशपुराण के रचनाकार जिनसेन भिन्न है। हरिवश-पुराण के कर्ता पुन्नाटक संघीय आचार्य थे। जब कि महापुराणकार पच-स्तूपान्वय सप्रदाय के थे। इस भिन्नत्व की चर्चा डॉ० हीरालाल जैन व डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने की है।[98] इसी तथ्य का अनुमोदन नाथूराम प्रेमी ने भी किया है।[99] जिनसेन ने इस कृति को पुराण और महाकाव्य दोनो नाम से कहा है। वास्तव मे यह महाकाव्य के वाह्य लक्षणो से युक्त एक पौराणिक महाकाव्य है। स्वय आचार्य ने पुराण व महाकाव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है जिसमे क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुप और उनकी चेष्टाओ का वर्णन हो वह पुराण है और इस प्रकार के पुराणो मे लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति तथा फल इन ८ वलो का वर्णन होना चाहिए।[100] पुरातन पुराण अर्थात् प्राचीन होने से पुराण कहा जाता है।

---

९७ जैन साहित्य और इतिहास, ले० नाथूरामप्रेमी, पृ० १४०

९८. महापुराण (उत्तरपुराण) प्रस्तावना स० प० पन्नालाल जैन,

९९ जैन साहित्य और इतिहास ले० नाथूराम प्रेमी

१०० पर्व १-२१-२५

जिसमे एक महापुरुष का वर्णन हो वह पुराण तथा जिनमे तिरसठ शलाका पुरुषो का वर्णन रहता है वह महापुराण है और जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है। 'सत्वधर्म पुराणार्थः' अर्थात् पुराण मे धर्म कथा का प्ररूपण होना चाहिए। कृति के ७१वें पर्व मे बलराम, श्री कृष्ण, उनकी ८ रानियो का एव प्रद्युम्न आदि का वर्णन कवि ने किया है।

(११) पाण्डव-पुराण (भट्टारक वादिचन्द्र)

प्रस्तुत पौराणिक काव्य मे १८ सर्ग हैं।[10] इसकी रचना स० १६५४ मे नौधक नगर मे हुई थी। इनके गुरु प्रभाचंद्र थे। इनके द्वारा रचित अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। यथा—पार्श्वपुराण, ज्ञान सूर्योदय नाटक, पवनदूत, श्रीपाल आख्यान (गुजराती हिंदी), यशोधर चरित्र, सुलोचना चरित्र, होलिका चरित्र और अबिका कथा। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के तेरहपथी बडे मदिर मे उपलब्ध है।

(१२) महापुराण (मल्लिषेणसूरि)

मल्लिषेणसूरि विभिन्न विषयो के मर्मज्ञ पडित तथा उच्चकोटि के कवि थे। इनकी रचना "महापुराण" मे कुल २००० श्लोक हैं, इनमे ६३ शलाका पुरुषो की कथा का सक्षिप्त मे वर्णन किया गया है। इसका अपरनाम त्रिषष्टि-महापुराण या त्रिषष्टिशलाका पुराण भी है। रचना सुदर और प्रसादगुण युक्त है।

रचयिता और रचनाकाल

महापुराण की रचना का समय शक ९६९ वि० स० ११०४ ज्येष्ठ सुदि पचमी दिया गया है, इसलिए मल्लिषेण विक्रम की ११वी के अत मे और १२ वी सदी के प्रारभ के प्रसिद्ध विद्वान हैं। मल्लिषेण की गुरु-परपरा इस प्रकार है। गगनरेश रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय के गुरु अजितसेन के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के शिष्य जिनसेन और जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण हैं। ये एक बडे मठपति, कवि और बडे मंत्रवादी थे। धारवाड जिले के मुलगुद मे इनका मठ था जहाँ पर यह ग्रथ निर्मित हुआ था। इनकी अन्य कृतियाँ नागकुमारकाव्य, भैरव पद्मावतीकल्प, सरस्वती-मत्रकल्प, ज्वालिनीकल्प और कामचाण्डालीकल्प हैं। ये सारी कृतियाँ मत्रवादी रचनाए हैं।[102]

---

१०२ जि० र० को० पृ० २४३, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८

१०३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, खण्ड ६, पृ० ६५, ले० गुलाचद्र चौधरी

(१३) पाण्डव-चरित (देवप्रभसूरि)

१८ सर्गों मे बद्ध इस कृति का कथानक लोकप्रसिद्ध पाण्डवो के चरित्र पर आधारित है जो जैन परपरा के अनुसार वर्णित है। साथ ही इसमें नेमिनाथ का चरित भी यथा-प्रसग कवि ने अकित किया है। वीररस प्रधान इस काव्य में शृगार, अद्भुत और रौद्र रसो के साथ शातरस में काव्य का पर्यवसान हुआ है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से नगरी, पर्वत, वन, उपवन, वसन्त ग्रीष्म आदि का वर्णन भी इसमे सुदर ढग से किया गया है। वर्ण्यविषयो के अनुसार ही सर्गों के नामकरण हुए हैं।

प्रस्तुत कृति के कथानक का आधार षष्ठागोपनिषद् तथा हेमचद्राचार्य चित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित आदि ग्र थ हैं जैसा कि ग्रथकार ने स्वय कहा है—

षष्ठांगोपनिषत्त्रिषष्टिचरितानालोक्यकौतूहला-
देतत् कन्दलयांचकार चरितं पाण्डो सुतानामहम्।

आठ हजार श्लोकप्रमाण इस ग्र थ में अनुष्टुप् छद का उपयोग हुआ है। वसततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी आदि छदो का भी प्रयोग कवि ने किया है। अनुप्रास, यमक, वीप्सा, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलकारो का उपयोग भी यथास्थान किया गया है। यह एक धार्मिक काव्य है जिसमे दानशीलता आदि का वर्णन करते हुए कवि ने ससार की अनित्यता का वर्णन किया है।

रचयिता व रचनाकाल

कृति मे दी गयी प्रशस्ति के अनुसार इसके रचयिता मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि थे। देवानदसूरि के अनुरोध पर यह ग्र थ रचा गया है।[103] पाडव चरित के सपादको ने इसका रचनाकाल वि० स० १२७० माना है।[104]

(१४) हरिवंश पुराण (भट्टारक सकलकीर्ति)

प्रस्तुत कृति के रचनाकार भट्टारक सकलकीर्ति हैं। जिनसेन के हरिवशपुराण के कथानक पर आधारित इस कृति मे ४० सर्ग हैं।[105] इसमें हरिवंश कुलोत्पन्न २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण तथा कौरव व पाण्डवो

---

१०३ पाण्डवचरित प्रशस्ति, पद्य, ८-६
१०४ जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास मो० द० देसाई
१०५ जि० र० को० पृ० ४५०, राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० २६

का वर्णन है। इसके प्रारभ के १४ सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा व शेष सर्गों की रचना इन्ही के शिष्य ब्रह्म जिनदास द्वारा की गयी है।

इनके समय को लेकर विद्वानो में भिन्न-भिन्न मत दिखलाई देते हैं। डॉ० कस्तूरचद कासलीवाल के मतानुसार इनका जन्म वि० स० १४४३ और स्वर्गवास १४९९ मे हुआ तथा डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार १४१८ मे जन्म एव १४९९ मे स्वर्गवास हुआ है। डॉ० मो० विन्टरनित्स द्वारा निर्धारित स्वर्गवास का समय स० १५२१ का ठीक नही है और न डॉ० जोहरापुरकर द्वारा निर्धारित काल स० १४५० भी उचित बैठता है।[106]

ये डूंगरपर (इंडर) पट्ट के सस्थापक तथा बागड (सागवाडा) वड-साजन पट्ट के भी सस्थापक थे। इनके द्वारा ३४ ग्र थ जिनमे २८ सस्कृत भाषा मे तथा ६ राजस्थानो भाषा में रचित हैं।

(१५) पाण्डवपुराण (शुभचंद्र)

इस पौराणिक काव्य के २५ पर्व हैं जिनकी श्लोक सख्या ६००० है। इसमे पाण्डवो की रोचक कथा का वर्णन किया गया है। इस ग्र थ को जैन महाभारत भी कहते हैं। पर्वों की रचना अनुष्टुप छदो मे हुई है तथा पर्वान्त मे छदपरिवर्तन किया गया है। पर्व का प्रारभ तीर्थंकर स्तुति से है जो क्रमश ऋषभदेव से लेकर पार्श्व तक चलती है।

ग्र थ के कर्ता भट्टारक शुभचद्र हैं जो भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य तथा ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। इनके शिष्य श्रीपाल वर्णी थे। इनकी सहायता से भट्टारक शुभचद्र ने वाग्वर(वागड)प्रात के अतर्गत (सागवाडा) नगर मे वि० स० १६०८ भाद्रपद द्वितीया के दिन इस ग्र थ की रचना की है। पच्चीसवें पर्व में जो कवि-प्रशस्ति दी गयी है उससे इनकी गुरु परपरा का तथा इनके द्वारा रचित २५, २६ ग्रंथो की सूची का परिचय उपलब्ध होता है।[107]

ये एक बडे विद्वान व प्रतिभासपन्न थे, इनके लिए त्रिविधविद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम और परमागम के ज्ञाता)और षट्भाषा कवि चक्रवर्ती

---

१०६ राजस्थान के जैन सत व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० १-२१, जैन सदेश शोधाक १६, पृ० १८१ तथा १८८ तथा २०८-२०९

१०७ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८३-८४

ये उपाधियाँ लगायी जाती थी ।

भ० श्रीभूषण का पाण्डव पुराण सं० १६५७ का है । इन्ही का लिखा हुआ एक हरिवंश पुराण भी मिलता है जिसका रचनाकाल सं० १६७७ हैं ।[108]

(१६) पाण्डव पुराण :अन्य रचनायें

"पाण्डव पुराण" इस नाम की कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनके रचनाकार भी भिन्न-भिन्न हैं। इसकी सूची इस प्रकार है—पाण्डवचरित्र इसका अपरनाम हरिवंश पुराण भी है। सत्यविजय ग्रंथमाला अहमावाद से प्रकाशित है। न० २ पाण्डवपुराण—कवि रामचद्र स० १५६० से पूर्व । नं०३ हरिवंशपुराण—धर्मकीर्ति भट्टारक सं० १६७१ । न०४ हरिवशपुराण-श्रुतकीर्ति । न० ५ हरिवशपुराण—जयसागर । न० ६ हरिवशपुराण—जयानंद। ७ हरिवंशपुराण—मगरस । इन सब के लेखक व रचनाकाल अज्ञात हैं। लघुपाण्डव चरित्र के लेखक भी अज्ञात हैं ।[109]

जैन संस्कृत साहित्य का एक अनुशीलनात्मक अध्ययन

सस्कृत साहित्य विश्वभर मे अपनी समृद्धि के लिए अनन्यतम स्थान रखता है—यह एक निर्विवाद तथ्य है । जीवन और जगत का व्यापक चित्र प्रस्तुत करने वाला यह सस्कृत साहित्य न केवल विभिन्न दिशा में वोध प्रदान करता है वरन् यह काव्य सौंदर्य से भी संपन्न है। सरसता सस्कृत साहित्य की एक अत्यत महत्त्वपूर्ण विशेषता है । सस्कृत साहित्य की इस व्यापक विशालता और समृद्धि मे जैन कवियो की कृतियो का योगदान भी अति महत्वपूर्ण है ।

काव्य चमत्कार, सौदर्य सृष्टि, रसानुभूति आदि किसी भी दृष्टि से जैन कृष्ण सस्कृत साहित्य कम महत्वपूर्ण नही है। सास्कृतिक एव नैतिक आदर्शो की स्थापना और उनके विकास मे इस साहित्य का जो गरिमापूर्ण योगदान रहा है वह श्लाघनीय है । ऐसे अनेक चरित्रो की अवतारणा जैन सस्कृत श्रीकृष्ण साहित्य मे हुई हैं जो न केवल प्रभावशाली आदर्शमय है अपितु जो स्वस्थ समाज-रचना और व्यक्ति कल्याण के लिए हितकर एव अनुकरणीय हैं ।

सामान्यत जैन सस्कृत श्रीकृष्ण साहित्य मे जीवन के सरस आमोद-प्रमोद एवं सुखवैभव के चित्रण के साथ-साथ जीवन मूल्यो की व्याख्या भी

---

१०८ जैन साहित्य और इतिहास, ले० नाथूराम प्रेमी पृ० ३८३-८४

१०९ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ० ५५

प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार जीवन को प्रवृत्ति की ओर से निवृत्ति की ओर उन्मुख करने का जो सफल और प्रभावपूर्ण प्रयत्न किया गया है उससे मानव कल्याण के क्षेत्र मे एक नवीन स्थापत्य का सूत्रपात हुआ है। सस्कृत वाड्मय मे यह एक नया आयाम रहा है।

जैन कृष्ण काव्य की कृतियो का सब से महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस साहित्य मे भोगवाद के ऊपर श्रमण परपरा को प्रतिष्ठित किया गया है। कर्मवाद की महत्ता, पूर्वजन्म की व्याख्या, आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न रूप, धार्मिक क्रियाओ के फलितार्थ आदि भी इन काव्यो की मूल सवेदनाए हैं। भोग के बाद की विरक्ति का युग जैन साहित्य में उपलब्ध होता है। यह सस्कृत साहित्य के लिए एक अनूठी वस्तु है। परम वैभवशाली पराक्रमी राजा, महाराजा, माडलिक, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि तो असीम सुखोपभोग मे निमग्न है, सासारिक विषय वासनाओ से ग्रस्त हैं, वैभव एव विलास की मदिरा से उन्मत हैं। ऐसे व्यक्ति कभी किसी छोटे से निमित्त को पाकर विरक्त हो जाते हैं। उनकी मनोवृत्ति सर्वथा परिवर्तित हो जाती है। वे सब कुछ त्याग कर वन को प्रस्थान करते हैं। मुनि जीवन स्वीकार कर वे आत्म-कल्याण की साधना मे प्रवृत्त हो जाते है। व्यक्ति का यह उत्थानात्मक परिवर्तन और इस परिवर्तन की प्रेरणा सस्कृत साहित्य के लिए एक मूल्यवान वस्तु रही है।

जैन सस्कृत कृष्ण काव्य की देन

निश्चय ही अपनी मौलिक अवधारणाओ के माध्यम से जैन सस्कृत कृष्ण परपरा की कृतियो ने सस्कृत साहित्य मे अपना अनूठा स्थान ही नही बनाया वरन् समस्त सस्कृत वाङ्मय को नवीनताएँ भी प्रदान की है। इसकी श्रीवृद्धि की है। इसको समृद्ध बनाया है। इस तथ्य को सर्वथा असदिग्ध ही माना जाना चाहिए कि सस्कृत जैन कृष्ण साहित्य के अध्ययन के बिना सस्कृत साहित्य का अध्ययन परिपूर्ण नही कहा जा सकता।

चरित्र-काव्य की दृष्टि से जैन सस्कृत साहित्य बडा सपन्न स्वरूप रखता है। समग्र सस्कृत साहित्य मे चरित-काव्य के प्रणेताओ मे जैन रचनाकार ही अधिक हैं और इनके द्वारा रचित चरित-काव्य ही अपेक्षाकृत अधिक हैं। जैन सस्कृत चरित्र-काव्य कवित्व की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस दृष्टि से कवि वीरनदि रचित "चद्रप्रभचरित" उल्लेखनीय है, जो भाव-तारल्य और शील निरूपण मे कालिदास कृत "रघुवश" के समकक्ष

माना जाता है। शील, शौर्य एव ऐश्वर्य का जितना व्यापक चित्रण चद्रप्रभ चरित में हुआ है उतना रघुवश में नही। इदुमति के स्वयवर प्रसग के उदात्त वर्णन मे अवश्य ही रघुवंश चद्रप्रभ चरित से आगे वढ गया है किंतु श्री वर्मा और अजितसेन की दिग्विजय यात्रा के प्रसग मे तो वह पीछे ही रह गया है।

इसी प्रकार महाकवि असग द्वारा रचित "वधमानचरित", वाग्भट कृत "नेमिनिर्वाण" आदि काव्य "किरात" के समान ही काव्यसौदर्य-सपन्न हैं। अर्थ-गांभीर्य अवश्य ही किरात मे वढा चढा है किंतु उक्त दोनो काव्य प्रकृति-चित्रण, शृगार वर्णन, पदलालित्य, कल्पना प्रवणता, और समास-शैली के सौप्ठव में तो किरात से अधिक ही ठहरते है।

"कवि हरिश्चंद्र" के धर्मशर्माभ्युदय की तुलना शिशुपाल वध से भी की जा सकती है। कलात्मकता मे तो धर्मशर्माभ्युदय अपेक्षाकृत शिशुपालवध से कुछ आगे ही है। दोनो ही काव्य कल्पना, उदात्तता, शब्द-सौदर्य, अलकार छटा आदि विशेषताओ मे परस्पर समकक्ष है। पद-विन्यास, शैली की गभीरता, भावो की मौलिकता आदि भी दोनो काव्यो मे समस्तरीय रही है। शिशुपाल वध को माघ ने पारिभाषिक शव्दावली से कही-कही जटिल वना दिया है किंतु धर्मशर्माभ्युदय मे ऐसी स्थिति कही भी दिखाई नही देती है। इस काव्य का १९वा सर्ग तो चित्रकाव्य का अनूठा उदाहरण ही है। अनुप्रास योजना मे कवि हरिश्चद्र और माघ एक से प्रतीत होते हैं।

वस्तुपाल कृत (नरनारायणानद) भी एक सुदर कृष्ण-चरित काव्य है। इसकी तुलना काव्य-सौष्ठव मे तो शिशुपाल वध के साथ नही की जा सकती किंतु भाव पक्ष की दृष्टि से वस्तुपाल भी माघ के समीप ही है। अपने गाभीर्य से (नरनारायणानद) काव्य सहृदय पाठको को आकृष्ट कर रघुवश जैसा प्रभाव अकित करने की क्षमता रखता है। इसमे भारवि के समान नाद-सौंदर्य निहित है। कलापक्ष की दृष्टि से वस्तुपाल और भारवि परस्पर तुलनीय हैं।

"नैषधकाव्य" की कोटि की रचना जैन कवियो द्वारा सभव नही हो पायी है। यद्यपि मुनिभद्र ने सकल्प किया था कि वे माघ और नैषध से भी श्रेष्ठ काव्य की रचना करेंगे। किंतु (शातिनाथ चरित) मे उनका यह सकल्प पूरा नही हो पाया। तथापि प्रस्तुत काव्य अनेक दृष्टियो से मूल्यवान भी है। इसमे प्रासादिकता, प्रौढ गभीर भाषा, भाव तरलता आदि विशेषताएँ

उल्लेखनीय रहो है। कवि को पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति का भी सकेत नही मिलता है। अति विस्तृत कथानक होते हुए भी कही किसी प्रकार का शैथिल्य या विशृखलता नही दिखायी देती है। प्रवध कौशल मे नि सन्देह मुनिभद्र माघ और भारवि से पीछे नही है। कला के क्षेत्र मे अवश्य ही वे कुछ न्यून कहे जा सकते है। हा, जिनपालोपाध्याय रचित सनत्कुमार चरित्र चरित महाकाव्य परिपूर्ण रूप से अवश्य ही नैषध की कोटि का है।

जैन सस्कृत साहित्य के अतर्गत जैनकुमार संभव की भी रचना हुई है। इस कृति की रचना कालिदास विरचित कुमारसभव की प्रतिस्पर्धा मे ही हुई है, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रस्तुत रचना में शृगार रस की योजना तो उतनी श्रेष्ठ नही मिलती जितनी कालिदास की है, किंतु कालिदास के कार्तिकेय जन्म-वृत्तात जैसा ही वर्णन प्रस्तुत रचना मे भरत जन्म की कथा मे है। माधुर्य, प्रासादिकता, लालित्य, अर्थसौष्ठव एव अलकार योजना मे दोनो रचनाएँ विंव प्रतिविंव सी हैं। जैन कुमार-सभव भी सरस उपमाओ के लिए विख्यात ग्रथ है। अश्लीलत्व की अनुपस्थिति मे ये उपमाये अपेक्षाकृत अधिक उत्तम लगती हैं। कालिदास ने शिवविवाह का जैसा चित्ताकर्षक एव मार्मिक चित्रण किया है वैसा ही वर्णन जैन कुमार सभव मे ऋषभदेव विवाह का हुआ है।

बुद्ध चरित और सौदरानद की समकक्षता जैन ग्रथ चद्रप्रभ चरित, पार्श्वनाथ चरित आदि काव्यो से की जाती है। सस्कृत काव्यो (उक्त) की अपेक्षा इन जैन सस्कृत काव्यो मे मनुष्य की हृदय परिवर्तनशीलता का अत्यधिक मार्मिक चित्रण हुआ है। सासारिक अनुभवो की अभिव्यक्ति भी अधिक कुशलता के साथ हुई है। साहसिकता के चित्रण में प्रद्युम्न चरित सौदरानद से अधिक प्रवाहपूर्ण रचना है। पात्रो की सजीवता, पारिवारिक कलह, सपत्नी आदि के चित्रण हेतु यह रचना सस्कृत जैन कृष्ण विषयक चरित्र काव्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

जैन सस्कृत साहित्य मे ऐतिहासिक काव्यो की रचना भी श्रेष्ठता के साथ हुई है। उदाहरणार्थ नयचद्रसूरिकृत हम्मीर महाकाव्य सस्कृत के विख्यात ऐतिहासिक काव्य विल्हण कृत विक्रमाकदेव चरित के समकक्ष है। हम्मीर महाकाव्य मे वर्णित घटनाएँ इतिहास की दृष्टि से खरी उतरने वाली प्रामाणिक घटनाएँ है। इस महाकाव्य मे कालिदास जैसा भाव, तथ्य, नैषध जैसा अर्थ-गौरव एव भाषा-सौष्ठव में यह रचना राजरगिणी के समकक्ष है।

संधान-काव्यो की रचना द्वारा भी जैन काव्यकारो ने सस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इस कोटि की काव्य-परपरा का आदि ग्रंथ धनजय कृत द्विसधान एक जैन कृष्ण संस्कृत काव्य कृति है। इस परपरा में इससे भी पूर्व रचित दण्डि कृत द्विसंधान की चर्चा तो की जाती है। भोजकृत शृगार-प्रकाश मे भी उसका उल्लेख है, किंतु यह कृति उपलब्ध नही है। अत मेरे मत से सधान काव्य-परपरा का उदय धनजय प्रणीत द्विसधान से किया जाना अधिक समीचीन होगा। इस परपरा मे अन्य प्रमुख रचनाएँ है—

विद्यामाधव कृत पार्वती शैवमपीय (वि० स० ११८३), कविराज कृत राघव पाण्डवीय (वि० स० १२३०), सोमेश्वर द्वारा रचित राघव-यादवीय आदि। राघवयादवीय द्विसधानरचना कतिपय अन्य कवियों द्वारा भी गई है। जैसे—वेंकेटश्वरी (१४वी शताव्दी), रघुनाथाचार्य श्री विगसाचार्य, वासदेव दिगंवर अनन्ताचार्य आदि। ये द्विसधान काव्य निश्चय ही धनजय कृत राघवपाण्डवीय की परवर्ती कृतियाँ है।

राघवपाण्डवीय काव्य में श्री राम और पाण्डवो की कथा एक साथ एक ही काव्य मे वर्णित की गयी है। श्लोको के दो-दो अर्थ प्रकट होते है। एक राम कथा के संबध मे एव दूसरा पाण्डव कथा के सबध मे है। इसी प्रकार राघवयादवीय मे श्री राम और श्री कृष्ण चरित का समानान्तर रूप मे वर्णन है। आद्योपांत ऐसी अर्थ-निर्वाह-व्यवस्था कवि के वढे-चढे काव्य-कौशल का परिचय देती है। हम इसे जैन सस्कृत सधान कृष्ण काव्य के अंतर्गत परिगणित करते हैं। आचार्य हेमचद्र ने तो सप्तसधान की रचना की थी। इसमे सात-सात महापुरुषो के जीवन चरित का वर्णन एक ही काव्य मे प्राय एक ही श्लोक के प्रयोग से किया गया था। यह अद्भुत काव्य ग्रथ नष्ट हो गया। कालातर मे मेघविजय गणि ने पुन सप्त-सन्धान काव्य की रचना की। कुछ पचसधान काव्य भी जैन कवियो ने रचे हैं।

सस्कृत साहित्य मे सदेश काव्यो की एक समृद्ध परपरा रही है—मेघ-दूत श्रेष्ठ संस्कृत सदेश काव्य है, जिसमे बाह्य प्रकृति वर्णन के साथ-साथ आंतरिक भावो का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप मे रचा गया पार्श्वाभ्युदय अपने ढग का अनूठा जैन सस्कृत काव्य है। जैन कवियो ने दूत अथवा संदेश काव्यो के स्वरूप मे एक नया रग जोड़ने का सफल प्रयास किया है। इन काव्यो मे शात रस का प्राधान्य रहा है और जैन सिद्धातो, तत्त्वो और आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से

नेमिदूत (जैनकाव्य) विशेष महत्वपूर्ण है।

निसदेह जैन सस्कृत साहित्य सभी दृष्टियो से महान है। उसका वैभव प्राचुर्य भी ध्यातव्य है। उसका सौदर्य तथा सौष्ठव भी उल्लेखनीय है। सस्कृत साहित्य के इस व्यापक पट पर जैन कवियो द्वारा रचित सस्कृत कृष्ण काव्यो को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह एक यथार्थ तथ्य है कि सस्कृत को जो प्रचुर गरिमा प्राप्त हुई है उसमे जैन सस्कृत कृष्ण साहित्य का योगदान भी अति महत्वपूर्ण रहा है। यहा यह स्मरणीय है कि जैनेतर कृष्ण काव्य मे उधो को सदेश देकर गोपियो के पास कृष्ण ने भेजा था और गोपियो ने भी भृग को लक्षित करते हुए कृष्ण और उधो पर फब्तिया कसी हैं, पर इस प्रकार का कोई प्रयत्न सस्कृत जैन कृष्ण काव्य मे उपलब्ध नही हुआ है। उसका कारण जैन तत्वज्ञान और वीतरागी दृष्टि भी हो सकती है।

मैंने इस अध्याय मे सस्कृत के करीब-करीब जैन कृष्ण काव्यो की सोलह कृतियो का अनुशीलन किया है। जो तथ्य और निष्कर्ष हाथ आये हैं उनका अब मैं यहा पर विवेचन कर रहा हूँ।

निष्कर्ष एवं तथ्य

(१) इस अध्याय मे चरित महाकाव्य के अतर्गत प्रद्युम्न चरित, नेमिनिर्वाण काव्यम् ये दो महाकाव्य चरित्र, महाकाव्य के रूप मे मेरे अध्ययन में आए।

(२) नरनारायणानन्द महाकाव्य मे अर्जुन और श्रीकृष्ण इन दो मित्रो की मैत्री, आनद और उल्लास का वर्ण्य विषय होकर बडी सरस कृति प्रस्तुत की गई है। यही इन दोनो के चरित्र का आलेख आयाम भी बना है।

(३) सप्तसन्धान काव्य मे सात महापुरुषो का चरित्र सक्षिप्त रूप से सात सर्गों मे विवेचित किया है। इसके बाद एक द्विसधान नाम का राघव और पाण्डवो की कथा को एक साथ प्रस्तुत करनेवाला काव्य मेरे अनुशीलन का विषय बना। पूरे चरित्रो को न लेकर श्रीराम और श्रीकृष्ण की प्रमुख जीवन घटनाओ को जैन दृष्टि से लेकर इनका विवेचन सामने आया है।

(४) पुराणसारसग्रह, हरिवशपुराण ये छोटी कृतियां हैं, पर श्रीकृष्ण चरित्र और अरिष्टनेमी का सबध दूसरी कृति मे जैन दृष्टि से अधिक स्पष्ट हो गया है।

(५) नेमिदूत यह अवश्य एक उल्लेखनीय सरस काव्यकृति है। चरित नायक नेमिनाथ और नायिका राजीमती हैं। यह विरह प्रधान करुण काव्य होने पर भी वीतराग रस की निर्मिती इसका प्रामुख्यता से उद्देश्य जान पडता है। जैन सस्कृत काव्यो मे इसका अन्यतम स्थान है।

(६) त्रिशष्टिशलाका पुरुषो के चरित को लेकर कतिपय छोटी-बड़ी कृतियाँ भी जैन सस्कृत कवियो के काव्य-सृष्टि का विषय बनी हैं जो जैन तत्वज्ञान की पारपरिकता को स्पष्ट करने में सहायक हो सकती हैं। इनमे पौराणिकता भी विद्यमान है। एक ही कृति के दो भाग दो पुराणो के नाम से सर्जित हैं। इसकी भी एक परपरा चली है और कई पाण्डवपुराण भी लिखे गये हैं। काव्य की दृष्टि से कही सरस और कही मनोरम बन गये हैं।

(७) श्रीकृष्ण और पाण्डव, श्रीकृष्ण और नेमिनाथ इनका आपसी सवध महाभारत और जैन पुराणो के अनुसार जोड़कर ये कृतियाँ जैन लेखकों ने रची है। इन सब का यथा-योग्य अध्ययन यथास्थान मैंने कर दिया है। पुराने सस्कृत काव्यो के कृतिकारो के साथ जैन श्रीकृष्ण सस्कृत कृतिकारो की यह स्पर्धा काव्य के क्षेत्र की एक श्रेष्ठ स्पर्धा मानी जाय ऐसी मेरी विनम्र प्रणति है।

अब तक की सारी सामग्री के आधार पर तथा अपभ्रश की जैन कृष्ण कथा को लेकर छठे अध्याय मे सारी कथा का अनुशीलन करूँगा। अगला अध्याय मेरे अध्ययन का अपभ्रश जैन कृष्ण साहित्य होगा।

५

अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण—साहित्य

भारतीय साहित्य के इतिहास की दृष्टि से जो अपभ्रश का उत्कर्ष-काल समझा जाता है वही जैन कृष्ण काव्य का मध्यान्ह काल है। इसी कालखण्ड मे पौराणिक और काव्य साहित्य की अनेक कृष्ण-विषयक रचनाएँ सर्जित हुई हैं। विषय व शैली की दृष्टि से जैन अपभ्रश श्रीकृष्ण साहित्य पर सस्कृत और प्राकृत परपरा का प्रभाव दिखाई देता है। यह सत्य है कि ये अपभ्रश काव्य-रचनाएँ प्राय अप्रकाशित हैं। इनका उपलब्ध होना भी कठिन है। फिर भी यह श्रीकृष्ण साहित्य काव्यगुणो से वचित नही माना जा सकता।

अपभ्रश मे नवमी शताब्दी के पूर्व कोई कृति उपलब्ध नही है। दसवी शताब्दी तक स्वल्प सख्या मे ही कृतियाँ उपलब्ध हैं। अपभ्रश की लाक्षणिक साहित्यिक एकाध कृति यदि मिल भी जाए तो वह उत्तरकालीन है। अपभ्रश का बचा हुआ साहित्य विशेष रूप से धार्मिक साहित्य होने से केवल धार्मिक जैन-साहित्य के अतर्गत ही आता है। वैसे जो कुछ भी अपभ्रश-साहित्य बचा है वह भी अल्प प्रकाशित है और अन्य भण्डारो में हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे होने से सर्वसुलभ नही है।

सस्कृत एव प्राकृत मे पौराणिक और काव्य साहित्य की अनेक कृष्ण विषयक कथाओ की रचनाएँ मिलती हैं। इनमे हरिवश, विष्णुपुराण तथा भागवत पुराण की कृष्ण कथाए ही तत्कालीन अपभ्रश साहित्य रचनाओ का मूलस्रोत रही हैं। अपभ्रश साहित्य मे भी कृष्ण विषयक रचनाओ की दीर्घ व व्यापक परपराओ का रहना सहज था। परतु, जिन परिस्थितियो का हम वर्णन कर आए हैं उनके कारण अपभ्रश का एक भी शुद्ध कृष्ण-काव्य उपलब्ध नही होता। जैनेतर कृष्णकाव्य भी उपलब्ध नही होता। जैन कृष्ण कथा मे भी मुख्य-मुख्य प्रसग उनके क्रम एव पात्र के स्वरूप आदि

दीर्घकालीन परपरा से नियत थे। जहा तक कथानक का सबध है, वहा जैन श्रीकृष्ण कथा की विभिन्न कृतियो मे परिवर्तन के लिए कम गुजाइश रहती थी। तपशीलो के विषय में कार्यों की प्रवृत्ति, निर्मितो के विषय में और निरूपण की कथा के विषय में एक कृति और दूसरी कृति के बीच प्रचुर मात्रा मे अन्तर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर और श्वेताम्बर जैन परंपरा के कृष्ण चरित्रो की भी अपनी-अपनी विशेषताएं रहती हैं। इसलिए उनके रूपान्तर के अनुसरण करने मे भी कुछ भिन्नत्व मिलता है, विषयो को सम्प्रदायानुकूल बनाने के लिए मूल कथानक को लेकर कोई सर्वमान्य प्रणाली इनके सामने नही थी, इसलिए जैन रचनाकारों ने अपने-अपने स्वतत्र मार्ग अपनाए हैं।

जैन कृष्ण चरित्र के अनुसार कृष्ण न तो दिव्य पुरुष थे, न ईश्वर के अवतार। वे तो एक असामान्य शक्तिशाली वीर पुरुष एव सम्राट थे। जैन पुराण कथा के अनुसार तिरसठ महापुरुष या शलाकापुरुष हो गए हैं। इसके साथ तीर्थंकर चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और प्रति वासुदेव की सख्याओ का समावेश होता है।

जैन कृष्ण काव्य मे एक नई त्रिपुटि मिलती है जो कृष्ण, बलराम और जरासध की है। दिगम्बर परपरा मे चतु पचाशत महापुरुषो की परपरा थी। ऐसी कृति को महापुराण कहा जाता है। इसके दो भाग हैं, एक का नाम—आदि पुराण और दूसरे का नाम उत्तर पुराण है। आदि पुराण मे प्रथम तीर्थंकर व प्रथम चक्रवर्ती और उत्तर पुराण मे शेष महापुरुषो के चरित्र विवेचित किए गये हैं। ६३ महापुरुषो के चरित्रो को ग्रथित करनेवाली परपरा मे रचनाओ के नाम त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र या त्रिषष्टि महापुरुष चरित्र कहा जाता है। जब इनमे नव प्रतिवासुदेवो की गिनती नही की जाती थी तब ऐसी रचना को "चतुष्पचाशत महापुरुष चरित्र" ही कहते थे।

इसके अलावा किसी एक तीर्थंकर, वासुदेव, और चक्रवर्ती को लेकर भी कृतिया रची जाती रही हैं। इनको पुराण भी कहा जाता है, कृष्ण वासुदेव का चरित्र तीर्थंकर अरिष्टनेमि के साथ सलग्न है। ऐसी रचनाओं के नाम हरिवश पुराण या अरिष्टनेमि पुराण भी पाया जाता है।

जैन अपभ्रंश साहित्य में श्रीकृष्ण

सोदाहरण :—

भारतीय वाङ्मय के विकास में अपभ्रंश साहित्य का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे समस्त साहित्यिक गौरव-भवन के आधारभूत स्तम्भों मे अपभ्रंश को स्वीकारना भी सभी दृष्टियो से समीचीन प्रतीत होता है। अपभ्रंश का उल्लेख हमारे इतिहास के अतिप्राचीन युग से मिलता है। पातजल महाभाष्य में अपभ्रंश का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है जो ईसा से दो शताब्दी पूर्व की रचना है, किंतु यह भी सत्य है कि अपभ्रंश साहित्य की रचना ईसा की आठवी शताब्दी से ही सर्जित होने लगी थी। इससे पूर्व इस भाषा की रचना कही भी दृष्टिगत नही होती। अपभ्रंश का आदि कवि स्वयभू माना जाता है।

अपभ्रंश साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है और यह भी एक सत्य है कि इसकी विपुलता का सर्वाधिक श्रेय जैन कवियो को दिया जाता है। इस समय उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का सर्वेक्षण किया जाए तो यह निष्कर्ष प्रकट होता है कि इसके तीन चौथाई से भी अधिक अंश के रचयिता जैन रचनाकार ही मिलेगे। अपभ्रंश के जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित्र भी उल्लेखनीय मात्रा में वर्णित हुआ है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ एव उनके रचनाकारों का विवरण भी प्रासगिक ही होगा।

स्वयंभू पूर्व के कृतिकार

महाकवि स्वयभू के पूर्व की कृष्ण विषयक अपभ्रंश रचनाओ के बारे मे जो जानकारी मिलती है वह अत्यन्त स्वल्प और त्रोटक है। इसके लिए आधार हैं—स्वयभूकृत छन्दोग्रन्थ स्वयभूछन्द मे दिए गये कुछ उद्धरण में हमे प्राप्त होते हैं। हेमचद्रकृत—"सिद्धहेमशब्दानुशासन" के अपभ्रंश विभाग मे दिए गए तीन उद्धरण और कुछ अपभ्रंश कृतियो मे दिये गये कुछ कवियो के नाम-निर्देश इस प्रकार हैं।

स्वयभू के पूर्वगामियो मे चतुर्मुख स्वयभू की ही कक्षा का समर्थ महाकवि था। सम्भवत वह जैनेतर था। उसने एक रामायण विषयक और एक महाभारत विषयक ऐसे कम से कम दो अपभ्रंश महाकाव्यो की रचना

की है। इसे मानने का पर्याप्त आधार है[1] महाभारत विषयक कष्णकाव्य मे कृष्ण चरित्र के कुछ अंश ।

चतुर्मुख के अतिरिक्त स्वयभू का एक और ख्यातनाम पूर्ववर्ती था, जिसका नाम गोविंद था। गोविंद के ६ छद जो दिए गए हैं वे कृष्ण के बाल-चरित विषयक किसी काव्य के अश हैं। जहा से वे लिए गए है, गोविंद के उद्धृत छदो मे इसके हरिवंश विषयक या नेमिनाथ विषयक काव्य मे से लिए गये जान पडते हैं। सभवत पूरे काव्य की रचना द्विभगी छद मे की गयी होगी। हरिभद्र ने इसके बाद रड्डा छद मे ही "नेमिनाथ चरित" की रचना की थी।

स्वयभू छद में गोविंद से लिया गया मत्तविलासिनी नामक मात्रा छद का उदाहरण जैन परपरा के कृष्ण वालचरित्र का एक सुप्रसिद्ध प्रसग है।

कालिय-नाग के निवासस्थान बने हुए कालिंदी मे से कमल निकाल कर भेट करने का आदेश नद को कस ने दिया था, इस सदर्भ का पद्य इस प्रकार है—

एहु विसमउ सुद्धु आएसु
पाणतिउ माणुसहो विट्ठो विसु सप्पु कालियउ।
कंसु वि भारेहु घुउ काँहि गम्मउ काइं किजउ ॥

(स्व-छ-४-१०-१)

यह आदेश अत्यत कठोर था। वह यह कि मानव के लिए प्राण सहारक दृष्टि-विष वाला कालिय नाग अपने विषैले फूत्कार और विषेली दृष्टि से श्रीकृष्ण का हनन करे। और, दूसरा आदेश यह कि यदि सर्प उसे कुछ न कर पावे तो दूसरी ओर यह था (आदेश के अनादर से) कस से अवश्य प्राप्तव्य मृत्युदण्ड—तो अब वह कहा जाए और क्या करे ?

गोविंद का दूसरा पद्य जो मत्तकरिणी मात्रा छद मे रचा हुआ है, राधा की और कृष्ण का प्रेमातिरेक प्रकट करता है। हेमचद्र के "सिद्धहेम" मे भी यह उद्धृत हुआ है (देखो ८-४-४२२, ५) और वही कुछ अश मे

---

1 Caturmukha—One of the earliest Apabhramsia—epic posts, Journal of the Oriental Institute, Baroda.
—ग्रथ ७, अक ३, ले० डा० एच० सी० भायाणी, १ मार्च १९५८, पृ० २१४-२४

प्राचीनतर पाठ सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त "सिद्धहेम", ८-४-४२०, २ में जो दोहा उद्धृत है वह भी मेरी समझ में बहुत कर के गोविंद के ही उसी काव्य के ऐसे ही संदर्भ में रहे हुए किसी छद का उत्तराश है। "स्वयभूछद" मे दिया गया गोविंदकृत वह दूसरा छंद इस प्रकार है। अश हेमचद्र वाले पाठ से लिया गया है।

एक्कमेक्कउ जइ वि जोएवि
हरि सुट्ठू वि आअरेण तो विद्रोहि जहिं कहिं वि राही।
को सक्कइ सवरे वि दड्ढ णयण णेहे पलुट्टा ॥

(स्व० छ० ४-१०-२)

एक-एक गोपी की ओर हरि यद्यपि पूरे आदर से देख हे हैं तथापि उनकी दृष्टि वही जाती है जहा राधा होती है. स्नेह से झुके हुए नयनो का सवरण भला कौन कर सकता है?

इसी भाव से सलग्न "सिद्धहेम" मे उद्धृत दोहा इस प्रकार है—

हरि नच्चाविउ प्रगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ।
एवहिं राह-पओहरह जं भावइ तं होउ ॥

"हरि को अपने घर के प्रागण मे नचा कर राधा ने लोगो को विस्मय में डाल दिया। अब तो राधा के पयोधरो का जो होना हो सो हो।"

"स्वयभू छद" में उद्धृत बहुरूपा मात्रा के उदाहरण मे कृष्ण के वियोग में तडपती हुई गोपी का वर्णन है। पद्य इस प्रकार है—

वेह पाली थणह पब्भारे
तोडेप्पिणु पालिणिवलु हरिविओअसंतावें तत्ती।
फलु अण्णुहिं पावियउ करउवइअ जं किंपि रुच्चइ ॥

कृष्ण वियोग के सताप से तप्त गोपी उन्नत स्तन प्रदेश पर नलिनी-दल तोड कर रखती है। उस मुग्धा ने अपनी करनी का फल पाया। अब देव चाहे सो करें।

हेमचंद्र के "त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र" ६-५ मे किया गया वर्णन इससे तुलनीय है—गोपियो के गीत के साथ बालकृष्ण नृत्य करते थे और बलराम ताल बजाते थे।

मानो इससे ही सलग्न हो ऐसा 'मत्तबालिका मात्रा' का उदाहरण है—

कमल कुमुआण एक्क उप्पत्ति
ससि तो वि कुमुआअरह् देइ सोक्खू कमलह् दिवाअरु।
पाविज्जइ अवस फलु जेण जस्स पासे ठवेइउ ॥

(स्व० च्छ०, ४-६-१)

कमल और कुमुद दोनो का प्रभवस्थान एकही होते हुए भी कुमुदो के लिए चद्र एव कमलो के लिए सूर्य सुखदाता है। जिसने जिसके पास धरोहर रखी हो उसको उसी से अपने कर्मफल प्राप्त होते है।

इन पद्यो से गोविंद कवि की अभिव्यक्ति की सहजता का तथा उसकी प्रकृतिचित्रण और भावचित्रण की शक्ति का हमे थोड़ा-सा परिचय मिल जाता है। यह उल्लेखनीय है कि वाद के वालकृष्ण की क्रीडाओं के जैन कवियो के वर्णन में कही गोपियो के विरह की तथा राधा संबधित प्रणय-चेष्टा की बात नही है। दूसरी बात यह है कि मात्रा या रड्डा जैसा जटिल छंद भी दीर्घ कथात्मक वस्तु के निरूपण के लिए कितना सुगेय एव लयबद्ध हो सकता है, यह बात गोविंद ने अपने सफल प्रयोगो से सिद्ध की। आगे चल कर हरिभद्र से इसी का समर्थन किया जाएगा। और, छोटी रचनाओ मे तो रड्डा का प्रचलन १५ वी, १६ वी शताब्दी तक रहा। रड्डा छद का उदाहरण यही पर दिया जा रहा है—[2]

इत्तउं बोप्पिणु सउणि ठिऊ पुणु दुसासणु बोप्पि।
तो हुउ जाणउं एहो हरि जइमहु अग्गह बोप्पि ॥

इतना कहकर शकुनी चुप रह गया और बाद में दु शासन ने यह कहा कि मेरे सामने आकर जव बोले तब जानूँ कि यही हरि है।

प्रस्तुत अर्थ मे कुछ अस्पष्टता होते हुए भी इतनी बात स्पष्ट है कि प्रसग कृष्ण विषय का है। यह पद्य भी शायद गोविंद की जैसी ही अन्य कोई महाभारत विषयक रचना मे से लिया गया है।

(१) महाकवि स्वयंभूकृत रिठ्ठणेमिचरिउ

स्वयभू नौवी शताब्दी के कवि हैं और जैसा कि वर्णित किया ही जा

---

२ सिद्धहेम, ८-४, ३६१

चुका है कि ये अपभ्रश भाषा के प्रथम ज्ञात कवि हैं। इसके साथ यह तथ्य भी प्रमुखतः ध्यातव्य है कि यही कवि स्वयभू अपभ्रश के जैन श्रीकृष्ण साहित्य की परपरा के भी प्रथम कवि हैं। स्वयभू एक सिद्ध कवि थे और उनकी रचनाओ में प्रौढता एव परिपक्वता के दर्शन होते हैं। कवि की रचना रिठ्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमिचरित्र) एक उल्लेखनीय महाकाव्य कृति कही जा सकती है। यह ग्रथ ४ काण्डो मे विभाजित है।

१ यादव काण्ड की १३ सधिया, २ कुरु काण्ड की १६ सधिया,

३ युद्धकाण्ड की ६ सधिया, ४ उत्तर काण्ड की २ सधिया।

सपूर्ण ग्रथ मे ११२ सधिया और १६३७ कडवक हैं। महाकाव्य की ११२ सधियो मे ६६ वे सधिया हैं जो स्वयभू द्वारा रचित हैं। और, शेष का कर्तृत्व उनके पुत्र त्रिभुवन और १५वी शताब्दी के यशकीर्ति भट्टारक को दिया गया है, क्योकि इन दोनो ने इसे पूर्ण किया है। जैन ग्रथो की यह परपरा भी रही है कि उसे आरभ एक कवि करता है और शेष अश दूसरो के द्वारा पूर्ण किया जाता है। स्वयभू ने जिनसेन और वैदिक परपरा के कथानको का अनुसरण किया है।

यह स्मरण रहे कि चद वरदाई ने भी अपने पुत्र जल्हण से "पृथ्वीराज-रासो" को पूर्ण करने के लिये आदेश दिया था। इसी प्रकार भावार्थ रामायण के मराठी लेखक सत एकनाथ की कृति का उत्तरकाण्ड और युद्ध काण्ड का कुछ अश उनके शिष्य गावबा ने पूर्ण किया था। इस प्रकार जैनो मे भी यह भारतीय परंपरा मिलती है।

रिठ्ठणेमिचरिऊ के प्रथम यादव काण्ड मे श्रीकृष्ण चरित्र का विशद वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण जन्म, बाललीला, श्री कृष्ण के विभिन्न विवाह, प्रद्युम्म कुमार का जन्म नेमिजन्म, शाम्ब आदि की कथाए आदि विभिन्न कृष्ण चरित्र के प्रसगो का इस काण्ड मे पर्याप्त महत्व के साथ चित्रण हुआ है।

सधि ४ (कडवक १२) मे कृष्ण जन्म का प्रसग स्वयभू द्वारा चित्रित है। स्वयभू की प्रतिभा काव्यात्मक परिस्थिति को आकने मे विशेष जागरूक है। उदाहरण के लिए उनके कालियमर्दन वाले प्रसग मे से कल्पना से परिपूर्ण वर्णन वैशिष्ट्य से युक्त है, जो छ० १४-२ मे विवेचित किया गया है।

ऐसे पराकाष्ठा युक्त बिंबों में कवि स्वयभू की कल्पनाशक्ति व प्रतिभा के दर्शन हमे उपलब्ध होते हैं।

पूतना के विषलिप्त स्तन को दो हाथो से पकड कर अपने मुह से लगाते हुए बालकृष्ण का रूप देखिए।[3]

सो थणु दुद्धधार धवलु हरिउहयकरतरेमाइयउ।
पहिलारउ असुराहयणे ण, पचजण्णु महिलाइयउ॥
(स्वयंभू-छ० ५-४ घत्ता)

पूतना का दुग्धधारा से युक्त धवलस्तन हरि के दोनो करो मे ऐसा भाता था जैसा की असुरसहार के लिए पहले पहल मुँह से लगाया हुआ पाचजन्य शख। साथ ही काव्यत्व की दृष्टि से कवि ने सूक्तियो और कहावतो का भी प्रयोग किया है।

ज जे हुउ दिण्णउ आसि त तेहउ समावडइ।
किं वयइए को दूव धणणे सालिकणिसु फले णिव्वडइ॥
(स्व० छ० ६-१४ घत्ता)

जैसा देते हो वैसा पाते हो। क्या कोदो बोने से कभी धान निपज सकता है ?

(२) महापुराण या तिसट्ठीमहापुरुषगुणालंकार—कवि पुष्पदन्त

यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। जैन परपरा मे मान्य ६३ शलाका पुरुषो का चरित्र इस महाकाव्य का प्रतिपाद्य रहा है। ८१ से ९२ तक की सधियो मे हरिवशपुराण की कथा इसमें पद्य बद्ध मिलती है। डा हरिवश कोछड के मतानुसार इस महाकाव्य की रचना ९४७ से ९६४ के मध्य मे हुई है।

तिसठ्ठि महापुरुषगुणालकार महाकाव्य को महापुराण के नाम से भी जाना जाता है। महापुराण की प्रचलित पद्धति के अनुसार यह रचना भी दो खण्डो में विभक्त है—१ आदिपुराण और २ उत्तरपुराण। आदि पुराण मे प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का चरित्र अकित है और उत्तर

३ भारतीय भाषाओ मे कृष्णकाव्य, प्रथम खण्ड—स० डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६२,

पुराण में शेष २३ तीर्थंकरो का। इन तीर्थंकरो के समकालीन महापुरुषो के जीवन का वर्णन भी यथास्थान कर दिया गया है। भगवान अरिष्टनेमि के प्रसंग के साथ-साथ श्रीकृष्ण का चरित्र भी प्रस्तुत हुआ है।

इस कृति की ८१ से ९२ तक की सधिया हरिवश के कथानक को व्यापती है। इनमें से सधि ८५ मे वासुदेव जन्म, ८५ मे नारायण की बाल क्रीडा और ८६ मे कंस और चाणूर के सहार का विषय है। ८५ वी सधि के ९-१०-११ कडवको में पूतना, अश्व, गर्दभ और यमलार्जुन के उपद्रवो का विवेचन है। सधि ८४ के १६ कडवको मे अष्टमात्रिक और पञ्चमात्रिक लघु छदो का प्रयोग सफलता के साथ किया गया है। जिसमें लय और ध्वनि शक्ति निर्माण करने की विशेषता विद्यमान है। १६ कडवको में वर्षा वर्णन है। ८५-१२ मे अरिष्टासुर, ८५-१९ मे गोप वेष वर्णन और ८८-५ से १५ तक कृष्ण जरासध युद्ध एव ८६-८ कडवको मे कंस-कृष्ण युद्ध का विवेचन है। इनमे से कुछ चुने हुए उदाहरण यहा द्रष्टव्य हैं।

नवजात कृष्ण को ले जाते हुए वासुदेव कालिंदी दर्शन का प्रसंग[1]

ता कालिंदि तेहिं अवलोइय मथरवारिगामिणी।
ण सरिरपु थरिवि थिय महियलि घणतमजोणि जामिणी।।
णारायणातरणुपहपति विव अजणगिरिवारिदकती इव।
महिमयणाहिरइयरेहा इव बहुतरग जरत्थदेहा इव।
महिहरदतिदाणरेहा इव कसरायजीवियमेरा इव।
वसुहणिलीणमेहमाला इव साम समुत्ताहल बाला इव
ण सेवालवाल दक्खालइ पेणुप्परियणु ण तहिं धोलइ।
गेस्यस्तु तोउ स्तबरु ण परिहइ चुयकुसुमहिं कब्बुरु,
किणरिथणसिहरइ ण दावइ विब्भमेहिं ण संसउ पावइ।
फणिमणिकिरणहि ण उज्जोयइ कमलच्छहि ण कणहु पलो
भिसिणिपत्तथालेहि सुणिम्मल उच्चाइय ण जलकणतदुल
खलखलति ण मगलु घोसइ ण माहवहु पक्खु सा पोसइ।

भारतीय भाषाओ मे कृष्णकाव्य, प्र० खण्ड—डा० भगीरथ मिश्र, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल, सन १९७९, पृ० १६४—पुष्पदन्तमहापुराण।

णउ कासु वि सामण्णहु अण्णहु अवसें तूसइ जवण सवण्णहु ।
विहि भाइहिं थक्कउ तीरिणि जलु ण धरणारि विहृन्नउ कज्जलु ।
दरिसिउ ताइ तलु किं जाणहु णाहहुत्ती ।
पेक्खिवि महुमहणु मयणे ण सरि वि विगुत्ती ॥

(महापुराण, ८५-२)

तब मथरगति से बहती हुई कालिंदी उनको दृष्टिगोचर हुई ।
मानो धरातल पर अवतीर्ण सरितारूपधारिणी तिमिरघन यामिनी ।
मानो कृष्ण की देहप्रभा की धारा ।
मानो अजनगिरि की आभा ।
मानो धरातल पर खीची हुई कस्तूरी रेखा ।
मानो गिरिरूपी गजेंद्र की मदरेखा ।
मानो कंसराज की आयु समाप्ति-रेखा ।
मानो धरातल पर अवस्थित मेघमाला ।
वृद्धा की तरंगबहुल ।
बाला सी श्यामा और मुक्तफलवती ।
वह शैवालबाल प्रदर्शित कर रही है ।
फेनका उत्तरीय फहरा रही है ।
गेरुआ जलका, च्युत कुसुमो से कर्बुरित रक्ताबर पहने हुई है ।
किन्नरीरूपी स्तनाग्र दिखला रही है ।
विभ्रमो से सशयित कर रही है ।
सर्पमणि की किरणो से उद्योत कर रही है ।
कमलनयन से कृष्ण को मानो निहार रही है ।

वह कमल पत्र के थाल में जल-कण मे अक्षत उछाल रही है । (कल-कल शब्द करती मगल गा रही है ।) मानो कृष्ण के पक्ष की पुष्टि कर रही है ।

यमुना सचमुच सवर्ण पर प्रसन्न होती है, जैसो तैसो पर नही ।
फलरूप उसका जल दो विभागो मे बंट गया ।

मानो धरा रूपी नारी ने काजर लगाया ।

क्या हम समझे कि अपने प्रियतम पर अनुरक्त हो कर उसने अपना निम्नप्रदेश प्रकट किया ?

मधुमथन को देखकर नदी यमुना भी मदनव्याकुल हो उठी ।

वर्षावर्णन-गोवर्धनोद्धरण[5]

काले जते छज्जइ पत्तउ आसाढागमि वासारत्तउ ।

घत्ता हरियउ पीयलउ दीसइ जंणेण त सुरधणु ।

उवरि पओहरह णं णहलच्छिहि उप्परियणु ॥

दुवई दिट्ठउ इदचाउ पुणु पुणु अइ पथिपहियियभयहो ।

धणवारणपवेसि ण मगलतोरणु णहंणिकेयहो ॥

जलु गलइ	झलझलइ ।	दरि भरइ	सरि सरइ ।
तडयउइ	तडि पडइ ।	गिरि फुडइ	सिहि णडइ ।
मरु चलइ	तरु धुलइ ।	जलु थलु वि	गोउलु वि ।
णिरु रसिउ	भयतसिउ ।	थरहरइ	किर मरइ ।
जा ताव	थिरभाव ।	धीरेण	वीरेण ।
सरलच्छि	जयलच्छि ।	तण्हेण	कण्हेण ।
सुरथुइण	भुयजुइण ।	वित्थरिउ	उद्धरिउ ।
महिहरउ	दिहियरउ ।	तमजडिउ	पायडिउ ।
महिविवरु	फणिणियरु ।	फुप्फुवइ	विसु मुयइ ।
परिथुलइ	चलवलइ ।	तरुणाइ	हरिणाइ ।
तठ्ठाइ	णट्ठाइ ।	कायरइ	वणयरइ ।
पडियाइ	रडियाइ ।	घित्ताइ	चत्ताइ ।
हिंसाल	चडाल ।	चडाइ	कडाइ ।
तावसइ	परवसइ ।	दरियाइ	जरियाइ ।

---

५ भारतीय भाषाओं मे कृष्णकाव्य, प्र० खंड—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६७, महापुराण ८६-१५-१० से १६-१ से ३२

घत्ता गोवद्धणयरेण गोयोभिणिभारु व जोइउ ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइउ ।।[6]

(महापुराण, ८६-१५-१० से १२, १६, १ से ३२)

"कुछ समय के पश्चात् आषाढ मास मे बरसात आ कर शोभा दे रही थी। लोग हरित और पीत वर्ण का सुरधनु देखने लगे, मानो वह नभ-लक्ष्मी के पयोधर पर रखा हुआ उत्तरीय हो। पथिको का हृदय-विदारक इस इद्रचाप को वे बार-बार देखने लगे। मानो वह घनहस्ती के प्रवेश के अवसर पर गगनगृह पर लगाया गया मगलतोरण हो। जल झलझल नाद से गिर रहा है। सरिता बहती हुई खोह को भर देती है। तडतडा कर तडित पडती है जिससे पहाड फूटता है, मयूर नाच रहा है, तरुओ को घुमाता पवन चल रहा है। गोकुल के सभी जलस्थल भयग्रस्त होकर थरथराते हुए चीखने लगे हैं। उनको मरणभय से ग्रस्त देखकर सरलाक्षा जयलक्ष्मी के लिये सतृष्ण धीरवीर कृष्ण ने सुरप्रशस्त भुजयुगल से विशाल गोवर्धन पर्वत उठाया और लोगो को धृति बधाई। गोवर्धन को उखाड देने से अधकार से भरा हुआ पाताल विवर प्रकट हुआ। जिसमे फणीद्रो के समूह फुकारते थे, विष उगलते थे, सलसलाते और घुमराते थे। त्रस्त होकर हिरन के शिशु भागने लगे। कातर वनचर गिरकर चिल्लाने लगे। हिंसक चाण्डालो ने चड शर फेंक दिये। परवशतावश लोग भय से भयभीत हो उठे। गोओ का वर्धन करने वाले गोवर्धन ने राज्यलक्ष्मी का भार जैसा गिरि गोवर्धन उठाया।"

महाकवि पुष्पदत को अपभ्रंश का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है। उनकी रचनाओ मे जो ओज, प्रवाह, रस और सौन्दर्य है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है और उनका शब्द भण्डार विशाल है। शब्दालंकार तथा अर्थालकार दोनो से उनकी कविता समृद्ध है।[7]

पुष्पदत की अन्य प्रमुख रचनाए हैं—
णायकुमार चरिउ—नागकुमारचरित्र
जसहर चरिउ—यशोधर चरित्र
कोष—यह देशी भाषा का कोषग्रथ है।

---

६ भारतीय भाषाओ मे कृष्णकाव्य, प्र० खड—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६८
महापुराण १६-१ से ३२।

७ जैन साहित्य और इतिहास नाथूराम प्रेमी, पृ० १२५

(३) नेमिनाहचरिउ : हरिभद्र

हरिभद्रसूरि द्वारा रचित "नेमिनाहचरिउ" रड्डा छद मे रचित तीन हजार छदो का महाकाव्य है। इसके २२-२७ वे छद से करीब-करीब १०० छदों से आगे तक कृष्ण जन्म से कंस-वध तक की कथा आयी है। इसका रचना काल सन् ११६० है। हरिभद्र पुष्पदंत की परपरा मे आने वाला कवि है, विशेषत कृष्ण की हत्या के लिए कस द्वारा भेजे गए वृषभ, खर, तुरग, और मेष के चिन्ह दृढ रेखाओ से रेखाकित है। मल्लयुद्ध के प्रसग मे कवि की कवित्वशक्ति का परिचय मिल जाता है। यह कृति अप्रकाशित है। इसलिए इसमे से हमने उदाहरण नही लिए हैं।[8]

(४) हरिवंश पुराण : कवि धवल

जैन कृष्ण काव्य की दृष्टि से धवलकृत हरिवशपुराण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।[9] जैन परपरानुसार ही श्रीकृष्ण-कथा का वर्णन किया गया है और आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण के अनुसरण मे कथानक को रूपायित किया गया है। १२२ सधियो का यह एक पर्याप्त विशाल ग्रथ है। इस रचना का काल ११ वी शताब्दी के बाद का माना जाता है, क्यो कि अभी तक इसका रचना समय निश्चित नही हो पाया है। इस ग्रथ की भाषा में हम पुरानी हिंदी के सकेत पाते हैं। धवलकृत हरिवश की ५३, ५४, ५५ सधियो मे कृष्ण जन्म से कस वध तक की कथा आयी है। कथा के निरूपण और वर्णनो मे रूढि का अनुसरण होते हुए भी कवि ने मौलिकता प्रकट की है। यहा पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जैसे—

५३-१७ में नैमित्तिक बालकृष्ण के गुण-लक्षण वर्णित हैं[10]—

कासु विखवरी उप्परी नेत्ती, कासु वि लोई लक्खारत्ती।
कासु वि सिरॅलिज थराली कासु विचुण्णी फुल्लडियाली।

---

८. भारतीय भाषाओ मे कृष्णकाव्य खड १, सपादक डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६६

९ धवल के हरिवश की हस्तलिखित प्रति जयपुर के दिगंबर अतिशयक्षत्र श्री० महावीर जी शोध सस्थान के सग्रह मे विद्यमान है। प्रति के पाठ मे कई अशुद्धियां हैं।

१० शोधपत्रिका, वर्ष २६, अक २, १६७८, स० डा० देवीलाल पालीवाल व डा० देव कोठारी, साहित्य सस्थान, उदयपुर, पृ० ३३

कासु वि तुगु मउड सुविसुद्ठउ, ओढणु वाडुकहमि मंजिद्ठउ ।

सव्वहं सीर्खेरत्तेबद्धा, रीरीं घडियकडाकडिमुद्धा ॥

अर्थात् किसी के कंधे पर नेत्ती (नेत्रवस्त्र की साडी) थी तो किसी की "लोई" (कमली) लाख जैसी रक्तवर्ण थी, किसी के सिर पर धारदार लिंजे (नीज) थी तो किसी की चुन्नी फूलवाली थी। किसी का मोर ऊचा और दर्शनीय था तो किसी की ओढनी और बोड मजीठी रग का था। सभी के सिर पर लाल (वस्त्रखड) बधा हुआ था और वे पीतल के कडे, कडिया और मुद्रिका पहने हुयी थी।

(५) पज्जुण्ण चरिउ (प्रद्युम्न चरित्र)

यह एक खड काव्य है जिसमे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का चरित वर्णित है। विकम की १३वी शताब्दी मे इसकी रचना का अनुमान लगाया जाता है। पज्जुण्णचरिउ के रचनाकार का नाम "सिंह" मिलता है, किंतु कुछ विद्वानो के मतानुसार यह नाम "सिद्ध" है। इस खडकाव्य मे १५ सधिया हैं। आरम्भ की आंठ सधियो मे कवि का नाम सिद्ध और शेष में सिंह व्यवहृत हुआ है। यह सभावना भी व्यक्त की जाती है कि कदाचित् सिंह नामक कवि ने बाद मे कभी इस रचना का उद्धार किया हो। जो कुछ भी रहा हो, कवि नाम के विवाद के परे पज्जुण्णचरिउ एक सुदर खडकाव्य ठहरता है इतनी बात सत्य है।

(६) णेमिणायचरिउ लखम देव

यह लक्ष्मणदेव कृत नेमिनाथचरित भी एक खडकाव्य है। २२ वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित्र इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है। इसमे प्रासगिक रूप मे श्रीकृष्ण कथा के कतिपय प्रमुख अश स्वत ही सम्मिलित हो गए हैं। अत साक्ष्य के अभाव मे ग्रथ के किसी निश्चित रचनाकाल का पता नही चलता। इस खडकाव्य की एक ऐसी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है जिसका लेखन वि० स० १५१० मे हुआ है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रचना १५ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की हो सकती है। इस प्रबध रचना (खडकाव्य) मे ४ सधियाँ और ८३ कडवक हैं।

(७) णेमिणाहचरिउ (रिट्ठणेमिचरिउ अथवा हरिवंश पुराण)[11]

रइधु की यह अपभ्रश भाषा मे रचित रचना है। इसके कवि अपने समय के प्रकाण्ड पडित और प्रभावशाली कवि थे। डा० राजाराम जैन ने अपने शोधप्रवंध में इनके द्वारा रचित अन्य अनेक कृतियों का उल्लेख किया है। कवि का अपर नाम सिंहसेन था। इनके पिता का नाम साहू हरिसिंह, माता का नाम विजयश्री, पत्नी का नाम सावित्रि और पुत्र का नाम उदयराज था। इनका समय १४ वी या १६ वी शताब्दी विक्रम का है। इनका अधिकाश जीवन ग्वालियर के आसपास के क्षेत्र मे व्यतीत हुआ। काष्ठासघ माथुर गच्छ पुष्करणीय शाखा जो दिगवर जैन आचार्यों का एक संघ था, इससे वे संवद्ध थे। इन्होने अनेक जिन मूर्तियो की प्रतिष्ठापना की थी इसलिए इनको प्रतिष्ठाचार्य भी कहा जाता है।

रइधू लिखित णेमिणाहचरिउ की एक हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धात भवन, आरा में पायी गयी है। इसकी प्रतिलिपि सवत विक्रम १९८७ की है, यह परपरागत पौराणिक शैली का जैन काव्य है और इसका आधार जिनसेन कृत सस्कृत हविरश पुराण है। कवि ने १४ सधियो और ३०२ कडवकों में इसका वर्णन किया है। इसमे हरिवश का आरंभ यादवो की उत्पत्ति, वसुदेव का चरित, कृष्णचरित, नेमिनाथ चरित, प्रद्युम्न चरित और पाण्डव चरित्र का वर्णन है।

काव्यतत्त्व की दृष्टि से यह सुन्दर तथा सरस कृति है। शृंगार, वीर, रौद्र और शातरसो का इसमे उत्तम रूप से वर्णन किया गया है। अलकारो की दृष्टि से भी उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, भ्रातिमान, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिग, व्यतिरेक, सदेह आदि के उदाहरण कृति में उपलब्ध हैं। कवि ने परिनिष्ठित अपभ्रश भाषा मे यह रचना की है। इसका प्रस्तुति कृति मे कोई उदाहरण नही दिया गया है। अधिक जानकारी के लिये डा०हरिवश कोछड की पुस्तक अपभ्रश साहित्य दृष्टव्य है।[12]

(८) पाण्डवपुराण व हरिवंशपुराण : यश.कीर्ति

यश कीर्ति १५ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। जैन श्रीकृष्ण

---

११ रइधु साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, ले० डा० राजाराम जैन पृ० १८ से २०७

१२ अपभ्रश साहित्य · डा० हरिवश कोछड

साहित्य की परपरामे उनकी दो रचनाए महत्त्व के साथ गिनी जाती हैं—पाण्डव पुराण एव हरिवश पुराण।

पाण्डव पुराण का रचना कार्य वि०स० १४९७ मे (ई० सन् १४४०) कार्तिक शुक्लाअष्टमी बुधवार को सपन्न हुआ। इसमे ३४ सधिया आई हैं। हरिवश पुराण की रचना वि०स० १५०० में समाप्त हुई याने (ई० सन् १४४३)। इस रचना मे १३ सधिया और २६७ कडवक हैं। काव्यात्मकता की दृष्टि से हरिवश पुराण एक उत्तम रचना मानी जाती है। डा० हरिवंश कोछड भी इस मान्यता का अनुमोदन करते है।[13] हरिवश के पुराण-पुरुष अर्हंत अरिष्टनेमि तथा वासुदेव कृष्ण का परंपरागत चरित वर्णन हुआ है। इस ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति दिगबर जैन मदिर बडा तेरापथियान का जयपुर के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है। हरिवश पुराण की रचना कवि ने योगिनीपुर मे अग्रवाल वंशीय गर्ग गोत्रोत्पन्न दिउठा साहू की प्रेरणा से की थो।[14]

प्रस्तुत काव्य की रचना शैली इतिवृत्तात्मक है।

(९) हरिवंश पुराण : श्रुतिकीर्ति

श्रुतिकीर्ति १६ वी शताब्दी (विक्रम) के कवि माने जाते हैं। इनकी कृति हरिवश पुराण को डा० कोछड द्वारा महाकाव्य के रूप मे मान्यता दी गई है।[15] आमेर (जयपुर) के शास्त्र भण्डार मे इस ग्रथ की प्रति उपलब्ध है। हरिवश पुराण मे ४४ सधिया हैं। श्रुतिकीर्ति की एक अन्य रचना "परमेष्ठिप्रकाश" भी अभी हाल ही मे प्रकाश मे आयी है।

अपभ्रश में रचित साहित्य के विपुल भण्डार मे जैन साहित्य का तो महत्त्वपूर्ण स्थान है ही किंतु जो ज्ञात अश है वह कृष्ण कथा से सबद्ध है। इधर अनेक नव-नवीन अपभ्रश रचनाओ की जो खोज होती चली आ रही है, इससे आशा बनती है कि भविष्य मे अपभ्रश जैन कृष्ण साहित्य की सूची मे और भी अभिवृद्धि होगी।

---

१३ अपभ्रश साहित्य डा० हरिवश कोछड, पृ० १२०-१२२

१४ वही, पृ० १२७

१५. वही, पृ० १२९

अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण काव्य की झलक और निरूपण विशेष रूप से बाल-चरित्र को लेकर ही हुआ है। इसकी बलिष्ठ परंपरा जैन कृष्णकाव्य कृतिकारो के द्वारा निर्मित हुयी है। वर्णनशैली और भाव-लेखन की गुणवत्ता का स्तर ऊचा है। जैन कृष्ण काव्य के कवियो मे पुष्पदत और स्वयभू नि सदेह उस गौरवयुक्त स्थान के अधिकारी हैं जिस स्थान के अधिकारी ब्रजभाषा के महान कृष्णकवि सूरदास हैं। सूरदास को यह स्थान दिलाने मे जैन अपभ्रंश कृष्ण साहित्य का निर्माण करने वाले कवियो को इसका श्रेय देना होगा। सस्कृत-प्राकृत का कृष्णकाव्य भारतीय साहित्य मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है तो भाषा साहित्य के कृष्णकाव्य के बीच की एक शृखला के रूप मे अपभ्रंश का जैन कृष्ण काव्य महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। इसका अपना निजी वैशिष्टय है और महत्ता भी।

जैन कृष्ण कथा नियम से ही एकाधिक कथाओ के साथ संलग्न हुआ करती थी। अल्पाधिक मात्रा मे, ३, ४ विभिन्न कथाओ का गुफन हुआ करता था। एक कथा कृष्ण के पिता वसुदेव के परिभ्रमण की है तो दूसरी २२ वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चरित्र की और तीसरी कथा पाण्डवों के चरित्र की। इनके अतिरिक्त मुख्य मुख्य पात्रो के भवातरो की कथाए भी दी गयी हैं। वसुदेव हिण्डी के नाम से जैन परपरा की कथा मे वसुदेव ने एक सौ वर्ष तक विविध देशो का परिभ्रमण किया और अनेकानेक मानव कन्याओ और विद्याधर कन्याओ से भी विवाह किया। कृष्णकथा के प्रारभ मे वसुदेव का वश वर्णन और उसका चित्रण आया है। यही पर वसुदेव के परिभ्रमण की अनेक कथाओ का वर्णन भी आया है।

अरिष्टनेमि कृष्ण (वासुदेव) के चचेरे भाई थे। फलत अनेक बार कृष्ण चरित्र नेमिचरित्र के साथ आया है। इसके अलावा पाण्डव और कौरवो का कृष्ण के साथ निकट सबध होने से कृष्ण के उत्तर चरित्र मे महाभारत की कथा भी जुड जाती है। इस कृति का नाम जैन महाभारत भी कही कही प्रचलित है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण चरित्र विषयक जिस अश को प्रधानता दी गयी है उसके अनुसार उसके नाम को अरिष्टनेमिचरित्र, नेमिपुराण, हरिवश पुराण, पाडव पुराण और जैन महाभारत की सज्ञा भी दी गई है। वैसे यह कोई नियम नही है, न कोई एकवाक्यता, क्योकि कही-कही विशिष्ट अश को समान प्राधान्य देनेवाली कृतियो के नाम भी भिन्न-भिन्न रूप से मिलते हैं। जैन पुराण कथाओ का स्वरूप एक ओर अपभ्रंश मे मिलता है, तो दूसरी ओर सस्कृत प्राकृत मे मिलता है। यहा

यह विवेचन इसलिए दिया गया है कि अपभ्रंश कृष्णकाव्य का अध्ययन प्रस्तुत करने के पहले जैन परपरा से मान्य कृष्ण कथा की रूपरेखा जानी व समझी जा सके। इस रूपरेखा के दो आधार हैं—

प्रथम : यह कथा दिगम्बराचार्य जिनसेन के (सन् ७८४) संस्कृत हरिवंश पुराण के ३३, ३४, ३५, ३६, ४०, ४१ सर्गों पर आधारित है।

द्वितीय · श्वेतावराचार्य हेमचद्र के सन् ११५६ के करीव रचित त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र का ८ वा पर्व है जिसमें सविस्तार श्रीकृष्ण चरित्र है। जैन कृष्ण चरित्र के स्पष्ट रूप से दो भाग किये जा सकते हैं। प्रथम मे कृष्ण यादवो के द्वारावती प्रवेश तक का अंश आता है और शेष कृष्ण चरित्र का अश दूसरे भाग मे समाविष्ट हो जाता है।

कृष्ण जितने पूर्व भाग मे केंद्रवर्ती हैं उतने उत्तर भाग में नही हैं।

इस अध्याय मे मैंने अपने अध्ययन मे कुछ कवियों की कृतियो से उदाहरण देकर अपने कथन को पुष्ट किया है और अन्य कवियों की कृतियो का और उनका निरूपण इसलिए कर दिया है, क्योकि ये कृतियां अप्रकाशित और हस्तलिखित रूप मे हैं। इनका मिलना इसलिए भी कठिन है; क्योकि ये भिन्न-भिन्न स्थानीय जैन सग्रहालयों मे हैं।

इसके वाद के अध्यायो मे अब हिंदी जैन कृष्ण साहित्य का विवेचन —अनुशीलन प्रस्तुत किया जायगा। इन पाँच अध्यायो के वाद अब तक किये गये अध्ययन के आधार पर जैन कृष्ण कथा को षष्ठ अध्याय मे विवेचित किया जाएगा। इसके सदर्भ भी उसके साथ मे दे दिये हैं।

६

प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा अन्य (हिंदी) पर आधारित जैन श्रीकृष्ण कथा का विवेचन

अब तक प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत मे जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन किया गया। यहाँ पर इन सब पर आधारित जैन साहित्य की श्रीकृष्ण कथा की संक्षिप्त विवेचन करने का उद्योग किया गया है।

वासुदेव श्रीकृष्ण

जैन एवं वैदिक दोनों ही परपराओ मे श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा गया है, किंतु दोनो परंपराओ मे इस शब्द के प्रयोग मे उल्लेखनीय अंतर है। वैदिक परपरा मे तो वसुदेव के पुत्र होने के नाते "वासुदेव" श्रीकृष्ण का नाम अमर हो गया है, किंतु जैन परंपरा मे वासुदेव किसी व्यक्ति विशेष का नाम न होकर विशिष्ट गुणयुक्त महापुरुषो की एक श्रेणी में वासुदेव भी एक हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में ऐसे ९ वासुदेव होते रहे हैं। श्रीकृष्ण वर्तमान अवसर्पिणी काल के ऐसे ९ वासुदेवों में से एक हैं। ऐसे प्रत्येक आरक में इस प्रकार ६३ महापुरुषों का आविर्भाव होता है। वे "शलाकापुरुष" कहलाते हैं। इनमें से २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव होते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव एव अंतिम—२४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। २२ वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समकालीन वासुदेव ही श्रीकृष्ण थे। ये अपनी वासुदेव परपरा के ९ वें, अर्थात् अंतिम वासुदेव थे।

कंस परिचय

वसुदेव ने अनेक विवाह किये थे। देवकी के साथ उनका अंतिम विवाह था। वसुदेव-देवकी ही श्रीकृष्ण के जनक-जननी थे। वसुदेव-देवकी

के परिणय मे कंस की अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका रही। त्रिषष्टिशलाका[1] आदि ग्रथो में वसुदेव के साथ कंस की घनिष्टता एव अनुराग वर्णित हुआ है।

कस का यह नाम क्यों रहा ? इसके पीछे भी एक कथा है। भोज वृष्णी के आत्मज उग्रसेन मथुराधिप थे और धारिणी उनकी महाराणी थी। कस इसी राज-दम्पति का पुत्र था। कस जब गर्भ में था, रानी धारिणी को एक अद्भुत दोहद (इच्छा) होने लगी कि वह अपने स्वामी उग्रसेन का मास भक्षण करे।[2] इस अमंगल कामना की पूर्ति एक विकट समस्या बन गयी। एक अधेरे कमरे में राजा को ले जाया गया और एक खरगोश का वध कर दिया गया। योजनानुसार उग्रसेन जोर-जोर से कराहते रहे जिसे धारिणी ने सुना[3] और अपने पति का मास समझ कर उसने खरगोश के मांस का भक्षण किया। कालातर मे वह सोचने लगी कि जो सतान गर्भावस्था में ही पिता के लिये ऐसा कष्टकारी है तो वह जन्म लेकर और बडा हो जाने पर पिता के लिये कितना घातक सिद्ध हो सकता है ? भावी अनिष्ट की कल्पना-मात्र से वह आकुल रहने लगी और पुत्र उत्पन्न होने पर उसने उसे कास्यपेटिका मे बद कर यमुना मे प्रवाहित कर दिया। माता और पिता के नाम अकित कर दो मुद्रिकाए उस पेटिका मे रख दी। एक धनिक सुभद्र के हाथ यह पेटिका लगी और वह स्नेहपूर्वक वालक का लालन-पालन करने लगा। कास्य पेटिका से प्राप्त होने के कारण वालक का नाम रखा गया—कस।

वयस्क होने पर कस वसुदेव के आश्रय मे अनुचर के रूप में रहने लगा, उन्होंने उसे युद्धादि समस्त कलाओ की शिक्षा दी।[4] तदनतर एक घटनाक्रम ने उसे मथुरा नरेश वना दिया। इस काल का प्रतिवासुदेव जरासध राजगृही का अधिपति था। यह अति बलवान और पराक्रमी था और अनेक नृपति उनके वर्चस्वाधीन थे। जरासध ने वसुदेव के भ्राता

---

१. वर्तमान अवसर्पिणी काल के ५४ महापुरुषो के साथ ९ प्रतिवासुदेवो को मिलाकर ६३ विशिष्ट व्यक्तियो का चित्रण इस ग्रथ मे किया गया है।

२ त्रिषष्टि शलाका ९।२।६

३ त्रिषष्टि ८।२।६२

४. त्रिषष्टि ८।२।७०

सोरियपुर-नरेश समुद्रविजय को आदेश दिया कि वह विद्रोही सिंह राजा को पकडकर उसके समक्ष उपस्थित करे। उसने यह घोषणा भी की कि सिंह राजा को पकडने वाले के साथ वह अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह भी कर देगा और उसे पुरस्कार मे राज्य भी दिया जायगा।[5] कुमार वसुदेव की इच्छा स्वीकारते हुए राजा समुद्रविजय ने उन्हे इस अभियान पर जाने की अनुमति तो प्रदान कर ही दी, किंतु साथ ही उन्हे चुपके से इस रहस्य से अवगत भी करा दिया कि जीवयशा कनिष्ठ लक्षणो की है। वह अपने पिता तथा पुत्र—दोनो के लिये अमगलकारिणी बनेगी, दोनो कुलो के लिए कलक का कारण बनेगी।[6] भ्राता ने निर्देश दिया कि जीवयशा से वसुदेव स्वय विवाह न कर कस के साथ उसका विवाह करवा दे।

कस के वश की खोज की जाने लगी और मुद्रिकाओ के द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि वह मथुरा का राजकुमार है। परिणामत वह जरासंध की घोषणा का लाभ उठाने के योग्य भी समझा जाने लगा। अपने अभियान मे सफल होकर वसुदेव जब जरासध के समक्ष पहुचे तो जरासध ने पूछा कि सिह राजा को बदी बनाने वाला वीर कौन है ?[7] अपनी योजनानुसार वसुदेव ने कस का परिचय प्रस्तुत कर दिया। जीवयशा के साथ कस का विवाह सपन्न हो गया। वसुदेव सुरक्षित हो गये और कंस उनका कृतज्ञ हो गया। अपने जन्म और उसके पश्चात् के समस्त वृत्तात से अवगत होकर कस अपने पिता उग्रसेन के प्रति रोष से भर गया और जरासध की सेना सहित वह मथुरा आया।[8] उसने पिता उग्रसेन को बदी बना लिया और स्वय मथुरा का राजा बन बैठा।[9] पिता की यह दुर्गति देख कर कंस के अनुज अतिमुक्त के मन मे विरक्ति उत्पन्न हो गयी और उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।[10]

वसुदेव-देवकी परिणय

कस अपनी गौरवपूर्ण स्थिति के लिए वसुदेव का आभारी था।

---

५. त्रिषष्टि ८।२।८२-८४

६ विशिष्ट निमित्तज्ञ क्रोष्टुकी से यह ज्ञात हुआ था।

७. त्रिषष्टि ८।४।६५-६६ ८ त्रिषष्टि ८।२।८५-६

९ त्रिषष्टि ८।२।९५-९६ १०. त्रिषष्टि ८।२।१०८

उसने अत्यन्त आदर भाव के साथ वसुदेव को अपने यहाँ आमंत्रित किया और उन्होंने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया।[11] कस के चाचा देवक मृतकावती-नरेश थे जिनकी राजकुमारी देवकी थी। अनुरागानुकुलता सहित कस ने वसुदेव से रूप-गुणशीला नृपकन्या देवकी के साथ विवाह का अनुरोध किया। इस सानुनय आग्रह को वसुदेव भी अस्वीकार नही कर सके। प्रसन्न मन कस ने वसुदेव के साथ मृतकावती के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे नारद ने वसुदेव को देवकी से विवाहार्थ प्रेरित करते हुए कहा कि वह तुम्हारी समस्त पत्नियो से श्रेष्ठ है। सर्वत्रविहारी नारद जी ने वसुदेव से पूर्व मृतकावती पहुच कर नृपकन्या के समक्ष वसुदेव के गुण, रूप, शौर्य, शक्ति, शील आदि का ऐसा वर्णन किया कि देवकी मुग्ध हो गयी। उसने वसुदेव को पति-रूप मे वरण करने का मन ही मन सकल्प कर लिया।

राजा देवक ने वसुदेव-कस का भव्य स्वागत किया। वह वडा प्रसन्न था, किन्तु सहसा विवाह प्रस्ताव सुनकर वह अस्तव्यस्त हो गया। ना या हाँ करते हुये भी वह तत्काल स्वीकृति नही दे पाया। पर, राजकुमारी का प्रवल झुकाव देखकर अन्तत उसे प्रस्ताव स्वीकार करना ही पडा। अत्यत भव्यता के साथ विवाह सपन्न भी हो गया। देवकी ने पाणिग्रहण के समय अतुल सपत्ति के साथ दस गोकुल के अधिपति नद को भी वसुदेव को समर्पित किया।[12]

अतिमुक्त मुनि द्वारा भावी सकेत

मथुरा आगमन पर कस ने वसुदेव-देवकी के सम्मान मे भव्य समारोह आयोजित किया।[13] कस-वधू जीवयशा ने महोत्सव मे अत्यधिक रुचि दिखायी। मदिरापान से वह उन्मत्त थी, तभी उसकी दृष्टि अतिमुक्त मुनि पर पड गयी जो पारणे के प्रयोजन से मथुरा के राजभवन मे पहुंचे थे। यहा जीवयशा के मर्यादाहीन व्यवहार को देख कर वे उलटे पाँव लौट पडे। जीवयशा ने उन्हें पुकार कर कहा—अरे देवर! तुम ठीक ही समय पर आये हो। अच्छा हो तुम मेरे साथ नृत्य करो, गान करो।[14] मुनि उपेक्षा करते रहे, किंतु अत्यन्त प्रताडित किये जाने पर उन्होने रोषपूर्वक अमगल

---

११ त्रिषष्टि ८।५।४३, १२ त्रिषष्टि ८।५।६९

१३ त्रिषष्टि ८।५।७० १४. त्रिषष्टि ८।५।७१

भवितव्य का संकेत किया और कहा—हे जीवयशा, जिस (देवकी) के निमित्त यह समारोह मनाया जा रहा है, उसी का सातवा गर्भ, तेरे पति और पिता का वध करेगा।[15] "उत्तर पुराण" के अनुसार यह प्रसंग अन्यथा रूप मे भी ग्रहण किया जाता है।[16]

गंभीर मुनि-वाणी से जीवयशा का नशा उतर गया और उसने मुनि का पीछा छोड दिया। मुनिवाणी सदा सत्य होती है—इस मान्यतावश जीवयशा भावी अनिष्ट से आतकित एव विचलित हो गयी और उसने कस को तत्काल इससे अवगत कराया। आत्मरक्षार्थ सतर्क कस अपने प्रति वसुदेव की प्रसन्नता एव विश्वस्तता का लाभ उठाना चाहा। उसने नाटकीय विनम्रता के साथ वसुदेव से निवेदन किया कि आपके मुझ पर बडे उपकार है। अब कृपापूर्वक एक वचन और दीजिये कि आप देवकी के सात गर्भ जन्मते ही मुझे दे दे।[17] "उत्तरपुराण" मे यह कथानक कुछ भिन्नता के साथ आया है।[18] मुनि की भविष्यवाणी से अनभिज्ञ और देवकी के साथ अपने परिणय प्रसग के कारण कस से प्रसन्न वसुदेव ने यह वचन दे दिया।[19] वैदिक परपरा में यह प्रसग अन्यथा रूप मे मान्य है। तथापि दोनो ही परपराओ मे यह साम्य अवश्य है कि कस ने इसके पश्चात् वसुदेव-देवकी को स्वतत्र नही रखा।

---

१५ त्रिषष्टि ८।५।७४

१६ उत्तरपुराणानुसार अतिमुक्त की तीन भविष्यवाणियां थीं। १ देवकी का पुत्र अवश्य ही तेरे पुत्र को मारेगा। २ तेरे पति को ही नही तेरे पिता को भी मारेगा। ३ देवकी का पुत्र समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का पालन करेगा।
उत्तरपुराण श्लोक ३७३-३७५

१७. त्रिषष्टि ८।५।७४ त्रिषष्टि ८।५।७७-८३

१८ उत्तरपुराण मे उल्लेख है कि किसी अन्य दिन अतिमुक्त मुनि आहारार्थ देवकी के घर गये और देवकी ने प्रश्न किया कि हम दोनो दीक्षा ग्रहण करेंगे या नही ? इस पर मुनि ने कहा कि तुम लोग इस प्रकार बहाने से क्यो पूछते हो। तुम्हारे ७ पुत्र होंगे। अतत सयम ग्रहण करके मुक्त हो जायेंगे। सातवा पुत्र अर्द्धचक्री होगा और पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करेगा

१९ त्रिषष्टि. ८।५।८४-८९

वैदिक परपरानुसार देवकी-वसुदेव मथुरा से विदा होकर घर जा रहे थे, स्वय कंस उनका रथ वाहक था। देवक ने ४०० हाथी, १५ हजार घोडे, १८ सौ रथ व २०० दासिया दहेज मे दी थी।[20] मार्ग मे कस को आकाशवाणी सुनायी दी कि जिसे तू रथ में बिठाकर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवा बालक तुझे मारेगा।[21] और वह तत्काल देवकी-वध करने को उद्धत हो उठा। उसने देवकी के केश पकड लिये।[22] इस पर वसुदेव ने कस को समझाया[23] कि देवकी का वध उचित नही है। इससे तो कोई भय तुम्हे है ही नही। इस के पुत्र से ही भय है, तो मैं इसके सभी पुत्र तुम्हे सौंप दूंगा।[24] इस प्रकार कस को आश्वस्त कर आसन्न अनर्थ को वसुदेव ने घटित न होने दिया।[25]

वासुदेव श्रीकृष्ण जन्म

कस ने अपनी मृत्यु के भय से देवकी-वसुदेव को कारागृह मे डाल रखा था। जहाँ देवकी ने ६ पुत्रो को जन्म दिया और वे सभी वचनानुसार कस को दे दिये गये। कस ऐसा मान रहा था कि ये देवकी के पुत्र हैं, अन्य-जन भी ऐसा ही मान रहे थे, किंतु यथार्थ इससे भिन्न था—

भद्दिलपुर मे नाग सेठ की पत्नी सुलसा को मृत शिशु उत्पन्न हुआ करते थे।[26] उसने हरिणगमेषी देव की उपासना की। वह प्रसन्न हो गया। सयोगवशात् देवकी और सुलसा को एक ही समय प्रसव होता था और देव सुलसा के मृत पुत्र को देवकी के पास और देवकी के जीवित पुत्र को सुलसा के पास रख देता था। प्रसन्नमना सुलसा इसे देव का आशीर्वाद मानती थी। शिशुओ का विनिमय ऐसी छद्म रीति से होता था कि देवकी, सुलसा आदि किसी को भी इसका बोध न हो पाता।

इस प्रकार देवकी के ६ पुत्र सुलसा के घर मे पोषित होने लगे। उधर तथाकथित देवकी पुत्रो (सुलसा के मृत पुत्रो) का कस अतिम सस्कार करा देता था। देवकी के अपने पुत्रो के नाम थे—१ अनीकयश, २

---

२० श्रीमद्भागवत - १०।१।३१-३२ २१ श्रीमद्भागवत · १०।१।३४

२२. वही १०।१।३५ २३ वही १०।१।३६

२४ वही १०।१।५४ २५ १०।१।५५

२६ त्रिषष्टि ८।५।८१

अनंतसेन, ३, अजितसेन, ४ निहतारि, ५ देवयश और ६ शत्रुसेन[27]। श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकी के सातवें पुत्र थे।[28] वे श्लाघनीय पुरुषों की श्रेणी में थे।[29] स्वर्ग से च्युत होकर मुनि गंगदत्त का जीव माता देवकी के गर्भ में स्थित हो गया और माता ने दिव्य स्वप्न देखे।[30] जो महापुरुषोद्भव के पूर्व संकेत थे। भाद्र-मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि में देवकी ने मेघनील कांतिवाले सुंदर शिशु श्रीकृष्ण को जन्म दिया।[31] श्रीकृष्ण के प्रभाव से उस समय प्रहरीजन निद्रामग्न हो गये।[32] देवकी ने पति वसुदेव से कहा कि कंस ने मेरे ६ पुत्रों को मार डाला है।[33] अब इस बालक की रक्षा करने गोकुल में नंद के घर छोड दें। वहीं यह बडा होगा।[34] वसुदेव के सामने कंस को दिये गये वचन के पालन की समस्या थी। देवकी ने वसुदेव को प्रबोध देते हुए कहा कि छलपूर्वक लिया गया अनीति आधारित वचन-वचन ही नही रह जाता है। अनीतिकारी, अहितकारी वचन का पालन न करना अनीति नहीं है। वसुदेव सुदृढ हो गये और श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये सन्नद्ध भी। नंद देवकी के साथ दहेज मे आया हुआ उनका दास था। बालक को इसके यहाँ छोडना निश्चित किया। घोर अंधेरी रात,

२७ त्रिषष्टि ८।५।९०-९७

२८. वैदिक परंपरानुसार श्रीकृष्ण देवकी के ८ वे पुत्र थे।

२९ वैदिक परंपरानुसार श्रीकृष्ण भगवान विष्णु के अवतार हैं।

३० (क) त्रिषष्टि ८।४।९८, (ख) वसुदेव हिण्डी अनु० पृ० ४८

३१. त्रिषष्टि ८।५।१००

३२ देखें—"वसुदेव हिण्डी"

३३ (क) "वसुदेव हिण्डी" मे (पृ० ३५८-९) मारने का स्पष्ट उल्लेख है।

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र मे (पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ९०-९७) और (चउपन्न महापुरुष चरिय (पृ० १८३ श्लोक ४६-४७) व हरिवंश-पुराण (सर्ग ३५, श्लोक १-१५) के अनुसार हरिणगमेषी देव सुलसा के मृत पुत्रो को देवकी के पास रख आता है और कंस उन्हें पछाड देता है।

(ग) भागवत स्कंध १० अ० २ अर्थात् देवकी के जन्मे हुए बलभद्र के पहले के ६ सजीव बालको को कंस पटक कर मार देता है।

३४ त्रिषष्टि ८।५।१०२, १०४

मूसलाधार वर्षा, प्रहरी निद्रामग्न और वसुदेव बालक को लेकर चले। देवताओं ने पुष्पवर्षा की, आठ दीपक प्रज्वलित कर दिये और कृष्ण वसुदेव पर छत्र तान दिया। वसुदेव कारागार के मुख्य द्वार पर पहुँचे। यहीं पर कंस के पिता उग्रसेन बंदी थे। उन्होंने पूछा इस समय बालक को कहाँ ले जा रहे हो ? वसुदेव ने कहा यह कंस का शत्रु है जो आपको भी कारामुक्त करेगा और शत्रु-निग्रह करेगा। इस बात को गोपनीय ही रखें।[35]

श्रीकृष्ण . गोकुल मे

यमुना पार कर वसुदेव गोकुल मे नंद के घर पहुँचे। उन्हें नवजात शिशु के साथ देखकर नंद आश्चर्यचकित रह गया। नद-वधू यशोदा ने उसी समय एक कन्या को जन्म दिया था। वसुदेव का प्रयोजन सुगम हो गया। कन्या के स्थान पर शिशु श्रीकृष्ण को रखकर नद ने वसुदेव को अपनी कन्या सोप दी। जिसे साथ लेकर वे मथुरा के कारागार मे लौट आए और देवकी को उन्होंने यह कन्या दे दी।[36] इसी समय प्रहरीजन जाग गये। क्या हुआ ··क्या हुआ ? पूछते हुए प्रहरियो ने पाया कि इस बार एक कन्या ने जन्म लिया है।[37]

भोर होने पर जब कस को ज्ञात हुआ तो आश्वस्त हो वह कहने लगा मुनिवाणी असत्य सिद्ध हुई। देवकी की आठवी सतान तो पुत्र नही पुत्री है। भला यह मेरी क्या हानि कर सकेगी ? कस ने कन्या का वध नही किया[38]। नासिका छेद कर उसे देवकी को लौटा दिया।[39] जैन

---

३५ (क) वसुदेवहिण्डी, (ख) त्रिपष्टि : ८।५।१०५-११०, (ग) भवभावना गाथा २१९३-९५ पृ० १४६।

३६ (ख) भवभावनागाथा—२१९६-९७।

३७ (अ) त्रिपष्टि ८।५।११३-११४

३८ सघदासगणि और आचार्य हेमचन्द्र के क्रमश वसुदेवहिण्डी तथा भवभावना में वर्णन है कि कस ने कन्या की नाक चपटी कर दी। जिनसेनकृत हरिवशपुराण में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।

(क) वसुदेवहिण्डी (ख) भवभावना २१९९

(ग) हरिवशपुराण ३५।३२। पृ० ४५२

९ छिन्ननासां पुटा कृत्वा देवक्यास्ता समर्पयत्—त्रिषष्टि ८।५।११५

साहित्य[40] में यह वृत्तान्त अन्य रूप में भी प्राप्त होता है। उत्तरपुराण में इस प्रकार वर्णित है—

(क) वैश्य कन्या का नाम (सुलसा के स्थान पर) अलका था। हरिणगमेषी देवकी पुत्रो का हरण इद्र की प्रेरणा से करता है। (पृ० ३८४-८६)।

(ख) रोहिणी-पुत्र बलभद्र श्रीकृष्ण को अक मे ले जाते हैं। नद छत्र तान कर साथ चलते हैं। वैल रूप नगरदेवता आगे चलते हैं जिसके सीगो की मणिया दीपक का काम करती हैं (पृ० ३९०-९२)।

(ग) नद इन्हे मार्ग मे मिल गया। उसने कहा कि मूलदेवता की आराधिका मेरी पत्नी ने यह कन्या आपको सौंपने को भेजी है। बलभद्र ने बालक नंद को दिया और कन्या के साथ लौट आये (पृ० ३९९-४००)।

(घ) नासिकाच्छेद कर कस ने धाय द्वारा तलघर में कन्या को पोषित करवाया जो आयु पाकर सुव्रता आर्या के पास दीक्षा ग्रहण करती है और विध्याचल मे तपस्या करती है। कालातर मे वह बाघ का शिकार होकर स्वर्गलाभ करती है। गिरीजन उसे विध्यवासिनी देवी रूप मे पूजने लगते हैं (पृ० ४०७-४११)।

वैदिक सदर्भ इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है।[41]

गोपूजन प्रारभ

अतुलित शोभाधारी श्रीकृष्ण नदगृह मे बडे होने लगे। मथुरा मे माता देवकी का ममता भरा मन पुत्र-मुख-दर्शन हेतु आकुल-व्याकुल रहने लगा। जननी का गोकुल आना-जाना संदेहजनक हो सकता था। अस्तु, दवकी गोपूजन के बहाने गोकुल आयी[42] और उसने छक कर अपने सुत को देखा, तुष्ट हुई। प्रतिमाह यही क्रम चलता रहा और इस प्रकार इस देश

---

४० उत्तरपुराण

४१ श्रीमद्भागवत १०।४।८ से १२, पृ० २३३-३४

४२ (क) वसुदेवहिण्डी देवकी लम्भक अनुवाद, पृ० ४८३।
(ख) त्रिषष्टि० ८/५/११९-१२१।
(ग) भवभावना गाथा—२२०१-२२०४।

में गो-पूजन का समारंभ हुआ।[43] मेघनील कांति संपन्न होने के कारण बालक को "श्याम" का संबोधन और "श्रीकृष्ण" नाम मिला।[44]

शकुनी-पूतना बाधा

वसुदेव के साथ वैमनस्य के कारण[45] प्रतिशोधार्थ विद्याधर शूर्पक ने अपनी दो कन्याओं—शकुनी और पूतना को सक्रिय किया। कृष्ण-वध के प्रयोजन से दोनों गोकुल आयीं।[46] दुर्योग से बालक घर में अकेला था। ये बालक को आंगन में घसीट लाईं और शकुनी उसे भारी गाड़ी के नीचे कुचलने लगी, पर विफल रही। पूतना अपने विषलिप्त स्तन का पान कराने

---

४३ श्रीमद्भागवत के अनुसार गोकुलवासी इंद्र के उपासक थे। वर्षा के देवता इंद्र का गर्व भंग करने को श्रीकृष्ण ने इंद्र पूजा रुकवा दी और गोपूजन आरंभ करवाया। इसीसे कुपित होकर इंद्र ने ७ दिन तक अविरल वर्षा की और श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण कर व्रजवासियों व गोधन का त्राण किया।

दशमस्कंध, अध्याय २५/२६।

४४. त्रिषष्टि ८/५/११६।

४५ शूर्पक विद्याधर दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिशिखर का पुत्र था। वसुदेव ने युद्ध में त्रिशिखर का मस्तक काट दिया था, अतः शूर्पक का वसुदेव से वैर था और उसकी पुत्री इसका प्रतिशोध लेना चाहती थी।

४६ (क) जिनसेन के अनुसार ये दोनों कंस द्वारा भेजी गयी देवियां थीं। एक दिन कंस को अपने शुभाकांक्षी देव वरुण (जो निमित्तज्ञ था) से ज्ञात हुआ कि उसका संहारक समीपस्थ क्षेत्र में ही कहीं बड़ा हो रहा है तो उसने अपने शत्रु के विनाश के लक्ष्य से ३ दिन का उपवास किया, परिणामतः उसकी पूर्वजन्म में सिद्ध की गयी दो देवियां प्रकट हुयीं। कंस ने उनसे प्रच्छन्न रूप में बढ़ रहे अपने शत्रु के वध के लिए कहा। देवियां गोकुल पहुंचीं, उनमें से एक ने शकुनी (पक्षी) का रूप धारण कर लिया और अपनी पैनी चोंच से श्रीकृष्ण के कोमल तन को गोदने का प्रयास करने लगी, बालक कृष्ण ने उसकी चोंच को इतनी जोर से मर्दित किया कि वह चीत्कार करती हुयी भाग खड़ी हुयी। दूसरी देवी अपने स्तनों पर विष का लेपन करके आयी और बालक को स्तनपान कराने लगी। श्रीकृष्ण ने अपने मुख से स्तन को इतनी कठोरता व शक्ति के साथ दबाया कि वह असीम पीड़ा से कराहने लगी॥

लगी। रक्षक देवताओं ने दोनों विद्याधरियों का प्राणांत कर दिया। इसी समय नंद घर लौट आये। आंगन में यह अस्त-व्यस्तता और विद्याधारियों का मृत शरीर देखकर किसी अनिष्ट की आशंका से आतुर हो उठे और लपक कर वे भीतर गये। श्रीकृष्ण को सकुशल पाकर वे आश्वस्त हो गये। एक सेवक ने बताया कि स्वामी, आपका पुत्र बड़ा पराक्रमी है, उसी ने इन उपद्रवी स्त्रियों का वध किया है। वैदिक परंपरानुसार कंस राक्षसी पूतना को भेजता है जो विषाक्त स्तनपान कराने लगती है और बालक कृष्ण इतनी उग्रता से स्तनपान करते हैं कि उसका देहांत हो जाता है।[47]

दामोदर श्रीकृष्ण और यमलार्जुन

निश्चय कर लिया गया कि माता यशोदा बालक को अकेला नहीं छोडेगी। कुछ बडा हो जाने पर बालक श्रीकृष्ण माता की दृष्टि से छिपकर इधर-उधर खिसक जाते थे। मा बालक की कमर मे रस्सी बाधकर उसका दूसरा छोर ओखली से बाध देती और निश्चित हो जाती। यह प्रतिबध जब तक श्रीकृष्ण चाहते, तभी तक प्रभावी रहता था। स्वेच्छा-धारित इस बधन से वे जब चाहते मुक्त हो सकते थे। शूर्पक विद्याधर का पुत्र बालक कृष्ण के विरुद्ध अपनी बहनो और पिता के वध का प्रतिशोध पूरा कर लेने को व्यग्र था। यह यमला जाति के दो वृक्षो का रूप धरकर नद के आँगन मे स्थित हो गया। पुत्र को उदर से बाधकर निश्चित मा कही अन्यत्र चली गयी थी। बालक श्रीकृष्ण ओखली को घसीटते हुए आगन मे आ गये और वृक्षो की ओर बढे। दोनों वृक्ष पास-पास सटने लगे ताकि बालक को बीच मे दबाकर कुचल दें। बालक के सबल प्रहार से दोनो वृक्ष ध्वस्त हो गये और इस प्रकार शूर्पक पुत्र की जीवन लीला समाप्त हो गयी। पेट पर रस्सी के बधन के कारण श्रीकृष्ण को "दामोदर" कहा जाने लगा।[48] आचार्य जिनसेन ने यमल और अर्जुन नामक दो देवियो का होना माना है।[49] श्रीमद्भागवत मे यह प्रसग अन्यथा रूप मे है। कुबेर-पुत्र नलकबर और मणिग्रीव यक्ष कन्याओ के साथ जलक्रीडा कर रहे थे कि सहसा नारद

---

४७. श्रीमद्भागवत १०/६/४ से १३।

४८ (क) त्रिषष्टि : ८/५/१४१।

(ख) भवभावना गा० २२११-२२१५।

४९ हरिवंशपुराण—३५/४५, पृ० ४५३।

जी पहुच गये। कन्याओ ने वस्त्रधारण कर लिए पर ये दोनो भाई निर्लज्ज ठूठ की भाति खड़े रहे। क्षुब्ध ऋषि ने शाप दिया कि जाओ इसी तरह वृक्ष योनि में जा पडो। इनके बहुतेरे गिडगिडाने पर नारद जी ने उद्धार की व्यवस्था बतायी कि जब कृष्णावतार होगा तब भगवान तुम्हारा उद्धार करेंगे। नंद आँगन में ये दोनो भाई ही वृक्ष बने थे और श्रीकृष्ण से उद्धार पाकर वे अपने मूल स्वरूप में आये थे।[50]

बलभद्र का गोकुल-आगमन

पुत्र-वत्सला माता-पिता का मन इन बाधाओ और उपद्रवो से विचलित रहने लगा। यह भय भी था कि ऐसे चमत्कारो से श्रीकृष्ण का वास्तविक रूप भी कस से अधिक समय तक छिपा न रह सकेगा। अत बालक के रक्षणार्थ वसुदेव ने बलभद्र को नद के यहा भेज दिया। श्रीकृष्ण एवं बलराम गोकुल मे नाना भाति क्रीडा करते और ग्रामवासियो को सुख-मग्न रखते। बलराम श्रीकृष्ण को धनुर्विद्या एव अन्य युद्धकौशल सिखाने लगे[51]। श्रीकृष्ण आयुध सचालन मे प्रवीण बने। उनके शौर्य, शक्ति और पराक्रम मे अद्‌भुत गति से विकास होने लगा। उनकी रूपमाधुरी भी विकसित होने लगी। वे कलावत हो गये। सभी उनसे अतिशय प्रेम करने लगे। ११ वर्षकी आयु मे ही वे गोकुल-नायक बन गये। मुरली के स्वर पर गोपिया उनके पास दौडी आती। वे गोपाल थे। गाये उनसे अमित स्नेह करती थी। श्रीकृष्ण ब्रजराज हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने ग्यारह वर्षीय गोकुलप्रवास पूर्ण किया।[52]

कसारि की खोज

एक दिन राजभवन मे कस ने नासिकाहीन कन्या को देख लिया और उसे मुनि की भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वह विचलित हो उठा। एक निमित्तज्ञ को बुलाकर उसने प्रश्न किया कि मुनिवाणी सत्य होगी

---

५० श्रीमद्‌भागवत १०/१०/१ से ४३। गीता प्रेस, गोरखपुर

५१ (क) त्रिषष्टि ८/५/४६ से ५३।

(ख) हरिवशपुराण—३५, ६४, पृ० ४५६।

(ग) भवभावना—२२१७ और २२१६।

५२ त्रिषष्टि ८/५/१६६।

अथवा मिथ्या ?[53] उत्तर मिला कि मुनिवाणी रंचमात्र भी मिथ्या नहीं हो सकती। निमित्तज्ञ ने कहा कि तुम्हारा संहारक तो जन्म ले चुका है, और वह आस-पास ही कही बडा हो रहा है। समस्या यह थी कि कस अपने विनाशक को पहचाने कैसे ? निमित्तज्ञ ने राह वतायी कि कंस अपने दुर्धर्ष और बलवान बैल अरिष्ट, अश्व केशी, दुर्दान्त खर और मेष को मुक्त विचरणार्थ वन में छोड दे। खेल ही खेल में जो इन चारो का वध कर दे—वही कस का शत्रु होगा। वही देवकी का सातवां गर्भ है।[54] निमित्तज्ञ से कस को यह भी ज्ञात हुआ कि उसका शत्रु इस युग का वासुदेव होगा और वासुदेव महाबलवान होता है। वह कालियमर्दन भी करेगा और समय आने पर वह उसका भी अंत कर देगा।[55] निमित्तज्ञ के कथन से कस आतकित हो गया। वह आत्मरक्षा के लिए सक्रिय हो गया और शत्रु की खोज के लिए सुझाये गये उपायो को क्रियान्वित करने लगा।

प्रचण्ड बैल अरिष्ट को वृन्दावन में मुक्त विचरण हेतु छोड दिया गया। उसके भयकर उत्पात से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी।[56] श्रीकृष्ण ने सीगो से पकडकर इस क्रूर बैल को नियंत्रित कर लिया। वह पिछले पैरो से ऐसा ऊपर उठा कि अपने ही भार से उसकी ग्रीवा भग हो गयी और वह भयानक चीत्कार के साथ मर गया। गोकुलवासी प्रसन्नता से झूम उठे।[57] वैदिक परपरानुसार एक दैत्य बछडे (वत्स) का रूप धारण कर गो-समूह में घुस आया। श्रीकृष्ण ने पिछले पैर पकड कर वत्सासुर को उठा लिया और उसे आकाश मे तेजी से ऐसा घुमाया कि उसका प्राणात हो गया। उत्तरपुराणानुसार अरिष्ट नामक देव बैल रूप मे श्रीकृष्ण के बल की परीक्षा लेने आया। श्रीकृष्ण उसकी गर्दन मरोडने लगे, किंतु देवकी ने उसे छुडा लिया।[58] अरिष्ट के पश्चात् उद्दंड अश्व केशी को भेजा गया। उसने

---

५३ (क) त्रिषष्टि ८-५-२००, २०१। (ख) भवभावना २३४७ से २३५०।

५४ (क) त्रिषष्टि ८/५/२०२-२०४। (ख) भवभावना २३५२ से २३५६।

५५ (क) त्रिषष्टि ८-२-२०५-२०७।
(ख) भव-भावना गा० २३५७ से २३५९।

५६ श्रीमद्भागवत मे अरिष्ट के स्थान पर वत्सासुर नाम का बछडा उल्लिखित है।

५७ (क) त्रिषष्टि ८/५/२०९-२१६।
(ख) भवभावना २३६८ से २३७५।

५८ उत्तरपुराण श्लोक ४२७-२८।

अपने उत्पात से गायों और गोपों को आतंकित कर दिया। श्रीकृष्ण ने पूर्ण शक्ति के साथ अपना हाथ उसके मुख में डाल दिया और दम घुटने से उसका भी प्राणात हो गया।[59] खर और मेष की भी इसी प्रकार दुर्गति हुई। कस को निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण ही उसके शत्रु हैं और वे परम बलवान एवं शूरवीर है।[60]

श्रीमद्भागवत मे खर का नाम नही आता, किंतु धेनुकासुर प्रसंग के साथ इसकी समकक्षता स्थिर की जा सकती है जो इस प्रकार है कि तालवन मधुर फलो से लदा था और धेनुकासुर वहा प्रतिपल प्रहरी रूप में सतर्क रहा करता था। अपनी सखा मडली सहित श्रीकृष्ण वहा पहुंचे और धेनुकासुर ने वलराम के वक्ष मे लात मारी। वलराम ने उसके पिछले पैर पकड कर घुमा दिया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस पर धेनुक के वधु-वाधवो का समूह एकत्रित होकर चढ आया और दोनो भाइयो ने उन सभी को मार कर तालवन को निरापद कर दिया।[61]

शारग धनुष प्रकरण

कस के राजभवन में शारग नामक एक अति प्राचीन धनुष था। उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढा देगा उसके साथ वह सत्यभामा का विवाह करवा देगा। इस वहाने कस एक वार पुन निश्चित कर लेना चाहता था कि श्रीकृष्ण ही उसके शत्रु हैं।[62] यथासमय आयोजन किया गया। अनेक राजा-राजकुमार अपनी शक्ति का परिचय देने को एकत्र हुए। श्रीकृष्ण भी वलराम और अनाधृष्टि के साथ स्वयंवर सभा मे पहुचे।

अनाधृष्टि वसुदेव-मदनवेगा का पुत्र था जो शौर्यपुर से मथुरा यात्रा मे रात्रि विश्राम हेतु गोकुल रुक गया था। मार्ग से अपरिचित होने के कारण अगले दिन श्रीकृष्ण एवं बलराम को साथ लेकर उसने मथुरा प्रस्थान किया। मार्ग उबड-खावड था और उसका रथ वार-बार अटक जाता था।

---

५९ (क) त्रिषष्टि ८/५/२१७-२२०। (ख) भवभावना २३७६-७७।

६० (क) त्रिषष्टि ८/५/२२१। (ख) भवभावना २३८१।

६१ श्रीमद्भागवत स्कध १, अध्याय १५, श्लोक २०-४०।

६२ त्रिषष्टि ८/५/२२३-२२४।

जब एक भारी पेड की बाधा से रथ रुक गया तो अनाधृष्टि ने वृक्ष को उखाड फेकना चाहा पर पसीना-पसीना होकर भी वह सफल न हो सका। श्रीकृष्ण ने बड़ी सुगमता से उसे समूल उखाड कर रास्ता बना दिया। अनाधृष्टि श्रीकृष्ण की शक्ति पर आश्चर्य करने लगा और उनका प्रशसक बन गया। स्वयंवर सभा में जब ये पहुचे तो सयोग ऐसा हुआ कि अनाधृष्टि का मुकुट धरती पर गिर कर खडित हो गया। उसका पैर फिसल गया था। उपस्थित राजा-महाराजा अट्टहास कर उठे और सत्यभामा भी व्यग्य से मुस्कुराने लगी। आत्मविश्वास डिग जाने के कारण अनाधृष्टि प्रत्यचा न चढा सका। पराजय की इस स्थिति से श्रीकृष्ण तड़प उठे। उन्होंने क्षणमात्र मे शारग को प्रत्यचायुक्त कर दिया।[63] सभास्थल हर्षध्वनि से गूज उठा पर वसुदेव इस आशका से चिंतित हो उठे कि इस पराक्रम से कस ने श्रीकृष्ण को अपने शत्रु रूप मे पहचान लिया तो नया सकट उठ खड़ा होगा। उनके निर्देश पर श्रीकृष्ण और अनाधृष्टि तत्काल सभा त्याग कर गोकुल पहुच गये। लोक मे नदनदन श्रीकृष्ण "शारंगधर" के रूप से विख्यात हो गये।

मल्लयुद्धोत्सव . रहस्योद्घाटन

अब निश्चित हो जाने पर कंस अपने शत्रु श्रीकृष्ण को मारने की नयी-नयी चाले चलने लगा। उसने मथुरा मे एक मल्लयुद्ध का आयोजन किया। श्रीकृष्ण भी बलराम के साथ पहुचे। दूरद्रष्टा वसुदेव ने श्रीकृष्ण

---

६३. (क) जिनसेन कृत हरिवशपुराण के अनुसार कृष्ण को खोजने मे असफल रहकर जब कस गोकुल से मथुरा लौटा, उसी समय मथुरा मे ३ दिव्य पदार्थ प्रकट हुए—सिंहवाहिनी नागशय्या, अति तेज धनुष, और पाचजन्य शख। ज्योतिषियों से ज्ञात हुआ कि जो मनुष्य नागशय्या पर चढ़कर इस धनुष को प्रत्यंचायुक्त कर देगा और पाचजन्य फूक कर सस्वर कर देगा, वही निश्चय रूप से कस का शत्रु है। तदनुसार कस ने घोषित करवाया कि जो इस पराक्रमपूर्ण कार्य मे सफल रहेगा, वह मेरा मित्र माना जाएगा और इस नाते में उसको अलभ्य इष्ट वस्तु भी भेंट करूगा।

(ख) जब धनुष रक्षक असुरो व कस के सैन्य ने श्रीकृष्ण का विरोध किया तो उन्होंने धनुष को खड-खड कर दिया और धनुष के टुकडो से ही सब को मार गिराया। श्रीमद्भागवत १०/४२/१५-२१।

की रक्षा हेतु अपने सभी भाइयों और पुत्रों अक्रूर आदि को बुलाया था। कस ने यदुवंशियो का खूब स्वागत किया और उनके लिए पृथक् से एक उच्च मंच निर्मित करवाया।[64]

इससे कुछ पूर्व गोकुल मे एक घटना घटित हो गयी। मथुरा हेतु प्रस्थानपूर्व स्नानार्थ बलराम ने यशोदा को पानी गर्म करने को कहा। व्यस्ततावश हुए विलंब से कुपित हो बलराम ने यशोदा को ताडना देते हुए कहा—हमारी दासी होकर तुमने हमारी आज्ञा के उल्लघन का साहस कैसे किया ?[65] माता के इस अपमान से श्रीकृष्ण चंचल हो उठे। दोनो भाई यमुना-स्नान के लिए चल दिये। अधीर श्रीकृष्ण ने जब पूछा—मा को तुमने दासी क्यो कहा ?[66] तो सारा वृत्तात बताते हुए बलराम ने स्पष्ट किया कि श्रीकृष्ण भी वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं। रहस्योद्घाटन पर कस के प्रति श्रीकृष्ण के मन मे प्रतिशोध की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी और उन्होने कस वध की प्रतिज्ञा कर ली।[67]

यमुना मे स्नानार्थ जब ये उतरे तो पाया कि इस स्थल का यमुना जल बडा दीप्तिमान और आलोकित है। इस यमुनाद्रह मे भयकर कालिय नाग का निवास था। उसी के मणि-प्रकाश से जल दीप्तिमान हो उठा था। श्रीकृष्ण इस तथ्य से अपरिचित थे। इनके जलप्रवेश करते ही भयकर नाग लपका, किंतु त्वरा के साथ श्रीकृष्ण ने उसे नाथ लिया और उसके साथ क्रीडा करते रहे। अतत. उसका मर्दन कर नष्ट ही कर दिया। कुतूहलवश एकत्रित विशाल जनसमुदाय ने श्रीकृष्ण का जय-जयकार किया। दोनो भाई सभी का साधुवाद लेकर मथुरा के लिए चल दिये।[68]

हरिवश पुराण और उत्तर पुराण मे यह प्रसग अन्यथा रूप मे है कि कस ने गोकुलवासियो को एक विशिष्ट कमल लाने का आदेश दिया जो यमुना मे असख्य सर्पों वाले द्रह मे खिला था। कस जानता था कि श्रीकृष्ण ही कमल लेने को जायेगा और मारा जायेगा। श्रीकृष्ण ने जब जल मे प्रवेश किया तो प्रचड कालिय ने क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण

---

६४ त्रिषष्टि. ८/५/२४४-२४६।

६५ (क) —वही— ८/५/२४८-२५१। (ख) भवभावना—२४०३-२४०५।

६६ (क) त्रिषष्टि: ८/५/२५२-२५४। (ख) भवभावना २४०६।

६७ (क) त्रिषष्टि· ८/५/२५५-२६। (ख) भवभावना २४८।

६८ त्रिषष्टि. ८/५/२६२-२६५

ने उसे मर्दित कर दिया और कमल लेकर तट पर आ गये, जिसे गोकुल-वासी कस के पास ले गये। कंस का भय और भी घना हो गया। उसने आज्ञा दी कि नद के पुत्र सहित सभी गोप युद्ध के लिए तैयार हो जाँय।[69]

श्रीमद् भागवतानुसार रमणकद्वीप में नागो का निवास था। नाग-माता कद्रू और गरुड-माता विनता के मध्य विकट शत्रुता थी अत गरुड जी जहाँ भी सर्प को देखते तुरत उसे खा जाते थे। ब्रह्मा जी से निवेदन किये जाने पर उन्होने निर्णय दिया कि प्रत्येक अमावस्या को एक साँप गरुडजी को दे दिया जाय और गरुडजी साँपो का व्यापक विनाश नही करेंगे। इन सर्पों मे कालिय बडा भयकर और घमडी था जो गरुडजी को दिया गया साँप भी स्वय खा जाता था। कालिय और गरुडजी के मध्य भयकर युद्ध हुआ जिससे आतकित कालिय अन्य सुरक्षित स्थान पर बस जाना चाहता था।

एक अन्य कथानुसार यमुना के एक द्रह में मत्स्यो का समूह रहता था और गरुडजी यहाँ मत्स्याहार किया करते थे। एक दिन जब वे मत्स्यनायक को ही खा गये तो उसकी पत्नियो ने ब्रह्माजी के समक्ष करुण पुकार की। उन्होने गरुडजी को शाप दिया कि वे इस द्रह की मछलियाँ नही खाएंगे। यह द्रह इस प्रकार गरुडजी से सुरक्षित था और कालिय यहाँ निवास करने लगा। तब से यमुना के इस द्रह का जल विष के प्रभाव से सदा उबलता रहता था, जलचर भी इस प्रभाव से झुलस जाते थे। तट पर दूर-दूर तक कोई वनस्पति नही उगती थी। श्रीकृष्ण ने यमुना जल को शुद्ध करने का निश्चय कर लिया। जब इस उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने जल मे छलाग लगायी तो क्रुद्ध कालिय ने उन पर आक्रमण किया और उन्हे अपनी दृढ कुडली में जकड लिया। तब श्रीकृष्ण ने अपना तन इतना विकसित किया कि भय-कर पीडा से कराह कर कालिय को श्रीकृष्ण को मुक्त कर देना पडा। श्रीकृष्ण ने कालिय के मस्तक पर तीव्र पदाघात किये और उसे मर्दित कर दिया। अचेत नाग की पत्निया पति के प्राणो के रक्षार्थ श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगी। सचेत होकर कालिय भी प्राणो की भीख मागने लगा। श्रीकृष्ण ने कालिय से कहा—यह स्थान छोडकर तुम अपने मूल स्थान रमण द्वीप जाओ। मेरे चरण चिह्न तुम्हारे वक्ष पर अकित हैं, अत गरुड अब तुम्हे नही खायेगा। कालिभ ने ऐसा ही किया और यमुना जल शुद्ध हो गया।[70]

---

६९ हरिवंश पुराण ३६/८-१० पृ, ४६
७० श्रीमद्भागवत स्कंध १०—अध्याय १६-१७

कस संहार :

मल्ल युद्ध आयोजन पर जब श्रीकृष्ण बलराम मथुरा पहुंचे। नगर द्वार पर दो सजे-सजाये गज—पद्मोत्तर और चपक अगवानी के लिये खडे किये गये थे।[71] श्रीकृष्ण के घात के लिए ऐसा किया गया था। इससे बलराम और श्रीकृष्ण भी अनभिज्ञ न थे। पद्मोत्तर ने श्रीकृष्ण पर और चपक ने बलराम पर आक्रमण कर दिया। मुष्टि प्रहार से श्रीकृष्ण ने पद्मोत्तर गज का प्राणान्त कर दिया और उसके दोनों दाँत खीच कर निकाल लिये। चपक हस्ति भी बलराम के हाथों मारा गया। दोनो भाई इस विजय पर बिना कोई गर्व दिखाते हुए समारोह-स्थल पर पहुंच गये।[72] अनेक राजा-महाराजा एकत्रित थे। वसुदेव के ६ भ्राता (दशार्ह) भी उपस्थित थे। बलराम ने दूर से ही श्रीकृष्ण को सब का परिचय दिया।[73]

कस का प्रिय मल्ल चाणूर अखाडे में उतर कर उपस्थित समुदाय को चुनौती देने लगा। कोई शक्तिशाली हो तो आये और मुझ से मल्लयुद्ध करे। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। इस बलिष्ठ से बाहुयुद्ध करना सुगम कार्य न था। श्रीकृष्ण ताल ठोंककर आगे बढे। भीमकाय चाणूर के विपरीत किशोर कृष्ण को खड़ा देख एक बार तो सभी ओर कोलाहल मच गया। श्रीकृष्ण ने सभी को आश्वस्त किया के मैं इस मल्ल को पराजित कर दूंगा। कस को विश्वास हो गया कि यही मेरा शत्रु है और उसने अन्य मल्ल मुष्टिक को भी अखाडे में उतरने का आदेश दे दिया। यह अधर्म युद्ध था। अकेले कृष्ण के दो प्रतिद्वन्द्वी थे। कंस तो किसी भी प्रकार शत्रु-सहार चाहता था। अब बलराम भी अखाडे मे उतर गये। श्रीकृष्ण चाणूर से और बलराम मुष्टिक से भिड गये। मल्लयुद्ध के भीषण घात-प्रतिघातो के

---

७१ श्रीमद्भागवत मे एक ही गज "कुवलयापीड" की चर्चा आती है जिसे रगशाला (मल्लयुद्धस्थल) के बाहर द्वार पर खडा किया गया था। श्रीकृष्ण ने महावत से कहा कि हमें प्रवेश का मार्ग दे अन्यथा तुझे हम हाथी सहित मार देंगे। चिढकर महावत ने हाथी को आगे बढाया। श्रीकृष्ण ने कुछ समय तो पूछ पकडकर हाथी को घुमाया, फिर सूड पकडकर धरती पर पछाड दिया, उसका दात उखाड लिया और उसी के प्रहारो से महावत और हाथी दोनो की जीवनलीला समाप्त कर दी।

७२ भवभावना गा० २४३१-३२

७३ (क) हरिवंशपुराण—३६/३६ पृ० ४६४; (ख) त्रिषष्टि ८/५/२७२

दौरान श्रीकृष्ण के उरुस्थल पर चाणूर ने ऐसा प्रहार किया कि वे अचेत हो गये।[74] कस ने चाणूर को इसी समय श्रीकृष्ण का अत कर देने का सकेत दिया। चाणूर ने आक्रमण किया भी, पर बलराम ने उसे विफल कर दिया। सचेत होकर श्रीकृष्ण ने चाणूर को भुजाओ मे ऐसा जकडा कि उसका प्राणात हो गया।[75] कस ने बौखला कर अपने सेवको को आज्ञा दी कि इन अधम गोपो को मार दो, इनके पालक नद को भी समाप्त कर दो और उसका सब कुछ लूट लाओ। जो भी नंद का पक्ष ले उसे भी मार डालो।[76]

कस को ललकार कर श्रीकृष्ण ने कहा—पापी, चाणूर वध पर भी तू स्वय को मृत नही मानता। मुझे मारने के पूर्व तू आत्मरक्षा का उपाय कर ले। झपट कर वे कस के पास गये और उसके केश पकड उसे खीच लिया। वह धराशायी हो गया! उधर बलराम भी मुष्टिक का काम तमाम कर चुके थे। कस की रक्षा के लिए जब उसके कर्मचारी शस्त्रादि लेकर दौडे तो बलराम ने मण्डप के एक स्तभ को उखाड कर उसकी सहायता से सबको खदेड दिया। श्रीकृष्ण ने कस के मस्तक पर पैर रखा और उसे यमलोक भेज दिया। जैसे दूध मे से मक्खी को निकाल दिया जाता है वैसे ही श्रीकृष्ण ने कस की मृतदेह को उठाकर मडप से बाहर फेंक दिया।[77] हरिवश पुराण के अनुसार कस तलवार लेकर श्रीकृष्ण पर झपटता है और कृष्ण तलवार छीन कर उसे बालो से पकडकर पछाड देते हैं और मार डालते हैं।[78] कस ने जरासध की सेना को भी समारोह में नागरिक रूप व वेश मे खडा कर रखा था। कस-वध पर वे शस्त्र लेकर लपके, पर समुद्रविजय आदि दशार्हों के शौर्य के सामने वे टिक न सके।

---

७४ (क) त्रिषष्टि ८/५/२८४-२९५
(ख) भवभावना २४४३-२४५६
(ग) हरिवशपुराण मे कृष्ण के बेहोश होने का वर्णन नही है।

७५ (क) त्रिषष्टि ८/५/२९६-३०० (ख) भवभावना २४५७-२४६१

७६ (क) त्रिषष्टि ८/५/३०१-३०२ (ख) भवभावना २४६२-२४६४

७७ (क) त्रिषष्टि ८/५/३१३
(ख) भवभावना : २४६६-२४७७

७८ (क) हरिवशपुराण ३६/४५ पृ० ४६५
(ख) उत्तरपुराणानुसार श्रीकृष्ण ने कस को पैर पकड कर घुमाया और भूमि पर पटक कर मार डाला। श्रीकृष्ण ने ऐसा तब किया जब चाणर की मृत्यु के पश्चात् कस स्वय अखाडे मे उतरा।

वसुदेव ने बलराम को अर्धासन दिया और श्रीकृष्ण को अ क मे बिठाकर उनका भाल चूमा। उन्होने अपने ज्येष्ठ भ्राताओ को श्रीकृष्ण व बलराम का परिचय दिया और अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी आदि की समग्र पूर्वकथा सुनायी।[79] उन्होने बताया कि वचनबद्धता की विवशता के कारण ही उन्हे कस के अत्याचार सहने पडे। देवकी के अतिशय आग्रहवश ही उसका सातवा गर्भ नद के यहा छोडकर उसके स्थान पर उसकी पुत्री को लाना पडा।[80]

समुद्रविजय ने उग्रसेन को कारामुक्त किया व उनके साथ जाकर कस का अतिम सस्कार किया।[81] जीवयशा को छोड कर शेष रानियो ने अपने पति को जलाजलि दी। जीवयशा ने प्रतिशोध वश प्रतिज्ञा कर ली कि यादव कुल का सर्वनाश करके ही मैं पति को जलाजलि दूंगी, अन्यथा जीवित ही अग्निप्रवेश कर लूगी। वह मथुरा त्याग कर पितृगृह चली गयी। पिता ने उसे आश्वस्त किया कि तू कोई चिंता न कर, मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूँगा।[82]

श्रीकृष्ण व बलराम के अनुरोध पर समुद्रविजय ने उग्रसेन को पुन मथुरा के सिंहासन पर आरूढ किया और महाराज उग्रसेन ने राजकुमारी सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ विवाह सपन्न कराया।[83] हरिवशपुराण के अनुसार विद्याधरो के राजा सुकेतु ने अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह कर दिया।[84]

सोमक प्रसंग —

जरासध भी श्रीकृष्ण विरोधी हो गया था और राजा सोमक के साथ उसने समुद्रविजय को सन्देश भेजा कि कस-सहारक श्रीकृष्ण बलराम को हमे सौंप दो अन्यथा तुम्हे हमारा कोपभाजन बनना होगा।[85] समुद्र-

---

७९ (क) त्रिषष्टि. ८/५/३१८-३२० (ख) भवभावना २४८०-२४८६

८० त्रिषष्टि ८/५/३२३, ३२६

८१. त्रिषष्टि ८/५/३२८-३२९

८२ (क) त्रिषष्टि ८/५/३३५-३३८ (ख) हरिवशपुराण ३६/६५-६९

८३ (क) त्रिषष्टि ८/५/३४०-३४३ (ख) भवभावना २५००-२५०२

८४. हरिवशपुराण ३६/५३-६१ पृ० ४६७-६८.

८५ (क) त्रिषष्टि. ८/५/३४०-३४३ (ख) भवभावना : २५००-२५०२

विजय ने कहा कि कंस अत्याचारी था। उसने कृष्ण के भाइयो का वध किया है। कस का सहार कर श्रीकृष्ण ने उचित ही किया है। वे निर्दोष हैं।[86] पर, सोमक का मतव्य था—श्रीकृष्ण-बलराम ही नही, वसुदेव भी अपराधी है, जिन्होने वचनबद्धता का निर्वाह न कर अपने सातवें पुत्र को गुप्त रख लिया। उसने कहा—जरासध महाराज के आदेश का पालन तुम्हारा कर्त्तव्य है। पिता पर किये गये आक्षेप ने श्रीकृष्ण को क्रुद्ध कर दिया। वे बोले—कस के साथी होने से जरासध भी हमारा शत्रु है।[87] उसने हमसे स्नेह-सम्बन्ध तोड लिया है। स्नेह वश ही तो हम उसका आदेश माना करते थे। श्रीकृष्ण को कुलागार कहने पर सोमक को अनाधृष्टि ने भी खरी-खोटी सुनायी। लज्जित हो वह लौट गया।[88] जरासध की ओर से भावी आपदाओं की कल्पना से समुद्रविजय चिंतित हो गये। उन्होने निमित्तज्ञ क्रौष्टुकी से इस नये वैमनस्य का परिणाम पूछा।[89] सकेत मिला कि युद्ध होगा और श्रीकृष्ण व बलराम द्वारा जरासध-वध होगा और उसके स्थान पर स्वय श्रीकृष्ण ही त्रिखडेश्वर होगे। उसने परामर्श दिया कि यादवो को मथुरा त्याग कर पश्चिम की ओर प्रस्थान करना चाहिए और समुद्र तट पर नया नगर स्थापित करना चाहिए। यात्रारभ के साथ ही शत्रु पक्ष का क्षय भी आरभ होगा। मार्ग मे सत्यभामा जहा दो पुत्रो को जन्म दे, वही स्थान निरापद होगा, वही नगर बसा लेना उचित रहेगा।[90] परामर्शानुसार समुद्रविजय ने पश्चिम की ओर सदल-बल प्रस्थान किया। उग्रसेन भी साथ हो लिये। ११ कुल कोटि यादवजन मथुरा से समुद्रविजय के साथ निकल पडे। शौरियपुर से सात कोटि यादव और उनके साथ हो गये। विशाल यादव समूह विंध्याचल की ओर अग्रसर हुआ।[91]

---

८६ त्रिषष्टि : ८/५/३४४-३४७

८७ (क) वही—(ख) भवभावना २५११

८८ त्रिषष्टि ८/५/३५७

८९ —वही—८/५/३५८-३५९

९० (क) —वही—८/५/३६०-६२ (ख) भवभावना २५२०-२५२४

९१ हरिवशपुराण मे यह सारा प्रसग अन्य ही प्रकार से वर्णित मिलता है। कस-वध की सूचना ज्यो ही जीवयशा से जरासध को मिली उसने यादवो को मारने के लिए अपने पुत्र कालवन को मथुरा भेजा। उसने १७ बार यादवो से युद्ध किया और अत मे अतुल मालावत पर्वत पर वह मारा गया। तब जरासध ने अपने भाई अपराजित को भेजा। उसने यादवो के साथ २४६ बार युद्ध किया और

कालकुमार प्रसग :

क्रुद्ध पिता जरासध ने पुत्र कालकुमार के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वह यादवो पर आक्रमण करे। उसने कहा—"यादव समुद्र में अथवा अग्नि मे कही भी छिप जाय मैं उन्हे वहा से खीच लाऊंगा और नष्ट कर दूगा।" वह विशाल सेना लेकर यादवो के विरुद्ध निकल पडा। श्रीकृष्ण के रक्षक देवो ने यादव पक्ष की सहायता की। देवो ने एक विशाल एक-द्वारीय दुर्ग की रचना की और भीतर स्थान-स्थान पर अनेक चिताए प्रज्वलित कर दी। कालकुमार जब इस दुर्ग पर पहुचा तो द्वार पर एक अकेली वृद्धा बैठी रो रही थी।[92] उसने बताया कि कालकुमार के भय से सभी यादव अग्नि मे प्रवेश कर गये। मैं भी जल मरूगी।[93] कालकुमार अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि से यादवो को खीच लाने के लिए चिता मे प्रविष्ट हो गया। वह भस्म हो गया।[94] सेना ने रात्रि के कारण वही विश्राम किया। प्रात जाग कर जब सैनिको ने पाया कि वहा न तो कोई दुर्ग है और न ही वह वृद्धा तो वे आश्चर्यचक्ति रह गये।

मार्ग मे अतिमुक्त मुनि से भेंट हो जाने पर समुद्रविजय ने उनसे पूछा —इस विपत्ति मे हमारा क्या होगा ?[95] उत्तर मिला—चिंता का कारण ही नही है। समुद्रविजय के पुत्र अरिष्टनेमि २२ वे तीर्थंकर होंगे। बलराम व श्रीकृष्ण क्रमश बलदेव और वासुदेव हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण प्रतिवासुदेव जरासध का वध कर स्वय तीन खण्डो के अधिपति होगे।[96]

वह भी श्रीकृष्ण के बाणो से मारा गया। श्रीकृष्ण-बलराम आनदपूर्वक मथुरावास करने लगे। अपराजित की मृत्यु का समाचार पाकर स्वय जरासध ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया, तब ये मथुरा छोडकर पश्चिम की यात्रा आरभ करते हैं। —हरिवशपुराण सर्ग ३६/६५-६७, ४०/१-२३

९२. हरिवशपुराण के अनुसार स्वय जरासध जाता है और इस प्रकार का दृश्य देखकर शत्रुनाश के कारण उसके मन में सतोष होता है और वह राजगृह लौट आता है।—हरिवशपुराण—४०/२८-४३ पृ० ४६४-६७

९३ (क) त्रिषष्टि ८/५/३६७—३७६ (ख) भवभावना २५२९-२५३५

९४ त्रिषष्टि ८/५/३७८-३८०

९५ त्रिषष्टि ८/५/३८६-३८७

९६ (क) त्रिषष्टिशलाका ८/५/३८८-३८९ (ख) भवभावना. २५५८

द्वारका-निर्माण—

यादव दल सौराष्ट्र में रैवतक पर्वत के समीप शिविर डाले था कि सत्यभामा ने दो पुत्रो को जन्म दिया। यहीं पर यादवो को नगर बसाना था। श्रीकृष्ण ने समुद्र पूजन के पश्चात् अष्टम भक्त तप आरंभ किया और लवणसागर का स्वामी सुस्थित देव प्रकट हुआ। देव ने श्रीकृष्ण को पांचजन्य और बलराम को सुघोष नामक शंख व रत्नादि भेंट किये[97] और निर्देश चाहा कि, वह क्या सेवा कर सकता है? श्रीकृष्ण ने कहा—पूर्व वसुदेव की द्वारका इसी स्थल पर थी जिसे तुमने जलमग्न कर दिया था। अब वैसी ही द्वारका पुनः निर्मित करो। सुस्थित देव से वृत्तात जानकर इद्र ने कुबेर को आदेश दिया, जिसने द्वारका का निर्माण करवाया।[98]

कुबेर ने श्रीष्ण को दो पीतांबर, नक्षत्रमाला, हार, मुकुट, कौस्तुभमणि, शारंग धनुष, अक्षय बाण तुणीर, नदन खड्ग, कौमुदी गदा और गरुडध्वज रथ उपहार मे भेंट किये। इसी प्रकार बलराम को दो नील वस्त्र, वनमाला, मूसल, अक्षय वाण तुणीर, धनुष और हल का उपहार दिया गया। श्रीकृष्ण के पूज्य सभी दशार्हों को भी रत्नजटित आभूषणादि उपहार दिये गये। यादवो ने शत्रुसंहारक श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक किया और वे द्वारकाधीश हो गये। और, तब यादव कुल का द्वारका में प्रवेश हुआ।

रुक्मिणी प्रसंग—

श्रीकृष्ण का द्वारका में अनुशासन चल रहा था। श्रीकृष्ण प्रजावत्सल, विनम्र और मृदु नरेश थे। वैभव और सुखाधिक्य के कारण द्वारावती देवपुरी-समकक्ष थी। एक दिन नारद जी राजभवन मे पहुचे। विनम्रता और श्रद्धा के साथ श्रीकृष्ण ने उनका हार्दिक स्वागत किया। एक-प्रश्न उनके मन मे मचल उठा कि श्रीकृष्ण की भांति ही रानिया भी विनम्र हैं अथवा नही? नारद जी अत पुर मे पहुंचे। रानियों ने उनका स्वागत नम्रता से किया, किंतु शृगार-व्यस्त सत्यभामा से उनकी उपेक्षा हो गयी। नारद जी ने निश्चय किया कि सत्यभामा का अपहरण अनिवार्य है। और, वे अत -पुर से लौट गये।[99]

---

९७ (क) त्रिषष्टि · ८/५/३९१-३९५ (ख) भवभावना २५६५

९८ (क) त्रिषष्टि · ८/५ (ख) भवभावना ·२५७१-२५९८
 (ग) हरिवंशपुराण ५१/३२-३७ पृ० ५०१

९९. (क) त्रिषष्टि ··८/६/७-९ (ख) भवभावना: २६३८-३९

नारद जी अब ऐसी अनुपम सुन्दरी के खोज मे थे जिसे श्रीकृष्ण की नवरानी बनाकर सत्यभामा का गर्वभग कर सके। कुण्डिनपुर नरेश भीष्मक की राजकन्या रुक्मिणी त्रैलोक्यसुन्दरी थी। नारद जी के आगमन पर रुक्मिणी ने विनत हो उन्हे प्रणाम किया। ऋषि ने उसे आशीर्वाद दिया—बेटी, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण तेरे पति होगे।[100] जिज्ञासा तुष्ट करते हुए उन्होने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के रूपगुण से सविस्तार परिचित कराया। राजकुमारी के मन मे श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग जागृत हो गया और उसने उन्हे पतिरूप मे वरण करने का निश्चय कर लिया। नारद जी ने स्वय ही रुक्मिणी का एक चित्रफलक तैयार कर श्रीकृष्ण को दिया। इस अनुपम रूपमाधुरी पर श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये। परिणय का प्रस्ताव कुंडिनपुर भेजा गया। कुमार रुक्मि प्रस्ताव से क्षब्ध हो गया। दूत को उसने उत्तर मे कहा—रुक्मिणी का हाथ मैं एक ग्वाले को नही दे सकता। उसका परिणय पूर्वनिश्चित वर शिशुपाल के साथ सपन्न होगा।[101]

रुक्मिणी जब वालिका थी—अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि, वह भी कृष्ण की पट्टरानी बनेगी।[102] धाय फुइबा ने इसकी चर्चा करते हुए कहा कि, कुमार रुक्मि ने ठीक नही किया। फुइबा रुक्मिणी की मनोकामना पूर्ण करने मे सहयोगिनी बनी। एक गोपनीय पत्र मे उसने श्रीकृष्ण को लिख भेजा कि माघ शुक्लाष्टमी को नागपूजा के मिस मैं रुक्मिणी को उद्यान मे लाऊंगी। हे कृष्ण ! यदि रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो वहा आ जाना। अन्यथा वह शिशुपाल की हो जायगी।[103] श्रीकृष्ण के बल पराक्रम से परिचित रुक्मि का सशक मन भी अशात हो गया था। उसने शिशुपाल को शीघ्र आने का निमत्रण भेज दिया। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी प्रणय से अवगत शिशुपाल सेना सहित कुण्डिनपुर पहुँच गया। इधर योजनानुसार फुइबा के

(ग) हरिवंशपुराण ४२/२४-२९

१०० (क) त्रिषष्टि ८/६/१०-१३ (ख) भवभावना। २६४०-४२
(ग) हरिवशपुराण ४२/३०, ४२ प० ५०७

१०१ (क) त्रिषष्टि ८/६/१४-२१ (ख) भवभावना २६४३-४४
(ग) हरिवशपुराण ४२/४३-४८

१०२ (क) त्रिषष्टि ८/६/२४ (ख) हरिवशपुराण : ४२/४९-४६

१०३ (क) त्रिषष्टि ८/६/२८-३० (ख) हरिवशपुराण ४२/५७-६४
(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्यम् सर्ग २, श्लोक ७३

साथ रुक्मिणी उद्यान में पहुँची। बलराम सहित आये श्रीकृष्ण प्रतीक्षारत थे। उन्होंने फुइवा को प्रणाम कर रुक्मिणी को रथारूढ होने का सकेत किया। धात्री की अनुमती से उसने ऐसा ही किया। रथ ने प्रस्थान किया और फुइवा व अन्य दासिया सहायतार्थ चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी कि, श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर ले गये।[104] रुक्मि और शिशुपाल अपनी सेना-सहित पीछा करते हुए समीप आ गये तो इनकी शक्ति से परिचित रुक्मिणी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। श्रीकृष्ण ने बाण चलाकर ताडपक्ति को बेध दिया, चुटकी मे मोडकर अगूठी के हीरे का चूरा कर दिया। उनके पराक्रम का परिचय पाकर रुक्मिणी आश्वस्त हो गयी। श्रीकृष्ण से बलराम ने कहा कि, तुम वधू को लेकर आगे चलो, मैं शत्रुओ को रोककर उनका निग्रह करता हूँ।[105] भाई के आसन्न काल से रुक्मिणी व्याकुल हो गयी और उसने बलराम को बीनती की—भाई का बध न करें। श्रीकृष्ण आगे बढ गये और बलराम ने मूसल से अरिदल का नाश कर दिया। हलधारण करने पर शेष सैन्य भी तितर-बितर हो गया। अकेला रुक्मि बच गया। बलराम ने बाणो से उसका रथ खडित कर कवच विदीर्ण कर दिया। क्षुरप्र बाण से उसकी दाढी-मूछ भी उखाड दी। वे बोले—मेरी अनुज-बधू का वध होने के कारण मैं तेरा बध न करूंगा, जा, छोड देता हूँ।[106] लज्जित होकर रुक्मि लौटकर कुण्डिनपुर न गया, भोजकट नगर बसाकर वही रहने लगा।[107]

द्वारका पहुचते-पहुचते रुक्मिणी के मन मे हीनत्व आने लगा। श्रीकृष्ण की अन्य रानिया अपने साथ वैभव लायी होगी और वह खाली हाथ है। श्रीकृष्ण ने उसे "अनुरागमूर्ति" कहकर उसके सकोच को दूर कर दिया, तथापि उसे सत्यभामा के महल के पास पृथक् महल में रखा और उसके साथ गाधर्व विवाह किया।[108]

---

१०४ (क) त्रिषष्टि ८/६/३१-३९ (ख) हरिवशपुराण ४२/६५-७७
(ग) वसुदेवहिण्डी (घ) पद्मचरित्र सर्ग ३-४

१०५ (क) त्रिषष्टि ८/६/४०-४८ (ख) हरिवशपुराण ४२/७८-८९ पृ० ५१
(ग) हरिवशपुराण मे बलराम को छोडकर कृष्ण जाते नही हैं, किंतु वही पर रहकर युद्ध करते हैं—देखो—हरिवशपुराण—४२/३०-७५
साथ ही शिशुपाल के वध का वर्णन किया है, पर वह त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र मे नही है।

१०६ त्रिषष्टि ८/६/५०-५७ १०७ त्रिषष्टि ८/६/५८

१०८ त्रिषष्टि ८/६/६४

आठ पट्टरानियाँ . अग्र महिषियां—

श्रीकृष्ण की अनेक रानियाँ थी, जिनकी सख्या १६ हजार मानी जाती हैं।[109] इनमे से सत्यभामा एव रुक्मिणी सहित ८ प्रमुख थी जो पट्टरानियाँ थी और अग्रमहिषियाँ कहलाती थी। शेष ६ पट्टरानियों के नाम थे—जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसोमा, गौरी, पद्मावती एव गाधारी।

जावबती गगननदन के विद्याधर राजा जाववान की पुत्री थी और उसकी माता का नाम श्रीमती था। लक्ष्मणा सिंहस्वामी हिरण्यलोम की पुत्री थी जो श्रीकृष्ण की आशाओ की अवमानना किया करता था। लक्ष्मणा का हरण किया गया था।[110] सुसीमा अराक्षरी (आयुस्वरी) नगरी के राजा की पुत्री थी और नमुची की बहन थी जिसे अपनी अजेयता का दर्प था। प्रभास तीर्थ से श्रीकृष्ण नमुचि का वध कर उसे हरण कर लाये थे।[111] गौरी मरुत्देश के राजा वीतभय की पुत्री थी।[112] पद्मावती बलराम की माता रोहिणी के भाई अरिष्टपुर नरेश हिरण्यनाभ की पुत्री थी।[113] गाधारी गाधार देश की पुष्कलावती नगरी के राजा नग्नजित की पुत्री थी।[114] नग्नजित के निधन पर गाधारी का भाई चन्द्रदत्त राजा बना, पर स्वजनों द्वारा अपहृत कर दिया गया था। श्रीकृष्ण ने उसे पुन राज्यारूढ कराया था। उसने गाधारी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ करा दिया।[114]

---

१०९. (क) अन्तगडदसाओ वर्ग १ अ० १ (ख) प्रश्नव्याकरण, ३ धर्मद्वार

(ग) वैदिक परपरा मे रानियो की सख्या १६१०१ मानी गयी हैं। भगवतोप्यत्र-मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तर-शतानि स्त्रीणामभवत्—विष्णुपुराण। इनमे से रुक्मिणी, कालिंदी, मित्रविन्दा, सत्या (नग्नजित की पुत्री), जाम्बवती, रोहिणी, सुशीला, (मद्रराजपुत्री) सत्यभामा और लक्ष्मणा इन ६ रानियो को प्रमुख माना गया है।

महाभारत के अनुसार प्रमुख रानिया—रुक्मिणी, सत्यभामा, गाधारी, शैव्या, हेमवती, जाम्बवती। हरिवशपुराणानुसार लक्ष्मणा ही जलहासिनी है। और, प्रमुख रानिया इस प्रकार हैं—कालिन्दी, मित्रवृन्दा, सत्या, जाम्बवान की कन्या रोहिन्दी, माद्रीसुशीला, सत्यजित की कन्या सत्यभामा, जलहासिनी लक्ष्मणा, शैव्या।

११०. वसुदेवहिंण्डी पृ० ७६ — १११ वही—पृ० ७६

११२ वही—पृ० ७८ — ११३ वही—७८

११४. वही—पृ० ७८

प्रद्युम्न जन्म एवं अपहरण प्रसंग :—

अतिमुक्त मुनि से रुक्मिणी ने एक प्रश्न किया, सत्यभामा भी उपस्थिति थी। मुनिराज ने उत्तर दिया कि तुम्हे श्रीकृष्ण जैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा।[116] तदनतर दोनो रानियो मे विवाद हो गया। प्रत्येक का मानना था कि कथन उसके ही विषय मे था। निर्णयार्थ वे श्रीकृष्ण के पास आयी। दुर्योधन भी उस समय उपस्थित था; जिससे सत्यभामा ने कहा कि मुझे पुत्र हुआ तो वह तुम्हारा जामाता बनेगा। तुरन्त ही यह अधिकार रुक्मिणी अपना जताने लगी। दुर्योधन यही कह सका कि दोनो मे से जिसे भी पुत्र होगा—उससे अपनी पुत्री का विवाह कर दूंगा। सत्यभामा ने एक क्रूर शर्त रख दी कि हम दोनो मे से जिसका पुत्र पहले विवाह करेगा, विवाह के समय दूसरी को अपना सर मुँडवा लेना पडेगा। रुक्मिणी ने शर्त स्वीकार कर ली।[117] बलराम, श्रीकृष्ण, व दुर्योधन शर्त के साक्षी बने।

एक रात्रि रुक्मिणी ने स्वप्न देखा कि वह श्वेत बैल पर स्थित विमान मे आरुढ है। तभी उसकी निद्रा भग हो गयी और एक महर्धिक देव महाशुभ्र देवलोक से च्युत होकर उसके उदर मे प्रविष्ट हुआ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मुनिवाणी सत्य घटित होनेवाली है।[118] ज्ञात होने पर सत्यभामा ने भी एक अनदेखे स्वप्न की चर्चा श्रीकृष्ण से की, वे यथार्थ को भाप गये। सयोग से दोनो रानियो ने एक साथ ही गर्भ धारण किया। रुक्मिणी गूढगर्भा थी, उसमे बाह्य लक्षण नही दिखायी देते थे, पर दोनो ने एक ही दिन पुत्रो को

---

११५. वही—७६

११६ त्रिषष्टि ८/६/११०-११

११७ (क) त्रिषष्टि ८/६/११२-११७

(ख) कुछ परिवर्तन के साथ—हरिवश मे भी यही वर्णन है—देखो हरिवश ४३/१६-२८

११८ उत्तरपुराण मे प्रद्युम्न के पूर्वभवो के विषय मे नारद जी के स्थान पर बलभद्र जी की जिज्ञासा जगती है और वे अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से इस विषय पर प्रश्न करते हैं। कुछ नामो के परिवर्तन के अतिरिक्त विवरण लगभग वही है।

धूमकेतु प्रद्युम्न का हरण श्रीकृष्ण के अक से नही करता, अपितु वह अत पुर के सभी लोगो को मोहनिद्रा मे सुलाकर अपहरण करता है। उसी प्रकार कालसवर के स्थान पर कालसभव और कनकमाला के स्थान पर कचनमाला नाम का प्रयोग हुआ है।

जन्म दिया। रुक्मिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा गया।[119]

शिशु प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण अंक में लिए बैठे थे कि उन्हे लगा कि रुक्मिणी बालक को उठा ले गयी। किंतु, उसे वह नही ले गयी थी। बालक का अपहरण कोई रुक्मिणी का रूप धारण कर ले गया था। इससे माता बड़ी दु खी हुई।[120] प्रद्युम्न के पूर्वभव के शत्रु धूमकेतू ने ही रुक्मिणी का रूप धर अपहरण कर लिया था और वैताढ्यगिरि पर छोड गया कि बालक भूख-प्यास से तडप कर प्राण त्याग देगा। विद्याधर कालसवर बालक को उठा ले गया और उसकी निस्सन्तान पत्नी कनकमाला उसे पोषित करने लगी। कालसवर ने घोषित कर दिया कि उसकी गूढगर्भा पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया है। बालक की खोज मे नारद जी ने सहायता की। उनसे सीमधर स्वामी से पता लगाने का अनुरोध किया गया। सीमन्धर स्वामी ने बताया—बालक मेघकूट नगर में कालसवर के घर बडा हो रहा है, किंतु पूर्वजन्म के कर्मवश उसे अभी सोलह वर्ष वही रहना होगा। मेघकूट मे वे बालक को सकुशल देखकर द्वारका लौटे और श्रीकृष्ण से सारा वृत्तात कह सुनाया। सीमधर स्वामी ने प्रद्युम्न के पूर्वभवो का परिचय भी नारद जी को दिया।[121] १६ वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते प्रद्युम्न गुण-शील और कला-ओ मे ही बढे-चढे नही हो गये अपितु सुन्दर व आकर्षक युवक भी हो गये थे। कचनमाला उन पर मुग्ध हो गयी। रहस्योद घाटन करते हुए—मैं तुम्हारी जननी नही हूँ। उसने निमत्रण दिया—आओ मेरे साथ क्रीडा करो। प्रद्युम्न ने कालसवर और उसके पुत्रो का भय बताकर पिंड छुड़ाना चाहा कि वे मुझे जीवित न छोडेगे। कामाध कचनमाला ने प्रज्ञप्ति और गौरी विद्याए दी और कहा—इनसे तुम कभी किसी से भी पराजित न हो सकोगे। प्रद्युम्न ने दोनो विद्याओ को सिद्ध भी कर लिया और कचनमाला के प्रस्ताव को अनुचित बताकर घर छोडकर चल दिया। प्रतिशोधवश कचनमाला ने अपने पति-पुत्रो को रो-रोकर कहा—प्रद्युम्न मेरा शील भग कर गया है। पिता-पुत्र उसके पीछे भागे और घोर युद्ध हुआ। विद्याधर की पराजय हुई

---

११९ (क) त्रिषष्टि ८/६/१८ (ख) हरिवशपुराण ४२/२९-३०

१२०. (क) त्रिषष्टि ८/६/१२७-१२९ (ख) भवभावना २६४६

१२१ वसुदेवहिण्डी के अनुसार रुक्मिणी के यहाँ कृष्ण देखने जाते हैं तभी कोई देव उसे हरण कर जाता है। देखें—वसुदेवहिण्डी पृ० ८२

और उसे सन्देह हुआ कि इसे विद्याए प्राप्त हैं। लौटकर कालसवर ने कंचनमाला से अपनी विद्याए लौटाने को कहा, किंतु वह तो प्रद्युम्न को दे चुकी थी। पत्नी के दुराचार को समझकर उसने उसकी भर्त्सना की और प्रायश्चित्त हेतु प्रद्युम्न के पास लौटा। तभी नारद जी आ गये जिन्हे प्रद्युम्न ने प्रज्ञप्ति विद्या से पहचान लिया और वह उनके साथ द्वारका के लिए चल पड़े।[122]

सत्यभामा प्रसन्न थी, आज उसके पुत्र के विवाह का दिन था। रुक्मिणी उदास थी। पति-पुत्र युक्त होते हुए भी उसे केश कटवा कर कुरूप बनना होगा। वह चिंतामग्न थी कि इसी समय द्वार पर लघु मुनि ने आकर कहा—मैं १६ वर्षीय दीर्घ तपस्वी हूँ, मुझे आहार दान दो। घर में केवल सिंह केसरिया मोदक थे, जिन्हे श्रीकृष्ण ही पचा सकते थे। मुनि (प्रद्युम्न) सारे मोदक खा गये।[123] इसी समय केश काटने को सत्यभामा की दासिया आ गयी, किन्तु प्रद्युम्न ने सत्यभामा सहित इन दासियो को विद्याप्रयोग से केशरहित कर दिया। शर्त पूरी करवाने मे सहायता के लिए सत्यभामा श्रीकृष्ण के पास गयी जिन्होंने बलराम को रुक्मिणी के पास भेजा। उन्होने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के पास देखा और लौट आये। रुक्मिणी को यह जानकर हर्ष हुआ कि मुनि उसी का पुत्र प्रद्युम्न है। विद्या से प्रद्युम्न ने दुर्योधन की राजकुमारी का अपहरण कर लिया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से सहायता मागी। श्रीकृष्ण ने कहा—मैं तो स्वय १६ वर्षों से पुत्र वियोगी हूँ, सर्वज्ञ नही हूँ, मैं क्या सहायता करू? इस पर प्रद्युम्न ने अनुमति लेकर राजकुमारी को वही उपस्थित कर दिया और उसका भानु के साथ पाणिग्रहण करवाया।[124] इसके पूर्व अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट होने के पहले उसने माता रुक्मिणी को रथ मे बिठाकर श्रीकृष्ण को ललकारा कि मैं इसका अपहरण कर ले जा रहा हूँ, तुममे शक्ति हो तो रोको। भीषण युद्ध हुआ और मुनिवेशधारी प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को शस्त्रविहीन कर दिया। उनकी सेना बिखर गयी। श्रीकृष्ण का दक्षिण नेत्र

---

१२२ (क) त्रिषष्टि ८/६/१३० से ४०४
(ख) प्रद्युम्नचरित्र महासेनाचार्य
(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्य सर्ग ५-८, पृ० १०४ ले० रत्नचन्द्र गणी।
(घ) प्रद्युम्नचरित्र अनुवाद चारित्रविजय, पृ० १४५ तक

१२३ वसुदेवहिण्डी मे मोदक के स्थान पर खीर का वर्णन आता है
देखें—वसुदेवहिण्डी पृ० ९५ प्रथम भाग

१२४. त्रिषष्टि ८/७/१-५

स्फुरित हुआ और उसी समय नारद ने श्रीकृष्ण को बताया कि यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न ही है जिसने सिद्ध कर दिया कि पुत्र पिता से बढकर है।[125]

शाम्ब प्रसंग —

ईर्ष्यावश सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा—मुझे प्रद्युम्न सा ओजस्वी पुत्र चाहिए। श्रीकृष्ण ने अष्टमभक्त युक्त पौषधव्रत ग्रहण किया और हरिनैगमेषी ने प्रकट होकर एक हार देते हुए कहा कि जिस स्त्री को यह हार पहनाकर आप भोग-वासना सेवन करेंगे उसे प्रद्युम्न सा पुत्र होगा। जब श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को निमत्रित किया तो प्रद्युम्न प्रज्ञप्ति विद्या से सारा रहस्य जान गये। जाबवती को सारी बात बताकर उसे सत्यभामा का रूप दे दिया और श्रीकृष्ण के पास भेज दिया। वह धन्य हो गयी। प्रसन्न और तुष्ट मन से वह लौट आयी। तभी सत्यभामा पहुँची। श्रीकृष्ण आश्चर्य मे पड गये। सोचा सत्यभामा कामोत्सुक हो पुन आयी है। उन्होने पुन क्रीडा की। तभी प्रद्युम्न ने भेरी बजा दी। सत्यभामा का हृदय भय-कपित हो गया श्रीकृष्ण जान गये कि प्रद्युम्न ने सत्यभामा को छल लिया है। अब इसे कायर पुत्र होगा। इसका हृदय भय से जो भयभीत हो गया था। कालातर मे जाबवती ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम साब रखा गया।[126] और, सत्यभामा के पुत्र का नाम रखा गया भीरु कुमार।

वैदर्भी प्रद्युम्न परिणय :

रुक्मिणी अपने पितृगृह से बिगडे सबधो को सुधारना चाहती थी। भाई रुक्मि की पुत्री वैदर्भी के साथ प्रद्युम्न के विवाह को अच्छा साधन समझ उसने परिणय प्रस्ताव भेजा, किंतु रुक्मि ने अनादर पूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। प्रद्युम्न ने माता को आश्वस्त किया की यह विवाह अवश्य होगा और माता की स्वीकृति से होगा। पूर्वभव के सबधो के कारण प्रद्युम्न का साब से विशेष स्नेह था। दोनो किन्नर और चाण्डाल रूप मे भोजकट नगर पहुँचे। रुक्मि और वैदर्भी इनकी सगीत कला से प्रभावित हुए। राजकुमारी वैदर्भी ने पूछा—तुम द्वारका से आये हो तो क्या प्रद्युम्न को भी जानते हो ? इनके मुख से प्रद्युम्न की प्रशसा सुन वैदर्भी बड़ी तुष्ट और प्रसन्न हुई। राजा का हाथी मतवाला होकर विनाश करने लगा। राजा ने घोषणा की जो इस हाथी को वश मे कर लेगा उसे मुह-

---

१२५ त्रिषष्टि ८/६/४८-६०

१२६ उत्तरपुराण मे सभव अथवा जाम्बकुमार नाम आता है।

मागा पुरस्कार दिया जाएगा। प्रद्युम्न ने हाथी को नियन्त्रित कर लिया। भोजन में कठिनाई बताकर राजकुमारी को पुरस्कार मे माग लिया। क्रुद्ध होकर राजा ने इन लोगो को बाहर निकाल दिया। विद्याबल से प्रद्युम्न ने नगर के बाहर भव्य महल बनवाया। एक रात्रि को प्रद्युम्न अपने वास्तविक रूप मे प्रज्ञप्ति विद्या के बल से वैदर्भी के कक्ष मे पहुँच गया। वैदर्भी की सहमति से दोनो का गाधर्व विवाह हो गया। अपना नाम गोपनीय रखने का निर्देश देकर प्रद्युम्न चला गया। सौभाग्य और परिणय सूचक चिन्हों को देख सबने अनेक प्रश्न किये, पर वैदर्भी मूक बनी रही। कुपित होकर राजा ने किन्नर चाडाल को बुलाकर राजकुमारी को उन्हे दे दिया। नगर बाहर के महल मे जब ये पहुँचे तो बदीजन प्रशस्तिगान करने आये और सारा रहस्य खुला कि किन्नर और चाडाल तो प्रद्युम्न-साब हैं। राजा ने इन्हे सादर अपने महल मे बुलवाया और वैदर्भी-प्रद्युम्न परिणय सपन्न कराया।[127]

जरासध युद्ध—

प्रवासी व्यापारियो से राजगृह के जीवयशा ने सुना कि समुद्र तट पर एक सपन्न नगरी द्वारका है जहाँ वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण का शासन है।[128]

---

१२७. (क) त्रिषष्टि ८/७/३८/८६
(ख) प्रद्युम्नचरित्रम्—महासेनाचार्य सर्ग ८, ९. पृ० ८९-१७४
(ग) प्रद्युम्नचरित्र—रत्नचद गणि
(घ) वसुदेवहिण्डी—पृ० १८ से १०० में प्रस्तुत कथा अन्य रूप से आयी है। विस्तारभय से उसे यहा नही लिखा गया है।

१२८ उत्तरपुराणानुसार जलमार्ग से यात्रा करते हुए मगध के कुछ व्यापारी भूल से द्वारका पहुच गये और वहा के वैभव से चकित रह गये। उन्होंने वहा से कुछ रत्न खरीदे और राजगृह आकर ये रत्न उन्होने जरासध को भेंट किए। अमूल्य रत्न देखकर जरासध ने पूछा कि ये रत्न कहाँ से लाए गये हैं, तो व्यापारियो ने द्वारावती नगरी और श्रीकृष्ण का वर्णन किया।
देखें—७१/४२-६४ पृ० ३६८-३७९
हरिवशपुराण के अनुसार जरासंध राजा के पास अमूल्य मणिराशियो के विक्रयार्थ एक वणिक पहुचा। ५०/१-४
पाडवपुराण (शुभचन्द्राचार्य द्वारा रचित) के अनुसार एक विद्वान ने जरासध को रत्न अर्पित किए और उनसे ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण यादवकुल सहित जीवित हैं। देखें—१९/८/११ पृ० ३९

प्रतिशोध की ज्वाला में जीवयशा फंक उठी कि, मेरे पति का हत्यारा अब तक जीवित कैसे है? जरासंध ने पुत्री को शांत करते हुए तुरन्त विशाल सेनासहित प्रयाण किया। नारद ने श्रीकृष्ण को युद्ध की पूर्व सूचना दे दी और उन्होंने अरिष्टनेमि से युद्ध का परिणाम जानना चाहा। अरिष्टनेमि ने मुस्कुरा कर "ओम्" का उच्चारण कर दिया, जो युद्धार्थ उनकी सहमति भी थी और श्रीकृष्ण-विजय का पूर्व सकेत भी।[129]

युद्धोत्साहित श्रीकृष्ण सैन्य सगठन करने लगे।[130] प्रयाण कर मथुरा से ४५ योजन दूर सेनपल्ली में शिविर स्थापित किया गया।[130A] यही कुछ विद्याधरों ने एकत्रित होकर श्रीकृष्ण से सहयोग का प्रस्ताव किया और कहा—वसुदेव, प्रद्युम्न, शांव आदि को हमारे साथ जरासंध के सामने भेज दिया जाये। हम उसके खेचर विद्याधरों को रणभूमि तक पहुंचने से रोककर माया के प्रभाव से युद्ध की रक्षा कर लेंगे। ऐसा किया भी गया। जरासंध की सेना ने यादव शिविर से ४ योजन दूर अपना शिविर लगाया। श्रीकृष्ण की शक्ति से इस सेना मे वडा आतक था। मंत्री हसक ने जरासंध से कहा कि आक्रमण के पूर्व शत्रु का वलावल हमें आंकना चाहिए क्योकि कृष्ण पक्ष वड़ा सशक्त है। जरासंध ने मन्त्री को फटकार दिया। कहा कि मैं यादवों का सर्वनाश कर दूगा।

जरासध ने एक हजार आरे वाला चक्रव्यूह रचा, जिसके केंद्र मे वह स्वय अपने पुत्रो व ५००० राजाओं सहित रहा। प्रत्येक आरे में १०० हाथी, २०० रथ, ५०० अश्व और १६००० सैनिको सहित एक-एक राजा और चक्र की परिधि में ६२५० राजाओं को नियुक्त किया गया। पृष्ठभाग में गाधार व संधवसेना, दक्षिण में १०० कौरव भी नियुक्त किये गये। इसके आगे शकट व्यूह रचा गया। यादवों ने गरुड व्यूह रचा। अरिष्टनेमी युद्ध में उनके साथ रहे। शक्रेन्द्र ने अपना विशाल रथ भी सारथी मातलि के साथ भेजा।

---

१२९ पाडवपुराण—१९/१२-१४ पृ० ३९

१३०. त्रिषष्टि · ८/७/१९६

१३०अ श्वेताम्बर परपरा के जैन ग्रन्थों के अनुसार अरिष्टनेमि द्वारा यह स्वीकृति इस कारण सभव है कि उस समय वे ३ ज्ञान के धारक थे और गृहस्थाश्रम मे थे। वे जानते थे कि प्रतिवासुदेव के साथ वासुदेव का युद्ध भी और उसमे वासुदेव की विजय भी सर्वथा सुनिश्चित रहती है।

प्रचंडता के साथ ही समरारंभ हुआ। दोनों पक्षों के वीच विकट घात-प्रतिघात होने लगा। आरंभ में ही यादवों के सशक्त प्रहार से तिलमिलाकर जरासध सैन्य भाग खडा हुआ, पर क्रोध व प्रतिहिंसा का साक्षात रूप जैसे वने हुए जरासध ने रणागण में आकर जो प्रहार किये तो समुद्रविजय के अनेक पुत्र धराशायी हो गये। जरासध के २८ पुत्रों का वलराम नें वध कर दिया तो उन्हे जरासंध ने गदा प्रहार से अचेत कर दिया। श्रीकृष्ण ने जरासध के ६ पुत्रो का वध कर दिया तो उसने इतना प्रचड आक्रमण किया कि एक वार तो श्रीकृष्ण के वध हो जाने का प्रवाद भी सेना में व्याप्त हो गया। मातली के अनुरोध पर अरिष्टनेमि ने पौरदर शखध्वनित कर शत्रु-पक्ष को कपित कर दिया[131] और वाणवर्षा से व्यापक सहार किया। प्रतिवासुदेव का वध वासुदेव के हाथों ही होना चाहिये इस मर्यादानुसार उन्होने स्वय जरासंध का वध नही किया।[132] अव श्रीकृष्ण व जरासंध आमने-सामने थे। जरासंध ने अनेक विकट अस्त्र-शस्त्र जब विफल रहे तो उसने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग किया, पर वह भी श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा कर उनके ही हस्तगत हो गया।[133] उसी समय घोषणा हुई कि नौवा वासुदेव उत्पन्न हो गया है। जब श्रीकृष्ण के सावधान करने पर भी जरासध सन्मार्ग पर नही आया तो श्रीकृष्ण ने चक्रप्रहार से जरासध का शिरच्छेद कर दिया।[134] सर्वत्र श्रीकृष्ण की जय-जयकार होने लगी।[135]

---

१३१ त्रिषष्टि. ८/७/४२०-४२६ १३२ त्रिषष्टि ८/७/४३२

१३३. (क) त्रिषष्टि : ८/७/४४६-४५७ (ख) हरिवशपुराण · ४२/६७/६०१

१३४. वैदिक परपरा में युद्ध का वर्णन भिन्न ही प्रकार का है। महाभारत के अनुसार युद्ध नही होता, अपितु केवल जरासध वध होता है। कस वध के पश्चात् जरासध श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मान बैठा था। उसने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किया, किंतु विजय उसे नही मिली। मथुरा की प्रजा को व्यर्थ ही में पीडित देखकर श्रीकृष्ण ने यह नगर त्यागकर द्वारका का निर्माण किया। श्रीकृष्ण इस तथ्य से अवगत थे कि युद्ध में जरासध का वध सभव नही है। अत वे भीमसेन व अर्जुन के ब्राह्मण वेश में जरासध के दरबार मे पहुचे। राजा ने स्वागत कर इनके आगमन का प्रयोजन पूछा। श्रीकृष्ण ने शेष दो ब्राह्मणो के विषय मे कहा कि अभी इनका मौनव्रत है। अर्द्धरात्रि को वार्ता सभव होगी, इन्हें सादर यज्ञशाला मे ठहराया गया। अर्द्धरात्रि को जरासध यज्ञशाला मे पहुचा। उसने कहा—आप लोगो का तेज देखते हुए आप ब्राह्मण तो प्रतीत नही होते ? श्रीकृष्ण ने [illegible]

जरासंध की ओर से युद्ध करने वाले राजाओं की क्षमा याचना पर श्रीकृष्ण ने उन्हे अभय दान किया, जरासंध के पुत्रों का भी स्वागत किया। उसके एक पुत्र सहदेव को मगध राज्य के चतुर्थांश का स्वामी बनाया। समुद्रविजय सुत महानेमि को शौर्यपुर का, हिरण्याभपुत्र रुक्मनाभ को कौशल का और उग्रसेन पुत्र धर को मथुरा का राज्य सौंपा गया। शत्रुसंहार असभव हो जाने पर प्रतिज्ञानुसार जीवयशा ने अग्निप्रवेश कर लिया।[136] यादवों ने भव्य विजयोत्सव मनाया और सेनपल्लि का नामकरण "आनंदपुर" के रूप मे किया गया।[137] श्रीकृष्ण विजयी होकर द्वारका पहुचे। यहा पर श्रीकृष्ण का अर्धचक्रेश्वर के रूप में अभिषेक किया गया।

बाणासुर वध

बाणासुर श्रीनिवासपुर का खेचरपति था जिसकी अनिंद्य-सुंदरी कन्या उषा थी। उसकी आराधना से प्रसन्न हो गौरीविद्या ने उसे बताया

अपना प्रयोजन स्पष्ट किया, और कहा कि तूने क्षत्रिय राजाओ को बंदी बनाया है और अब उनकी महादेव के आगे बलि देना चाहता है। इसी कारण हम तेरा वध करने आए हैं। तू क्षत्रिय होकर क्षत्रियो का विनाश करना चाहता है। और, हम कष्टित जनो का त्राण करते हैं। या तो बंदी नरेशो को मुक्त कर दे या संघर्ष के लिए तत्पर हो जा। उसने प्रथम शर्त स्वीकार न की। तब श्रीकृष्ण ने उससे विकल्प मागा कि हम तीनो मे से किसके साथ युद्ध करना चाहता है? जरासध ने भीमसेन को चुना। दोनो के मध्य मल्लयुद्ध आरभ हुआ। दोनो ने अपने-अपने अनेक कौशल दिखाये। १४ दिवस से युद्ध अनिर्णित अवस्था मे अविरल रूप से चलता रहा। चौदहवें दिवस जरासध थक कर शिथिल हो गया था। श्रीकृष्ण ने भीम को प्रेरित किया कि थकित शत्रु का सुगमता से वध किया जा सकता है। भीम ने अपनी भुजाओ पर जरासंध को उठाकर चारो ओर घुमा दिया और उसको चक्कर लगाकर पृथ्वी पर दे मारा। घुटने के प्रहार से उसकी पीठ की हड्डी तोड दी; उसे पृथ्वी पर खूब रगडा और अतत उसकी टांगे पकडकर चीर डाला। इस प्रकार जरासध यमलोकगामी हो गया।

श्रीकृष्ण ने बंदी राजाओं को मुक्त किया और जरासध के पुत्र सहदेव को राज्यारूढ कर इंद्रप्रस्थ लौट गए।

देखें—महाभारत सभापर्व अ० १९ से २२ तक।

१३५ (क) त्रिषष्टि ८/७/४५३-४५७ (ख) हरिवंशपुराण ५२/८३-८४ पृ० ६०२

१३६ (क) त्रिषष्टि ८/८ १३७. (क) वही ८/८/२८

(ख) हरिवंशपुराण . ५३/४१-४२ पृ० ६०६

कि श्रीकृष्ण का पौत्र, प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध उसका पति होगा और वह अनिरुद्ध के अनुराग मे खो गयी। गौरी विद्या के प्रिय शकरदेव ने बाणासुर को वरदान दिया था कि वह सभी युद्धो में अजेय रहेगा। गौरी के सतर्क करने पर शंकरदेव ने वरदान में जोड़ दिया था कि "स्त्री विषयक युद्ध के अतिरिक्त"। बाण उषा के लिए विशिष्ट वर की खोज में था। उषा अनिरुद्ध के स्वप्नो मे खोयी रहती थी। विद्याधरी चित्रलेखा रात्रि को सोये अनिरुद्ध को उठा लायी और उषा ने उसके साथ गाधर्व विवाह कर लिया। घोषणापूर्वक जब अनिरुद्ध उषा का हरण कर ले जाने लगा तो बाण ने घेर लिया। युद्ध हुआ, पर अनिरुद्ध अजेय रहा तो बाणासुर ने उसे नागपाश में बाध लिया। द्वारका में प्रज्ञप्ति विद्या से का पता चलने पर तत्काल अनिरुद्ध श्रीकृष्ण, बलराम व प्रद्युम्न वहा पहुंच गये। बाण ने कहा-एक चोर को बचाने दो चोर (पिता और पितामह) आये हैं। अंतत युद्ध हुआ जो विद्याओ और शस्त्रो के मध्य युद्ध था। वासुदेव श्रीकृष्ण ने बाणासुर का बध कर दिया और उषा-अनिरुद्ध को लेकर द्वारका आ गये और उनका विवाह हुआ।

अरिष्टनेमि : प्रव्रज्याग्रहण—

भगवान अरिष्टनेमि २२ वें तीर्थंकर थे जो समुद्रविजय के पुत्र थे। इस प्रकार वे श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण द्वारा कस-सहार के समय वे आठ वर्ष के थे।[138] जरासंध वध कर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण त्रिखडेश्वर हो गये और यादवजन द्वारका निवासी हो गये थे।[139] अरिष्टनेमि भी यही विकसित हो अब युवा हो गये थे। एक दिन वे राज्य-शस्त्रागार में गये और सुदर्शन को उगली पर धारण कर लिया, शारंग धनुष को मोड दिया, कौमुदी गदा को कधे पर धारण कर लिया और पाचजन्य शख को फूक कर समस्त द्वारका को थरथरा दिया।[140] मान्यता थी कि यह सारा पराक्रम श्रीकृष्ण के लिए ही सभव है—जो मिथ्या हो गयी थी। श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के बल से चकित रह गये। एक दूसरे की फैली भुजा को झुकाने मे भी अरिष्टनेमि विजयी रहे।[141] श्रीकृष्ण ने कहा—बन्धु! जैसे बलराम मेरी शक्ति के आगे सारे ससार को तृणवत् मानते हैं, वैसे ही अब मैं तुम्हारी

---

१३८ जातो अट्ठवरिसो, एत्थतरेऽथ हरिणा कसे विणिवाइए।
उत्तराध्ययन सुखबोधा, पृ० २७८

१३९. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र—पर्व ८ सर्ग ५ से ८
(ख) चउप्पन-महापुरिस-चरिय (ग) सुखबोधा पृ० २७८.

१४० भवभावना पृ० १९७ १४१ उत्तराध्ययन सुखबोधा-२७८

शक्ति के समक्ष ससार को तिनके सा मानता हूँ ।[142] वे अरिष्टनेमि का आदर करने लगे और उन्हे अपनी राज्यसत्ता के लिए चिन्ता भी होने लगी जो इस घोषणा से समाप्त हुई कि अरिष्टनेमि कुमारावस्था मे ही प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेंगे । शक्ति परीक्षण का यह प्रसग हरिवशपुराण मे अन्य प्रकार से भी वर्णित है ।[143]

अनासक्त अरिष्टनेमि और राजीमति

अरिष्टनेमि आरम्भ से ही चिन्तनशील, गभीर और अनासक्त स्व-भाव के थे और आयु के साथ-साथ उनकी इस प्रवृत्ति मे भी विकास होता गया। उनकी जगद्विमुखता से माता-पिता चिंतित थे । उन्होंने अनेक वार उपयुक्त विवाह प्रस्ताव भी रखे, किंतु दीक्षोत्सुक पुत्र अस्वीकार ही करता रहा । अरिष्टनेमि के पराक्रम को मद करने के प्रयोजन से श्रीकृष्ण भी उनके परिणय के पक्ष में थे । इस तर्क के साथ उन्होंने अरिष्टनेमि से विवाहार्थ आग्रह किया कि आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने भी विवाह किया था तथा दापत्य जीवन विताया था । अतत वे सहमत हो गये और श्रीकृष्ण ने भोजवशी राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती के साथ उनका सबध स्थिर कर दिया । यथासमय वरयात्रा आरम्भ हुई । वर अरिष्टनेमि का रथ जब कन्या के द्वार के समीप पहुँचा, उन्होने अनेक पशु-पक्षियो को का करुण, आर्त स्वर सुना । पूछने पर ज्ञात हुआ कि बारात के सामिष भोजन के लिए अनेक पशु पक्षियो को समीप ही मे एकत्रित कर रखा है । करुणार्द्र अरिष्टनेमि ने पशु पक्षियो को मुक्त करा दिया और तोरण से ही लौट कर द्वारका पहुँच गये । उत्सव अपूर्ण और वातावरण शोकाकुल हो गया ।[144] अरिष्टनेमि ने मासाहार के विरुद्ध सफल विद्रोह जन-जन मे फैला दिया । द्वारका मे एक वर्ष तक वर्षीदान कर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली । राजीमती ने भी सयम ग्रहण किया । वैदिक परपरा मे राधा और कृष्ण को जो स्थान प्राप्त है, जैन परपरा मे वैसा ही स्थान राजीमती और अरिष्टनेमि का है । राजीमती के मन में भौतिक वासना के लिए कोई स्थान न था । वह

---

१४२ (क) त्रिषष्टि ८/६, २५ से २६ पृ० १३०-१३६ । (ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा, प० २७८ (ग) भवभावना ३०२६ (घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ।

१४३. हरिवशपुराण : आचार्य जिनसेन पृ० ५५

१४४ उत्तर पुराण में वर्णित है कि अरिष्टनेमि के मन मे करुणा को प्रबल बना-कर उन्हें विरक्त कर देने के प्रयोजन से स्वयं श्रीकृष्ण ने ही बाडे मे पशुओ को एकत्रित करवाया था ।

देह की नही देही की उपासिका थी। यही कारण है कि वह भी अरिष्टनेमि के ही मार्ग पर बढी और उनसे भी पहले मुक्त हो गयी।[145]

द्रौपदी स्वयंवर कथा

राजा द्रुपद की सुता द्रौपदी जैन परम्परा में सती-शिरोमणि के रूप में मान्य है। पाचाल नरेश की राज्यकन्या होने के कारण उसे "पाचाली" भी कहा जाता है। उसकी माता का नाम चूलनी था। द्रौपदी स्वयवर हेतु अनेक राजा-युवराजों को आमत्रित किया गया था। प्रथम निमत्रण श्रीकृष्ण और दशार्हों को भेजा गया था।[146] वे द्रुपद की राजधानी कपिलपुर पहुँचे। अनेक शूर वीर नरेश उपस्थित थे किंतु इससे अविचलित द्रौपदी ने वरमाला पाँचो पाडवो को धारण करा दी।[147] एक कन्या द्वारा पाँच पुरुषो का वरण यह अद्भुत और अभूतपूर्व प्रसंग था। क्या यह अनीतियुक्त नही है? अब राजा द्रुपद क्या करे? नीतिमान श्रीकृष्ण के मत की ही प्रतीक्षा सभी करने लगे। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के कृत्य में औचित्य का अनुमोदन कर दिया और द्रौपदी का विवाह पाँचो पाडवों के साथ संपन्न हो गया।[148]

श्रीकृष्ण के इस मत की कि द्रौपदी ने कोई अनुचित कार्य नही किया है, पुष्टि भी तत्काल हो गयी, जब एक चारण लब्धिधारी श्रमण ने भी यह स्पष्ट किया कि कर्मफलानुसार द्रौपदी को ऐसा ही करना था, चाहे यह लोक परंपरानुरूप न लगे। उसने पूर्वभव में निदान ही ऐसा किया था।

---

१४५. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन पृ० ९४ ले० देवेन्द्र मुनि शास्त्री।

१४६. (क) ज्ञातासूत्र अध्याय १६ (ख) त्रिषष्टि ८/१०

१४७. (क) ज्ञातासूत्र अ० १६ (ख) पांडवचरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग ४

१४८ वैदिक परंपरा मे भी द्रौपदी के ५ पति तो हैं, किंतु उसने स्वयवर सभा में पाचो का वरण नही किया था। स्वयवर में राधावेध की कसौटी रखी गयी थी, और अर्जुन उसमे सफल रहा था। द्रौपदी ने अर्जुन को ही वरमाला पहनाई थी। अर्जुन ने माता कुती से कहा कि मां मैं एक असाधारण वस्तु लेकर आया हू। मा ने इस बात को सहजता के साथ लिया और अर्जुन से कहा कि लाए हो तो पाचो भाई उसे बाट लो।

पाडव चरित्र मे देवप्रभसूरि ने भी राधावेध का चित्रण किया है। अर्जुन के सफल रहने पर द्रौपदी ने उसे वरमाला पहनाई। किंतु, द्रौपदी का मन पाचो पांडवो के प्रति अनुरक्त था, इस कारण माला पाचो के गले में दिखाई देने लगी।

मुनिराज ने द्रौपदी की पूर्वभव कथा भी कही कि, कभी चंपानगरी मे तीन ब्राह्मण सहोदर रहा करते थे। एक भाई सोमदत्त के यहाँ तीनो का भोजन था और उसकी पत्नी नागश्री ने कई व्यजन तैयार किये, पर तुम्बी की शाक कड़वी होने के कारण नही रखी। उसने वह शाक धर्मरुचि अणगार को वहरा दी। आचार्य घोष ने विकृति भाँप कर किसी निर्दोष स्थान पर शाक डाल देने का आदेश दिया। थोडा सा शाक भूमि पर गिरा और अनेक चीटियाँ मर गयी तो धर्मरुचि को अनुकम्पा हो आयी और शेष शाक स्वयं खाकर उन्होंने समाधिपूर्वक देह त्याग दी। इस घटना से सभी नागश्री की भर्त्सना करने लगे। पति ने उसे घर से ही निकाल दिया। अनेक कष्ट पाकर जब उसकी मृत्यु हुई तो नरक मे गयी, फिर चाडालिनी बनी। यह क्रम चलता रहा। एक भव मे वह सागरदत्त सेठ की पुत्री सुकुमारिका के रूप में जन्मी। पिता ने जिनदत्त के पुत्र सागर के साथ सुकुमारिका का विवाह कर दिया और सागर को घर—जवाँई रख लिया। सुकुमारिका से सागर को सुख न मिला। उसका देह तो अगारो की भाँति दाहक था। आतकित सागर सुकुमारिका को त्याग कर चला गया। कन्या का विवाह तब अन्य युवक से हुआ और वह भी छोड भागा। पिता ने यह परिणाम पुत्री के पापोदय का माना। सुकुमारिका ने साध्वी गोपालिका के पास सयम ग्रहण कर लिया और छट्ठ तप आरम्भ किया। गुरु की अनुमति न होने पर भी वह उद्यान मे सूर्य आतापना लेने लगी। उद्यान मे वेश्या देवदत्ता अपने पाँच प्रेमियों के सग क्रीड़ा कर रही थी। साध्वी के चंचल मन मे वासना अंगड़ाइयाँ लेने लगी। उसने निदान किया कि इस तपस्या के फल-स्वरूप मैं भी पाच पतियो वाली बनू। साध्वी का जीव ही वर्तमान मे द्रौपदी के रूप में है। मुनिराज ने कहा कि लोकरीति के विरुद्ध आचरण से कि यह पांच पतियो वाली है, इसकी निंदा तो हो सकती है, किंतु पूर्वकृत तपस्या के फलस्वरूप उसे महान सती का गौरव भी प्राप्त होगा।

कौरवो के मन में राज्य-लोभ जागा और पाडवों से राज्य छीन लिया। राज्य को पुन हस्तगत करने के लिये युधिष्ठिर ने द्यूत का सहारा लिया। उन्होने द्रौपदी को भी जुए के दाव पर लगा दिया और हार गये। दुर्योधन ने द्रौपदी को तो लौटा दिया पर समस्त राज्याधिकार उसी के पास रह गये। पाडवो को वनवास मिला। वनवास की अवधि पूर्ण हुई और पाडव द्वारका पहुचे और सुखपूर्वक रहने लगे। दशार्हों की पुत्रियो से इनके विवाह भी हुए।

द्रौपदी-हरण : श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार :

कलहप्रिय नारद जी ऊपर से शांत और गंभीर, भद्र और विनीत तो लगते थे, किंतु ये कलुषित हृदय भी कम न थे।[150] किसी समय वे पांडवों के राजभवन मे आये। माता कुंती और पांडवों ने उनका अतिशय आदर सत्कार किया, किंतु उन्हें असंयत, अविरत, अप्रतिहत, प्रत्याख्यात, पापकर्मी मानकर द्रौपदी ने ऐसा नहीं किया, न ही उनकी पर्युपासना की।[151] इस उपेक्षा से रुष्ट नारद जी ने सोचा—द्रौपदी गर्विष्ठा हो गयी है, उसका अप्रिय करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।[152] उन्होंने सोचा, पतिवियोग से बड़ा कोई कष्ट किसी सती नारी के लिए नहीं हो सकता, किंतु उन्हें यह विश्वास भी था कि श्रीकृष्ण के भय से दक्षिण भरतार्द्ध का कोई राजा द्रौपदी का अपहरण करने को तत्पर न होगा। अतः वे धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र की राजधानी अमरकंका पहुचे, जहां पद्मनाभ नामक राजा का शासन था। उसके अंतःपुर में ७०० सुंदरी रानिया थी। अपने इस वैभव पर गर्वित होते हुए उसने पूछा, ऋषिराज, आपने ऐसी सुंदरियां अन्यत्र भी कभी देखी हैं?[153] उपहास के स्वर मे नारद जी ने उत्तर दिया कि यदि तुम इसे ही सुंदरता मानते हो तो फिर यह जानते ही नहीं कि सुंदरता कहते किसे हैं? पांडव रानी द्रौपदी के सौंदर्य के सामने तुम्हारी रानियां तो कुछ भी नही हैं। द्रौपदी प्राप्ति की कामना से प्रेरित राजा पद्मनाभ ने सांगतिक देव (पातालवासी) को आज्ञा दी; जो सोती हुई द्रौपदी को अमरकंका-राजभवन में ले आया। प्रातः जागृत होने पर एक परपुरुष को समीप पाकर वह सकुचा गयी और परिस्थिति को समझ न सकी। राजा ने उसे आश्वस्त करते हुए अपना वैभव एवं पराक्रमपूर्ण परिचय दिया और आग्रह किया कि द्रौपदी उसे अपना ले। आसन्न संकट से अवगत हो द्रौपदी ने राजा को सचेत किया कि तुमने छलपूर्वक मेरा अपहरण किया है। तुम्हारी कुशलता इसी में है कि

---

१५०. इमं च ण कच्छुल्लणारए दंसणेण अइभद्दए विणीए अंतो अतोय कलुसहिए।
—ज्ञाताधर्म अ० १६ पृ० ४६१;

१५१. (क) ज्ञाताधर्म अध्याय १६ पृ० ४९४ (ख) त्रिषष्टिशलाका ८/१०/२
(ग) हरिवंशपुराण के अनुसार द्रौपदी आभूषण धारण करने मे व्यस्त थी, अतः उसने नारद की ओर देखा नहीं—हरिवंशपुराण ५४/५

१५२. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ. १६ (ख) हरिवंशपुराण ५४/६-७; त्रिषष्टि ८/१०/३

१५३. (क) त्रिषष्टिशलाका : ८/१०/५-९ (ख) हरिवंशपुराण ५४/८-९

मुझे पुन हस्तिनापुर के राजभवन मे पहुचा दो, अन्यथा श्रीकृष्ण तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे। वे मेरे भ्राता हैं।[154] तभी पद्मनाभ ने अट्टहास-पूर्वक कहा कि श्रीकृष्ण का इस धातकी खण्ड मे कोई वश नही है। यहा के वासुदेव कपिल हैं, श्रीकृष्ण नही। इस लपट से आत्मरक्षा के लिए नीति ही सहायक हो सकती है—ऐसा मान कर द्रौपदी ने राजा से कहा कि, स्त्री अपने पति के प्रेम को इतना शीघ्र कैसे भूल सकती है ? मुझे कुछ अवसर दो। उसने एक माह की अवधि मागी।[155] इस अवधि में यदि मुझे कोई लेने नही आया तो मैं आपकी हो जाऊँगी। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। द्रौपदी ने अभिग्रह लिया कि मैं पति के बिना एक माह तक भोजन नही करूगी।

हस्तिनापुर मे द्रौपदी की खोज होने लगी। असफल पाडवो ने माता कुती से निवेदन किया कि द्वारका जाकर वे श्रीकृष्ण से सहायता मागे। श्रीकृष्ण ने पक्का आश्वासन दिया। कालातर मे नारद जी द्वारका आए तो श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी आज कल किसी अज्ञात स्थल पर है। आप सर्वत्र विहारी हैं। शायद आपने उसे कही देखा हो ? श्रीकृष्ण को उनसे पता चल गया कि द्रौपदी का अपहरण कर उसे अमरकका ले जाया गया है। उन्होने इस आशय का संदेश हस्तिनापुर भेजकर पाडवो को सूचना दी कि वे चतुरगिणी सेनासहित वैतालिक समुद्र तट पर मेरी प्रतीक्षा करे। वहा पहुचने पर समुद्र पार करने की समस्या आयी। श्रीकृष्ण ने लवणसमुद्र के अधिष्ठायक देव सुस्थिर की आराधना कर उससे आग्रह किया कि वह उनके रथो को अमरकका पहुचा दे। समुद्र ने देव के प्रभाव से मार्ग दे दिया और छहो रथ अमरकका पहुच गये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से उनका सारथी दारुक पद्मनाभ के पास पहुचा और अत्यत कठोरता के साथ उसे अपने स्वामी का सदेश देते हुए कहा कि, आज अगर तू जीवित रहना चाहता है तो द्रौपदी देवी को वासुदेव श्रीकृष्ण को सौंप दे, अन्यथा युद्ध के लिये बाहर आ।[156]

अहकारी पद्मनाभ ने द्रौपदी को लौटाने से इनकार कर दिया और युद्ध की चुनौती स्वीकार कर ली। वह सेनासहित नगर से बाहर आया।

---

१५४ ज्ञाताधर्मकथा, हरिवशपुराणादि के अनुसार श्रीकृष्ण द्रौपदी के पति के भाई थे।

१५५ (क) हरिवशपुराण मे भी एक मास की चर्चा है। किंतु ज्ञाताधर्म कथा मे यह अवधि ६ मास की है। द्रौपदी षष्ठ-षष्ठ आयबिल तप करती हुई रहने लगी। देखें—ज्ञाताधर्मकथा-अ० १६.

(ख) त्रिषष्टि ८/१०/२० (ग) हरिवशपुराण ५४/३६

१५६ ज्ञाताधर्म० अ० १६

श्रीकृष्ण ने पाडवों से पूछा कि युद्ध मैं करूँगा या तुम ? पाडवो ने कहा हम ही युद्ध करेंगे । आप देखिये । आज या तो हम हैं, या राजा पद्मनाभ । श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम यह कहते हो कि राजा हम हैं, पद्मनाभ नही तो तुम्हारी यह गति न होती । मैं राजा हूँ, पद्मनाभ नहीं—यह प्रतिज्ञा कर मैं युद्ध करता हूँ, तुम देखो ।[157]

यह कह कर रथारूढ श्रीकृष्ण पद्मनाभ के समक्ष आये ।[158] उन्होने पाचजन्य शख फूका तो शत्रुसैन्य का तृतीय भाग नष्ट हो गया । शारंग धनुष के टकार से अन्य तृतीयाश छिन्न-भिन्न हो गया । आतकित पद्मनाभ नगर मे घुस गया और द्वार बद करवा दिये । श्रीकृष्ण वैक्रियलब्धि से विशाल नृसिह रूप में विकुर्वित हुए और उन्होने घोर गर्जन सहित पृथ्वी पर पाद प्रहार किया । दुर्ग की प्राचीरे ध्वस्त हो गयी । नगर मे त्राहि-त्राहि मच गयी ।[159] भयातुर पद्मनाभ स्नान कर गीले वस्त्रो मे नारियो को साथ लेकर द्रौपदी सहित श्रीकृष्ण के पास आया और क्षमा याचना पूर्वक द्रौपदी को लौटा दिया ।[160]

उस समय धातकी खण्ड मे मुनिसुव्रत का समवसरण चल रहा था जिसमे कपिल वासुदेव भी उपस्थित था । पाचजन्य की ध्वनि से जब वह चौक उठा तो[161] मुनिराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा कि यह भरत के वासुदेव श्रीकृष्ण की शखध्वनि है और द्रौपदी-अपहरण का वृत्तात कह सुनाया । कपिल श्रीकृष्ण से भेट करने आतुर हो उठे, किंतु दो वासुदेवो का मिलन सभव नही है । वे रथारूढ हो समुद्र तट पर आये और दूर से शखध्वनि की । उत्तर में श्रीकृष्ण ने पाचजन्य आस्फुरित किया । दोनो महान शखध्वनियो का मिलन हुआ ।[162] तदनतर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ को

---

१५७ त्रिषष्टि : ८/१०/५१

१५८ जैन ग्रथो मे यह भी चर्चा है कि पहले पाडवो ने युद्ध किया पर पद्मनाभ के पर क्रम के समक्ष वे टिक न पाये तब पाडवो के अनुरोध पर श्रीकृष्ण ने युद्धारभ किया ।—जैन श्रीकृष्ण कथा मधुकर मुनि पृ० २९३

१५९ त्रिषष्टिशलाकापुरुष . ८/१०/४६-५८

१६० (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६ (ख) त्रिषष्टिशलाका ८/२०/६०-६३
(ग) पाडवचरित्र सर्ग १७ पृ० ५३७-५४६ । (घ) हरिवशपुराण ५४/५२/५१

१६१ (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६ (ख) त्रिषष्टि ८/१०/६५-६६

१६२ वही ८/१०/६८-७३

प्रताड़ित कर अपदस्थ कर दिया और उसके पुत्र को शासक बना दिया ।[163]

रथमर्दन नगर व पाण्डुमथुरा की स्थापना :

द्रौपदी उद्धार के पश्चात् अमरकका से लौटते समय कृष्ण सुस्थिर देव से भेंट करने को पीछे रह गये और पाण्डवो ने नौका से लवणसमुद्र की महानदी गगा को पार कर लिया और नौका को श्रीकृष्ण के लिए वापस न भेज कर उसे छिपा दिया ।[164] श्रीकृष्ण भुजाओ से जल चीरते हुए धारा पार करने जगे। ६२ योजन चौडी धार थी। श्रीकृष्ण थक गये। गगा ने स्थल बना दिया जिस पर कुछ विश्राम कर उन्होने शेष धारा को पार किया। पाडवो की शक्ति के विषय में उनके मन मे प्रशसा का भाव था कि उन्होने बिना सहारे के धारा को पार कर लिया। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि पाडवो ने नौका से धारा पार की, तो पूछा कि मेरे लिए नौका क्यो नही भेजी? पाडवो ने कहा कि हम आपकी शक्ति—परीक्षा लेना चाहते थे ।[165] श्रीकृष्ण ने रोषपूर्वक कहा कि द्रौपदी उद्धार के पश्चात् भी परीक्षा शेष रह गयी थी क्या? देखो मेरी शक्ति—यह कह कर एक लोहदड के प्रहार से उन्होने रथ नष्ट कर दिये। यहा पर बाद मे रथमर्दन नगर बस गया ।[166] द्वारका प्रस्थान के पूर्व श्रीकृष्ण ने पाडवो को निर्वासन का आदेश दे दिया ।[167]

हस्तिनापुर पहुँच कर पाडव बडे चिंतित रहे कि अब निर्वासित होकर वे कहा रहे? समस्त दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं। उससे बाहर कौन सी ठौर है? उन्होने माता कुती को इस समाधान के लिए श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजा ।[168] श्रीकृष्ण ने समाधान दिया कि पाडव दक्षिण दिशा में वैताढ्य तट पर पाडु मथुरा बसाकर मेरे प्रच्छन्न सेवक बनकर रहे। पाडवो ने ऐसा ही किया और हस्तिनापुर त्यागकर पाडु मथुरा बसायी ।[169] श्रीकृष्ण ने अपनी भगिनी सुभद्रा और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को हस्तिनापुर के राज्यासन पर अभिषिक्त किया।

गजसुकुमाल देवकी का आठवां पुत्र

एक प्रात दो मुनि देवकी के द्वार पर आये और देवकी ने उन्हे केसरिया मोदक से प्रतिलभित किया। कुछ समय बाद वैसा ही मुनियुग्म

---

१६३ (क) त्रिषष्टि ८/१०/७४-७५ (ख) पाडवचरित्र देवप्रभसूरि सर्ग १७

१६४ त्रिषष्टि. ८/१०/७७-८० १६५ वही—८/१०/८५ (ख) ज्ञातासूत्र अ० १६

१६६ त्रिषष्टि· ८/१०/८६ ८७ १६७ वही—८/१०/८८

१६८ पाडव चरित्र सर्ग १७ १६९ अन्तगडसूत्र

फिर पहुँचा और देवकी को आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह जान रही थी कि वे ही मुनि पुन आये; जबकि इस हेतु मुनि एक घर में दुबारा नही जाते। कुछ ही पलो मे वैसा युग्म और पहुँचा। देवकी को भ्रमित देख कर अबकी बार मुनियो ने स्पष्ट किया कि वे एक से लगने वाले ६ मुनि हैं जो परस्पर भाई हैं।[170] छ भाइयो के तथ्य से देवकी के मन मे इन मुनियो के प्रति अगाध ममता जागृत हो गयी। उसके भी ६ पुत्र कस के हाथो मारे गये थे (देवकी ऐसा ही जानती थी)। उसे अतिमुक्त मुनि का पूर्वकथन,स्मरण हो आया कि देवकी तेरे आठ पुत्र होगे और सभी जीवित रहेगे। वह उलझन मे पड गयी कि सख्या ८ रही, न ही सभी जीवित रहे। मुनिवाणी असत्य कैसे हो सकती है ? भगवान अरिष्टनेमि ने समाधान किया,के तेरे सभी पुत्र जीवित हैं। वे मुनि तेरे ही पुत्र हैं और भगवान ने सुलसा प्रसग का वर्णन कर दिया।[171]

उसके सातो पुत्र जीवित हैं—इस तथ्य से हर्ष के बावजूद देवकी के मन मे यह तीव्र असतोष व्याप्त हो गया कि उसका वात्सल्यभाव तो अतृप्त ही रह गया। वह किसी भी पुत्र की शैशव लीला का आनद नही उठा सकी। भगवान ने देवकी के पूर्वभव के एक प्रसग का वर्णन करते हुए कहा कि तुमने अपनी सपत्नी के ७ रत्न चुरा लिये थे और जब वह बहुत रोयी तो तुमने उसे एक रत्न लौटा दिया था। अत इस भव मे तुम्हारे ७ रत्न छिन गये और एक फिर से मिल गया। देवकी ने अपने अतृप्त वात्सल्य के दु ख की चर्चा करते हुए हुए श्रीकृष्ण से कहा कि मैं एक भी पुत्र का लालन-पालन नही कर सकी। अतिमुक्त मुनि की घोषणा भी ८ पुत्रो की थी, जबकि तुम ७ ही सहोदर हो। श्रीकृष्ण ने हरिनैगमैषी देव की आराधना की। देव ने साक्षात होकर कहा कि देवकी को ८वाँ पुत्र होगा, पर वह यौवन मे ही प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।[172]

देवकी की मनोकामना पूर्ण हो गयी। आठवे पुत्र का नाम गजसुकुमाल रखा गया। बडा होने हर उसका विवाह द्रुम राजा की पुत्री प्रभावती के साथ कराया गया। श्रीकृष्ण ने उसका विवाह सोम शर्मा की ब्राह्मण कन्या सोमा के साथ भी करवाया। भगवान अरिष्टनेमि के समवसरण मे तुरत ही गजसुकुमाल ने दीक्षा ग्रहण कर ली और वह श्मशान मे जाकर कायोत्सर्ग मे लीन हो गया। उसे ध्यानलीन देख सोमशर्मा क्रुद्ध हो गया कि इसे

---

१७० अन्तगडसूत्र   १७१ वही

१७२ (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६. १३२. पृ० ४८-४९ (ख) त्रिषष्टि ८/१०/८९-९२

यही करना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यों नष्ट किया ? गीली मिट्टी का घेरा तपस्वी के मस्तक पर बनाकर उसमें उसने चिता के अंगारे भर दिये। मुनि गजसुकुमाल ने यह भयकर उपसर्ग सहन कर लिया और शरीर त्याग कर मुक्त हो गये।[173] गजसुकुमाल के साथ मे वसुदेव के अतिरिक्त ८ दशार्हों सहित अनेक यादवों ने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। देवकी, रोहिणी व कनकावती को छोड वसुदेव की शेष रानिया, अनेक यादव कुमारियों के साथ साध्वी हो गयीं थी।

आगामी प्रात. श्रीकृष्ण जब भगवान के समवसरण मे गये तो गजसुमाल को न देखकर उसके विषय में पूछा। भगवान ने कहा कि उसने तो कल ही मोक्ष प्राप्त कर लिया, उसे एक सहायक जो मिल गया था। श्रीकृष्ण भगवान की गूढ वाणी का अर्थ समझ गये—अवश्य ही किसी ने उसे कठोर उपसर्ग दिया है और उनके नेत्र रक्ताभ हो उठे। प्रभु ने कहा कि उस पर क्रोध करना व्यर्थ है। लौटते समय वह तुम्हे नगर-द्वार पर मिल जाएगा और तुम्हें देखकर स्वत. ही वह मर जाएगा। श्रीकृष्ण को नगर प्रवेश के समय सोमशर्मा मिल गया जो उनके भय से आतकित हो गिर पड़ा और श्रीकृष्ण के हाथी के पैरों तले कुचलकर मर गया।[174]

महाभारत प्रसंग

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव—ये पाँचो भाई राजा पाडु के पुत्र होने से पाडव कहलाते थे। इनकी माता कुन्ती वसुदेव की सहोदरा थी और इस प्रकार पाडवो के साथ श्रीकृष्ण का सम्बन्धजन्य स्नेह था।[175] पाडु के अनुज धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव कहलाते थे। दुर्योधन ज्येष्ठ था। पाडव हस्तिनापुर के और कौरव इन्द्रप्रस्थ के स्वामी थे। युधिष्ठिर न्यायप्रिय, सत्यवादी और सदाचारी थे और धर्मराज कहलाते थे, जब कि दुर्योधन अन्यायी, अनाचारी और दुरात्मा था, उसका नाम ही दुर्योधन था। पाडवों के वैभव, पुण्य और कीर्ति से उसे बडी ईर्ष्या थी, और उनका राज्य वह हडप लेना चाहता था। बल से विजय की आशा न होने पर छल को उसने साधन बनाया। द्यूत क्रीड़ा में पराजित कर दुर्योधन ने पांडवो का सब कुछ छीन लिया, यहाँ तक की द्रौपदी पर भी अधिकार कर लिया और भरी सभा में दु शासन ने उसका चीरहरण किया और दुर्योधन ने उसे अपनी निर्वस्त्र

---

१७३ अन्तगडसूत्र

१७४ वही

१७५ पाडवचरित्र—देवप्रभ सूरि

जघा पर बैठने को कहा। बलशाली नृपति और कुल के गुरुजन भी मौन हो देखते रहे। किसी ने इस अनाचार का विरोध नही किया। भीम ने प्रतिज्ञा की—मैं दु शासन की इन बाहों को उखाड़कर और दुर्योधन की जंघा चीर-कर ही दम लूगा।

पराजित पाडवो को १२ वर्ष वनवास और तेरहवे वर्ष मे अज्ञातवास स्वीकार करना पडा। इस अवधि मे दुर्योधन पाडवो को नष्ट करने के कुचक्र करता रहा। अवधि पूर्ण हुई और पाडवजन विराटनगर मे प्रकट हुए। श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी सहित पाडवो को द्वारका ले आये।[176] और, कौरवो के अन्याय अत्याचार से वे क्षुब्ध हो उठे।

दुर्योधन को श्रीकृष्ण का सन्देश

नीतिज्ञ श्रीकृष्ण ने द्रुपद के पुरोहित के साथ दुर्योधन को सन्देश भेजा।[177] द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, कृतवर्मा, भगदत्त, कर्ण, विकर्ण, सुशर्मा, शकुनि, भूरिश्रवा, चेदिराज, दु शासन आदि कौरव राजसभा में उपस्थित थे। तभी श्रीकृष्ण का सदेश पहुँचा। १३ वर्ष वनवास और अज्ञातवास भोग कर ही पाडव अब प्रकट हुए हैं और विराट राजकुमारी उत्तरा से उन्होने अभिमन्यु का परिणय भी सपन्न किया है। वे कौरवों से स्नेह रखते हैं। अब पाडवो को स्वच्छ मन से हस्तिनापुर बुलाएं। भाइयो के मध्य सपत्ति के बटवारे का मनमुटाव अच्छा नही होता। तुमने नही बुलाया, तो भी युधिष्ठिर को अन्य भाई यहाँ लायेंगे। सम्भव है युद्ध हो और इन्द्रप्रस्थ भी तुम्हारा न रहे। तब तुम्हे वन-वन भटकना पड सकता है। पाडवो को निर्बल समझने मे भूल मत करना। जहाँ धर्म है वहा विजय है और जहाँ धर्म है वही मैं भी हूँ। विवेक के साथ विचार कर लो जिससे बाद मे पछतावा न रहे। दुर्योधन तो इस सदेश से भड़क उठा। कोपाभिभूत हो कहने लगा कि युद्ध मे पाडव तो क्या श्रीकृष्ण भी हम से जीत नही सकते। मैं उनकी कीर्ति ध्वस्त कर दूगा। जा, अपने कृष्ण से कहना कि कुरुक्षेत्र की समर भूमि मे हमारे समक्ष अपने बल का प्रदर्शन करें। दूत ने श्रीकृष्ण को अवगत कराया कि उनकी मैत्री भावना से अप्रभावित अहकारी दुर्योधन

---

१७६ महाभारत के अनुसार केवल पाडव और द्रौपदी ही वनवास मे गये थे, माता कुती नही, जैन ग्रथो के अनुसार वह भी गयी थी।

१७७. महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण के निर्देश पर राजा द्रुपद ने अपने पुरोहित को भेजा। देखे—महाभारत, उद्योगपर्व अ० २० वा।

पांडवो को तुच्छ मानता है और उसे पराजित करके ही पांडव अपने अधिकार प्राप्त कर सकेंगे ।

धृतराष्ट्र का सन्देश

परिस्थितियों की विषमता को देख धृतराष्ट्र ने धर्मराज के पास सजय द्वारा सन्देश भेजा कि तुम[178] विवेकशील हो, ज्ञानीजन स्वार्थ त्याग कर भ्रातृहित मे अनेक उत्सर्ग करते हैं। युद्ध भयानक परिणामदायक होता है। अपराजय का विश्वासी पात्र भी कभी परास्त हो जाता है। दुर्योधन के कथन पर कान न देकर तुम शुभाशुभ का निर्णय विवेक बुद्धि से करो, युद्ध न होने दो। युधिष्ठिर ने उत्तर मे कहा कि धृतराष्ट्र एक बात कहना भूल गये कि अन्याय का प्रतिकार भी न्याय है। अन्यायी का अन्याय सहन करना अन्याय को प्रश्रय देना है। ऐसी सहिष्णुता स्वय मे अन्याय है।[179] पिता भी दुराचारी हो तो वह त्याज्य होता है। दुर्योधन तो तुम्हारा पुत्र ही है। दुराचारी अपने मित्रो, रक्षको और सहायको का भी विनाश कर देते हैं।

श्रीकृष्ण द्वारा दूत कार्य

श्रीकृष्ण चाहते थे कि युद्ध के बिना राज्याधिकार की यह समस्या सुलझ जाय। दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने के प्रयोजन से वे स्वय उसके पास गये। उसने भव्य स्वागत कर श्रीकृष्ण को रत्नासन दिया। उन्होंने कहा—सजय कदाचित् सधि-प्रस्ताव लाया था, पर वह धर्मराज के समक्ष रख न सका, रखता तो भी वह स्वीकृत न होता। यदि युद्ध हुआ तो वह कौरवो के लिए महाविनाशकारी सिद्ध होगा। इस परिणाम से अशान्त हो, मैं पाडवो को जताये बिना ही यहाँ चला आया।[180] श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा कि पाडवो को यदि थोडा सा राज्य भी शाति के साथ तुमने न दिया तो वे परमवीर कौरवो का सर्वनाश कर देंगे। मिथ्या दभ और स्वार्थ का त्याग करने मे ही तुम्हारे कुल का हित है। तुम पाडवो को ५ गाँव दे दो। उनके प्रतिष्ठा की रक्षा भी हो जायगी और उन्हे भी सिर छिपाने की जगह भी मिल

---

१७८ महाभारत के अनुसार सजय दूत बनकर पाडवो के पास जाता है। उसमे धृतराष्ट्र सजय को सदेश देते हैं। उसमे धृतराष्ट्र का आतरिक प्रेम पाडवो के प्रति झलक रहा है।—महाभारत उद्योगपर्व अ० २२ वा

१७९ महाभारत मे भी धर्मराज सजय को कहते हैं कि मैं सधि के लिए तत्पर हो सकता हू यदि दुर्योधन मेरा इद्रप्रस्थ का राज्य पुन मुझे दे दे।

१८०. महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण पाडवो के विचार-विमर्श के पश्चात् ही शाति-वार्ता के लिए गये।

जायगी ।[181] पाडव मेरे परामर्श पर इस अल्प-प्राप्ति पर भी सतोष करेंगे, अन्यथा विनाशकारी महायुद्ध अवश्यंभावी है । दुर्योधन ने हठपूर्वक श्रीकृष्ण का प्रस्ताव ठुकरा दिया और पाडवों के साथ श्रीकृष्ण को भी शक्ति परीक्षण के लिए चुनौती दी । यही नही, वह कर्ण के सहयोग से श्रीकृष्ण को बंदी भी बनाना चाहता था । ज्ञान होने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि क्या कभी शृगाल ने भी सिंह को बाँधा है? तुम लोग दुरात्मा हो—उपकारक का भी अपकार करना चाहते हो ।[182]

भीष्म पितामह का प्रयत्न

श्रीकृष्ण का यह रोष भीष्म पितामह को कौरवो के लिए विनाशकारी लगा । उन्होने स्नेहपूर्वक श्रीकृष्ण से कहा कि बिजली के उत्ताप से अप्रभावित रहकर मेघ सदा शीतल जल ही बरसाते हैं । आप भी दुर्योधन के व्यवहार से कुपित न होना । यदि यह युद्ध हो ही तो मेरी इच्छा है कि आप इस युद्ध मे भाग न लें । श्रीकृष्ण ने कहा कि पाडव मेरे आश्रित हैं। मेरे संरक्षण मे ही वे युद्ध करेंगे । किंतु, आपका आदेश भी मेरे लिए शिरोधार्य है । अत मैं वचन देता हूं कि मैं शस्त्र ग्रहण नही करूंगा ।

कर्ण को सन्मार्ग बोध

श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा कि तुम संसार के परम वीर और शक्तिशाली हो, गुणशील हो, पर दुरात्मा दुर्योधन के साथ तुम्हारा मेल असंगत है, तुम्हे तो पराक्रमी पाडवो के साथ रहना चाहिए । एक रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—सुनो कर्ण, तुम सूत-पुत्र नही, कुन्ती के पुत्र हो । राधा ने तुम्हारा मात्र लालन-पालन किया है, इस नाते तुम "राधेय" कहलाते हो—स्वय कुती ने मुझे यह सब बताया है ।[184] यदि तुम पाडवो के सग रहो तो ज्येष्ठ भ्राता होने के नाते तुम्हारा अधिकार भी कुछ अधिक ही रहेगा ।

---

१८१ पाडव चरित्र · देवप्रभसूरि—पृ० ३४६ । १८२ वही—पृ० ३४७-४८ ।

१८३ (क) पाडव चरित्र . देवप्रभसूरि पृ० ३४८ ।

(ख) महाभारत मे यह प्रसग अन्य प्रकार से वर्णित है—

श्रीकृष्ण अपने कक्ष मे शयन किए हुए थे तभी उनकी सहायता की याचना के साथ दुर्योधन और अर्जुन दोनो पहुंचे । दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने की ओर रखे एक रिक्त आसन पर बैठकर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा । तभी अर्जुन आया और वह श्रीकृष्ण के पावो की ओर बैठ गये । जागने पर श्रीकृष्ण को पहले अर्जुन दृष्टिगत हुआ ।

श्रीकृष्ण के उद्‌बोधन से कर्ण को अपनी भूल अनुभव हुई कि उसने दुर्योधन से मैत्री की, किंतु जब सभी सूतपुत्र कहकर उसका अपमान करते थे तब दुर्योधन ने ही राज्य देकर उसकी गरिमा बढ़ाई थी। कर्ण ने कहा कि मैं विश्वासघात नही करूँगा, किंतु अर्जुन को छोड़कर किसी पाडव को नही मारूँगा। युद्ध में अर्जुन मरेगा और मैं जीवित रहूँगा, अथवा मैं मरूँगा और अर्जुन जीवित रहेगा। माता कुन्ती के तो पाचो पुत्र जीवित रहेगे।

श्रीकृष्ण पांडु राजा से मिलकर द्वारका लौट आये।[185] वृत्तात सुन-कर पांडवो का उत्साह बढा और वे युद्ध की तैयारी करने लगे।

दुर्योधन ने कहा कि मैं आपके पास अर्जुन से पहले पहुंचा हू। सज्जनो का नियम है कि जो पहले पहुचे उनका पक्ष लिया जाय। मेरी बिनती है कि महाभारत युद्ध मे आपका सहयोग मुझे मिले।

नीतिज्ञ श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम पहले आये हो अत तुम्हारी सहायता भी मुझे करनी चाहिये, किंतु अर्जुन मुझे प्रथम दिखाई दिया अत. वह भी मेरी सहायता का पात्र है। मेरी सहायता दो प्रकार से सभव है। एक पक्ष में मेरी नारायणी सेना रहेगी, जो उस पक्ष की ओर से लडेगी और दूसरी ओर मैं स्वय रहूगा, किंतु शस्त्रहीन अवस्था मे रहूगा। इन दो विकल्पो मे से किसी एक का चुनाव पहले अर्जुन को करने दिया जायेगा, क्योकि वह तुम से छोटा है।

अर्जुन ने नारायणी सेना के स्थान पर निहत्थे श्रीकृष्ण को अपने पक्ष हेतु चुना। स्पष्ट है कि नारायणी सेना की शक्ति दुर्योधन के पक्ष को प्राप्त हो गयी। वह यह सोचकर भी प्रसन्न था कि श्रीकृष्ण पांडवो की ओर रहेंगे अवश्य किंतु वे युद्ध से विमुख रहेंगे।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि मैं शस्त्र-धारण न करूगा, और युद्ध से विमुख रहूगा यह जानकर भी तुमने मुझे क्यो चुन लिया ?

अर्जुन ने उत्तर दिया कि मैं अकेला ही युद्ध मे यशस्वी बनना चाहता हू। अत आप मेरे सारथी बनिए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की यह इच्छा पूर्ण की। —देखें—महाभारत, उद्योगपर्व-३६-३८।

१८४ महाभारत के अनुसार कुती स्वय ही कर्ण को यह समझाने के लिए जाती है कि वह उसका पुत्र है।

१८५ जैन ग्रथो के अनुसार महाभारत के पूर्व पाडु राजा का देहावसान नही हुआ। महाभारत के समय वे उपस्थित थे। महाभारत के अनुसार तथ्य इसके विपरीत हैं।

कौरव-पाडवो के युद्ध महाभारत मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी की भूमिका निभायी और स्वय शस्त्र नही उठाया।[186] प्रायः जैन ग्रंथो मे महाभारत युद्ध का वर्णन नही मिलता।[187] कतिपय ग्रन्थकारों ने श्रीकृष्ण-जरासध युद्ध को ही महाभारत मान लिया है।[188] कही कौरव व पाडव युद्ध को जरासध युद्ध के पूर्व की घटना के रूप मे भी वर्णित किया गया है।[189] और, उल्लेख किया गया है कि जरासध दुर्योधन के पक्ष में सम्मिलित था। कौरव-पाडव युद्ध और श्रीकृष्ण जरासध युद्ध को एक मानना तर्कसगत नही है। दोनो मे रण-स्थल (क्रमश कुरुक्षेत्र और सेनपल्लि) ही भिन्न-भिन्न थे। पूज्यपाद देवेंद्र मुनिजी शास्त्री की मान्यता है—"हमारी अपनी दृष्टि से भी महाभारत और जरासध का युद्ध पृथक्-पृथक् हैं"।[190]

महाभारत-प्रसग वर्णित न होने के कारण जैन ग्रन्थो मे गीता के उपदेश का प्रकरण भी नही मिलता।

शिशुपाल-वध

कौशल नरेश भेषज की रानी मद्री थी। इसी राजदपति का पुत्र था शिशुपाल,[191] जिसके जन्म से ही तीन नेत्र थे और इस अद्भुतता के कारण माता-पिता चितित और उद्विग्न रहा करते थे। एक निमित्तज्ञ से उन्हे ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति के गोद मे लेने से बालक का तृतीय नेत्र लुप्त हो जायगा, यह उसी के हाथो मारा जायगा।[192] त्रिनेत्र पुत्र के साथ राजा रानी शरावती मे श्रीकृष्ण से भेंट करने आये तो श्रीकृष्ण ने बालक को गोद मे उठाया और उसका अतिरिक्त नेत्र बद हो गया। भावी अनिष्ट के निश्चय से भयभीत, काँपते हुए पति-पत्नी श्रीकृष्ण से पुत्र के प्राणो की भिक्षा मागने लगे। मद्री को आश्वस्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि जब तक यह

---

१८६ पाडव चरित्र देवप्रभसूरि, सर्ग १२, पृ० ३८।

१८७ (क) चउपन्नमहापुरिस-चरिय (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
(ग) भवभावना आदि

१८८ (क) हरिवशपुराण आचार्य जिनसेन। (ख) पाडवपुराण आचार्य शुभचद्र।

१८९. (क) पाडवचरित्र . देवप्रभसूरि।
(ख) महाभारत के अनुसार जरासध युद्ध महाभारत के पूर्व की घटना है।

१९० भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन—देवेंद्र मुनि जी शास्त्री।

१९१ उत्तरपुराण ७१/३४२ पृ० ३९८। १९२ उत्तरपुराण ७१/३४३-३४४

सौ अपराध न कर लेगा—मैं इसका वध नही करूँगा। बड़ा होने पर शिशुपाल बडा अहकारी हो गया। श्रीकृष्ण को भी अपने नियत्रण मे रखना चाहता था[193] और उन पर आक्रमण भी करने लगा। उसने सौ अपराध कर डाले।[194] वह रुक्मिणी से विवाह करना चाहता था। युद्धाभिलाषी नारद जी ने श्रीकृष्ण को यह सूचना दी और वे ८ प्रकार की सेना-सहित पहुँचे, शिशुपाल का वध किया[195] और रुक्मिणी देवी से विवाह कर लिया।[196]

---

१९३ उत्तरपुराण ७१/३४९-३५१ पृ० ३९८। १९४ उत्तरपुराण ७१/३५२।

१९ . (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र (८/७/४८०-४०४) आदि अन्य जैन ग्रथो के अनुसार शिशुपाल का वध जरासध युद्ध के समय हुआ, रुक्मिणी परिणय के समय नही।

(ख) महाभारत—राजसूय यज्ञ करने वाले पाडवो ने प्रथमत श्रीकृष्ण की अचना की, यह देखकर शिशुपाल रुष्ट हो गया। वह श्रीकृष्ण के विरुद्ध अनर्गल और अभद्र आलाप करने लगा। भीम उसे सहन नही कर पाया और वह शिशुपाल का वध करने को झपटा, किंतु भीष्म पितामह ने उसे रोक लिया और शिशुपाल जन्म की कथा बतलाने लगे। जन्मते ही वह गधे की तरह चिल्लाने लगा था और इससे माता-पिता घबराये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि जिसकी गोद मे जाने पर इस बालक की दो भुजाए और एक आख लुप्त हो जायेगी वही उसका मारने वाला होगा। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी बुआ (शिशुपाल की माता) से मिलने गये और और ज्योही उन्होंने बालक को गोद में उठाया, त्योही उसका तीसरा नेत्र और अतिरिक्त दो भुजाएँ समाप्त हो गयी। श्रीकृष्ण से माता ने पुत्रहित मे प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने कहा कि—तेरे पुत्र के १०० अपराध तक मैं उसे क्षमा करूगा—

अपराधशत क्षाम्य मया ह्यस्य पितृष्वज।
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्व शोके मन कृथा।

—महाभारत सभापर्व अध्याय ४३ श्लोक २३।

फिर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा। जब उसके १०० अपराध पूरे हो गये तो श्रीकृष्ण ने क्रोध कर सुदर्शन चक्र चलाया जिससे शिशुपाल का शीष कटकर पृथ्वी पर गिर पडा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया।—महाभारत : सभापर्व : अध्या० ४५।

१९६ उत्तरपुराण ७१/३५३-५८।

द्वारका-दाह

धर्मसभा में भगवान ने श्रीकृष्ण वासुदेव की अनकही मानसिक उलझन को भाँप कर कहा कि वासुदेव सदा कृतनिदान होते हैं, वे संयम पथ पर गमन नही कर सकते। उन्होने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम्हारे भाई जराकुमार के हाथो तुम्हारा अवसान होगा और तुम्हारी द्वारका इससे पूर्व ही नष्ट हो जायगी। मदिरा, द्वैपायन एव अग्नि द्वारका-नाश के मूल कारण होंगे।[197] भगवान ने कहा कि शौर्यपुर के समीप के तापस पारस का शारीरिक सबध यमुनाद्वीप की नीच-वशीय कन्या से हो गया था और द्वैपायन उसी का पुत्र है जो इद्रिय-जेता है। मदिरा के मद मे यादव वंशी द्वैपायन को पीडा देंगे और वे द्वारका को भस्म कर देगे। तुम (श्रीकृष्ण) और

१९७ श्रीमद्भागवतानुसार—

महाभारत युद्ध मे अनेक गुणी एव पराक्रमी यादवो का सहार हो गया था। जो शेष रहे उनमे से अधिकाशत दुर्व्यसनी और अनाचारी थे अत उन मदाध यादवो पर श्रीकृष्ण बलदेव का नियत्रण व प्रभाव भी कम था। द्वारका के समीप रेवतक पर्वत एव समुद्र के बीच प्रभास क्षेत्र मे पिडारक नामक स्थान था, जहा यादव आमोद-प्रमोद के लिए जाया करते थे। वहा एक उत्सव के अवसर पर यादवो ने मदिरापान किया और परस्पर सघर्षरत होकर वही समाप्त हो गये।

कृष्ण-बलराम, सारथी दारुक, वसुदेव और कुछ स्त्रिया बस ये ही जीवित बच गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के पास दारुक के साथ सदेश भेजा कि वह द्वारका आकर यादव वश के वृद्धो और स्त्रियो को हस्तिनापुर ले जावे। बलराम यादवो की इस महाविनाश लीला से दुखित होकर मर ही चुके थे। बलराम के अवसान से दुखी श्रीकृष्ण वन मे एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठे थे कि जराकुमार नामक एक व्याध ने उन्हें बाण मारा। श्रीकृष्ण ने उसे स्वर्ग प्रदान किया। श्रीकृष्ण के चरण चिन्हो का अनुसरण करते हुए दारुक वहा पहुच गये। उसके देखते-देखते श्रीकृष्ण को लेकर गरुड चिह्न वाला रथ उड गया। उन्होंने दारुक को कहा कि तुम द्वारका जाकर शेष यादवो से कहो कि वे द्वारका त्याग कर अन्यत्र चले जावें, क्योंकि मेरी त्यागी हुई द्वारका को समुद्र अपने गर्भ मे छिपा लेगा। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण तिरोधान हो गये।

अर्जुन शेष यादवो, स्त्रियो और अनिरुद्ध पुत्र वज्र को लेकर हस्तिनापुर चल दिया। द्वारका सूनी हो गयी। समुद्र मे भयकर तूफान आया और द्वारका जलमग्न हो गयी।

वलराम वच जाओगे और कालांतर मे जराकुमार के वाण से तुम मरण को प्राप्त करोगे।[198]

जराकुमार को अग्रज के विरुद्ध अपने भयंकर अपराध की भविष्य-वाणी से आत्मग्लानि हुई। यह सोचकर कि मैं वासुदेव के साथ ही नहीं रहूँगा तो यह कुकर्म टल जायगा—वह वन मे चला गया। द्वैपायन भी द्वारका-विनाश के हेतु वनने से वचने के लिए वन में चले गये।[199] भगवान ने यह सकेत भी दिया कि वासुदेव श्रीकृष्ण का जीव ही अपने एक भावी भव में अमम नाम के १२ वें तीर्थंकर होगे। इन्ही के शासन काल मे वलराम का जीव भी मुक्तिलाभ करेगा।

मदिरा से द्वारका-विनाश का भय हृदयंगम कर वासुदेव श्रीकृष्ण ने मदिरा के निर्माण एवं सेवन पर प्रतिवन्ध लगा दिया। सारी मदिरा एक-त्रित कर उसे नष्ट करने के प्रयोजन से कदव वन की कादम्वरी कन्दरा के शिला-कुण्डो में फेंक दी गयी। द्वारका-रक्षार्थ प्रजा धर्मसकुल जीवन विताने लगी। शिला-कुण्डो मे नष्ट होने के स्थान पर मदिरा पुरानी होकर अधिक स्वादु, अधिक मादक वन गयी। शाव का सेवक वन मे तृषालु होकर भटक रहा था। शिलाकुण्ड मे सग्रहीत द्रव पीकर तो वह मस्त हो गया। सेवक ने उसका आनन्द शाव को भी दिया और फिर तो मदिरा का लोलुप शाव अनेक यादवों के साथ कंदरा पहुँच गया। ये लोग जव मदोन्मत्त हो वन-विहार कर रहे थे, सहसा ध्यानमग्न द्वैपायन को देख क्रीडावश वे उन्हें सताने लगे, उन्हे मारा-पिटा भी।[200] रुष्ट ऋषि ने सम्पूर्ण द्वारका को भस्म कर देने का निदान कर लिया। श्रीकृष्ण-वलराम इस काड से सन्न रह गये। यादवो की धृष्टता के लिए उन्होने ऋपि से क्षमायाचना की, किंतु ऋपि अतिशय कुपित थे। वोले—तुम दोनो ने सविनय क्षमा मागी है—तुम्हे हानि नही पहुँचाऊँगा, पर शेप द्वारका को भस्म करने का निदान कर चुका हू। कालातर मे द्वैपायन का शरीरात हो गया और उनका जीव अग्निकुमार देव वना तथा पूर्वभव के निदान को विस्मृत न कर पाया। द्वारका आकर

---

१९८. (क) त्रिपष्टिशलाकापुरुप चरित्र ८/११/३-६
(ख) भवभावना ३७८३-३७९२ (ग) हरिवशपुराण ६१/२३-२४

१९९ द्वैपायनोऽपि तत्श्रुत्वा, लोकश्रुत्या प्रभोर्वच ।
द्वारकाया यदूना च, रक्षार्थं वनवास्यभूत् ॥—हरिवशपुराण

२००. (क) त्रिषष्टि —८/११/२३-३०

देव ने देखा कि द्वारका की प्रजा तो धर्मनिष्ठ है। वे कोई अहित न कर पाये। उन्हे ११ वर्ष प्रतीक्षा करनी पडी। तब तक प्रजा विनाश के भय से मुक्त होकर धर्म-शिथिल होने लगी। मदिरा का भी पुन प्रचलन हो गया था।[201] द्वैपायन के लिए अब अनुकूल परिस्थितियाँ बनने लगी। उन्होने संवर्तवायु के प्रयोग से वन का सूखा काष्ठ-घास आदि द्वारका मे एकत्रित कर दिया। आकाश से अंगारे बरसने लगे। त्राहि-त्राहि मच गयी। द्वारका का वैभव अग्नि की भेंट होने लगा। प्राण बचाकर भागती प्रजा को अग्निकुमार द्वैपायन निर्ममता-पूर्वक अग्नि मे झोंकने लगा। वसुदेव-देवकी और रोहिणी को रथ मे बिठाकर श्रीकृष्ण व बलराम स्वय रथ खीचकर उन्हे सुरक्षित स्थल पर ले जाने लगे। नगर-द्वार बद और रथ ध्वस्त हो गया।[202] बलराम ने पाद प्रहार से द्वार तोडा तो अग्निदेव ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि इनकी रक्षा का प्रयत्न व्यर्थ है। तुम दो भाइयों के अतिरिक्त सब कुछ नष्ट होगा। पिता एव दोनो माताओ ने सथारा लिया और आयुष्य पूर्ण कर स्वर्ग सिधारे।[203] श्रीकृष्ण बलराम के साथ जीर्णोद्यान मे चले गये। ६ माह तक अग्नि प्रज्वलित रही और वह भव्य वैभवपूर्ण नगरी राख की ढेरी हो गयी।[204] समुद्र में प्रचड तूफान उठा और यह दग्ध द्वारका जलमग्न हो गयी। छ माह पूर्व जहा भव्य नगर था, अब वहा समुद्र हिलोरे लेने लगा।[205]

श्रीकृष्णावसान

जीर्णोद्यान से अपनी प्रिय द्वारका को नष्ट होते देखने का सामर्थ्य भी जब चुक गया तो श्रीकृष्ण वहा से हट जाना चाहते थे, पर कहा जाएं? यह प्रश्न था। अनेक राज्य-विरोधी हो चुके थे।[206] पाडवो को निष्कासित किया था अत पाडुमथुरा जाने मे भी श्रीकृष्ण को सकोच था। बलराम के प्रयत्नों से अतत वे वहा जाने को चल दिये।[207] मार्ग में धृतराष्ट्र पुत्र अच्छदक का

---

२०१. त्रिषष्टि ८/११/७४-७६

२०२ हरिवश के पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारिका का कोट तोडकर समुद्र के प्रवाह से उस आग को बुझाने लगे, बलदेव समुद्र के जल को हल से सीचने लगे तो भी अग्नि शात नही हुई।—हरिवश : ६१/८१-८४

२०३ त्रिषष्टि : ८/११/८१-८८।

२०४ त्रिषष्टि ८/११/८९

२०५ त्रिषष्टि ८/११/९०

२०६ त्रिषष्टि ८/११/९५

२०७ त्रिषष्टि ८/११/९९-१०

हस्तिकल्पनगर आया। श्रीकृष्ण उपवन मे विश्राम करने लगे[208] और वलराम भोजन व्यवस्था के लिए नगर मे गये। खाद्य पदार्थों के मूल्यरूप मे उन्होंने व्यापारी को स्वर्णमुद्रिका दी जिसे देख वह शंकित हो उठा और राजा को सूचित किया। राजा सैनिको सहित आ पहुँचा और आक्रमण कर दिया। वलराम के सिंहनाद करने पर श्रीकृष्ण भी पहुँच गये और अच्छंदक को पराजित कर दिया।

ज्येष्ठ भ्राता वलराम कोशाबी नगरी के वन में पहुँचे। श्रीकृष्ण को प्यास लगी थी। वलराम जल लेने को गये और श्रीकृष्ण एक वृक्ष तले लेट गये।[209] वे एक पैर के घुटने पर दूसरे पैर की पिंडली टिकाए हुए थे, जिसकी पगतली को देख कर दूर से व्याध को हिरण का भ्रम हुआ और उसने वाण मारा, वे तुरन्त उठ वैठे और उच्च स्वर मे पूछा—किसने मुझे वाण मारा? आज तक विना नाम गोत्र वताए किसी ने मुझ पर प्रहार नही किया,[210] तुरत व्याध को अपनी भूल ध्यान में आ गयी और वह हतप्रभ सा एक वृक्ष की ओट में छिप गया। वही से उत्तर देते हुए उसने कहा—वसुदेव और जरा-देवी मेरे जनक-जननी हैं, भगवान अरिष्टनेमि की भविष्य वाणी सुन भ्राता श्रीकृष्ण की हितकामना के साथ ही मैं वन मे चला आया और १२ वर्ष यहा व्यतीत कर दिए। अव तक किसी मानव को मैंने इस वन मे नही देखा, तुम कौन हो?[211] श्रीकृष्ण समझ गये कि यह जराकुमार ही है। स्नेह मिश्रित स्वर में श्रीकृष्ण ने जरा को वुलाकर कहा—मुझे खेद है कि तुम्हारा १२ वर्ष का वनवास सफल नही हुआ, तुम मेरे मरण को टालना चाहते थे, आज वही तुम्हारे हाथो हो गया। मैं तुम्हारा भाई श्रीकृष्ण हूँ। अब शोक करना व्यर्थ है। तुम वलराम के लौट आने के पूर्व ही यहा से चले जाओ, अन्यथा वह तुम्हे जीवित न छोडेंगे। तुम्ही यादव वश में वचे हो, जाओ, पांड मथुरा जाकर पाडवो को द्वारका-दाह और मेरी स्थिति से अवगत कराते हुए कहना कि उन्हे निष्कासित करने के कारण मैं क्षमा चाहता हूँ। श्रीकृष्ण के पैर से वाण निकालकर जराकुमार आदेशानुसार चल पडा।[212]

श्रीकृष्ण ने पूर्वाभिमुख हो, अंजलि जोडकर पच परमेष्ठि को प्रणाम करते हुए कहा कि रुक्मिणीदेवी और प्रद्युम्न आदि कुमार धन्य हैं; जिन्होंने

---

२०८ त्रिषष्टि ८/११/११९-१२० २०९. त्रिषष्टि : ८/११/१२१-१२२
२१० वही ८/११/१२३-१३२ २११. त्रिषष्टि ८/११/१३४-३५
२१२ त्रिषष्टि : ८/११/१५१-१५३

सयम मार्ग ग्रहण किया। इसी प्रकार चितन करते हुए उनका आयुष्य पूर्ण हो गया। श्रीकृष्ण वासुदेव १६ वर्ष तक कुमारावस्था में, ५६ वर्ष तक माडलिक अवस्था मे, ९२८ वर्ष अर्धचक्री अवस्था मे रहे और इस प्रकार उनका कुल आयुष्य १ हजार वर्ष का हुआ।[213]

---

२१३. (क) त्रिषष्टि · ८/११/१६५

(ख) कृष्ण नारायण की कुल अवस्था एक हजार वर्ष की थी। उसमे १६ वर्ष कुमार अवस्था मे, ५६ वर्ष माडलिक अवस्था मे, ८ वर्ष दिग्विजय में और ९२० वर्ष राज अवस्था मे व्यतीत हुए।

—हरिवशपुराण आचार्य जिनसेन, ६०/५३२-३३ पृ० ७५६

(ग) वैदिक ग्रथो मे श्रीकृष्ण की आयु १२० वर्ष की मानी गयी है।

(घ) श्रीकृष्ण जीवन के कतिपय प्रमुख तिथि—सवत्—

१. मथुरा मे जन्म और गोकुल को प्रस्थान—सवत् ३१२८ विक्रम पूर्व भाद्रपद कृष्णाष्टमी, वृषभलग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षणयोग, अर्द्धरात्रि

२ गोकुल से वृन्दावन प्रस्थान—आयु ४ वर्ष, स० ३१२४ वि० पूर्व।

३ कालिय नाग का दमन आयु ८ वर्ष, स० ३१२० वि० पूर्व।

४ गोवर्धन धारण—आयु १० वर्ष, स० ३११८ वि० पूर्व।

५. रासलीला का आयोजन आयु ११ वर्ष, स० ३११७ वि० पूर्व।

६ वृन्दावन से मथुरा को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पूर्व और कस वध फाल्गुन शुक्ला १४।

७ मथुरा मे यज्ञोपवीत और सदीपन के गुरुकुल को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पूर्व।

८ जरासघ का मथुरा पर आक्रमण—आयु १३ वर्ष, स० ३११५ वि० पूर्व।

९ मथुरा का राजकीय जीवन और जरासघ से १७ बार युद्ध—आयु १३ से ३० वर्ष, स० ३११५ से ३०९८ वि० पूर्व।

१० द्वारिका को प्रस्थान और रुक्मिणी से विवाह—आयु ३१ वर्ष, स० ३०९७ वि० पूर्व।

११ द्रौपदी स्वयवर और पाडवो से मिलन—आयु ४३ वर्ष, स० ३०८५ वि० पूर्व।

१२ अर्जुन सुभद्रा विवाह—आयु ६५ वर्ष, स० ३०६३ वि० पूर्व।

१३. अभिमन्यु जन्म—आयु ६७ वर्ष, स० ३०६१ वि० पूर्व।

१४ युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ वर्ष, स० ३०६० वि० पूर्व।

१५ महाभारत का युद्ध—आयु ८३ वर्ष, स० ३०४५ वि० पूर्व।

१६ कलियुग का आरभ और परीक्षित का जन्म—आयु ८४ वर्ष, स० ३०४४ वि० पूर्व की चैत्र शुक्ला १

बलदेव द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण करना

जल लेकर लौटे तो बलराम ने भाई को अचल पाया। उन्होंने बार-बार पुकारा, पर कोई उत्तर न पाकर उन्होंने सोचा भाई निद्रा-मग्न है। मोहवश वे मरण की कल्पना भी नही कर पाये। वे श्रीकृष्ण की पार्थिव देह कंधे पर लादे वन मे भटकने लगे। किसी समय सिद्धार्थ बलराम का सारथी था, जो सयम का पालन कर देव हो गया था। देव ने बलराम की मोहदशा दूर करने का प्रयत्न किया। प्रस्तर रथ तैयार कर उसे ढलान से लुढका दिया और रथ खड-खड हो गया। देव प्रस्तर खंडो को जोड़ने लगा। बलदेव ने कहा—प्रस्तर खंड भी कही जुड सकते हैं? देव ने प्रत्युत्तर मे कहा—मृतक भी कभी सजीव हो सकता है? और अप्रभावित से बलराम आगे बढ गये। देव फिर बलराम को आगे मिला एक किसान के रूप में, जो पत्थर पर कमल उगा रहा था। बलराम ने कहा—तुम बावले हो, पत्थर पर भला कभी कमल खिल सकता है? किसान रूप मे देव ने उत्तर दिया—मुर्दे भी भला कभी जीवित हो सकते हैं? पर बलराम का मोह न छूटा, वे आगे बढ गये। अब किसान रूप मे वही देव एक सूखे पेड के ठूठ को पानी पिलाता हुआ मिला तो बलराम ने कहा—तुम मूर्ख हो, सूखा ठूठ भी कभी हरा हो सकता है? देव ने अब की बार स्पष्टता के साथ कहा—फिर तुम्हारा मृत भाई कैसे जीवित हो सकता है? बलराम सघन मोह से घिरे थे, वे कथन को श्रीकृष्ण के सदर्भ मे नही जान पाये और आगे बढ गये। आगे बलराम ने देखा कि एक मृत गाय को किसान घास खिलाने का प्रयत्न कर रहा है। किसान को इस बार भी मूर्ख कहते हुए बलराम ने कहा—तुम्हारा प्रयत्न सफल न होगा। मृत गाय घास कैसे खायगी? किसान ने कहा—तुम भी किसी आशा से ही अपने भाई का शव ६ महिने से कधे पर लादे घूम रहे हो। अब बलराम का मोह टूटा। उन्हे लगा कि मृत देह से दुर्गंध आ रही है। उन्होने पार्थिव तन कधे से उतारा और अतिम सस्कार किया।[214] मुनि के सदुपदेश से बलदेव प्रतिबोधित हुए और उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

---

१७ श्रीकृष्ण का तिरोधान और द्वारिका का अत—आयु १२० वर्ष, स० ३००८ वि० पूर्व।

१८ परीक्षित का राजतिलक और पाडवो का हिमालय प्रस्थान—सं० ३,००७ वि० पूर्व।

१९ श्रीकृष्ण का मरण न मानकर वैदिक परपरा मे उनका तिरोधान माना गया है।

२१४ (क) हरिवशपुराण—(आचार्य जिनसेन) के अनुसार—

मुनि बलदेव ने घोर तप किया। विचरण करते हुए वे नगर के बाहर एक कुएँ के पास पहुँचे, जहाँ जल लेने को एक स्त्री आयी थी। वह मुनि के रूप पर मुग्ध हो गयी और घडे के स्थान पर अपने बालक के गले मे रस्सी का फन्दा कसने लगी। स्त्री को सचेत कर बालक के प्राण मुनि ने बचा लिये, पर उनको अपने रूप पर क्षोभ होने लगा और उन्होंने अभिग्रह लिया कि अब मैं किसी बस्ती मे न जाऊँगा। वन में ही निर्दोष भिक्षा मिली तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा निराहार रहूँगा।

वन में तपस्यारत मुनि बलराम को देख कर वनवासी भाति-भाति की कल्पना करते थे। कोई उन्हे तापस मानते थे तो कोई तत्रसाधक। सूचना पाकर राजा अपनी सेना लेकर वन मे आया। वह मुनि को मार देना चाहता था। अवधिज्ञान से देव (सिद्धार्थ) को सब कुछ ज्ञात हो गया। उस ने वन मे अनेक सिह विकुर्वित कर दिये। भयकर सिहो से आतकित सेना भाग खडी हुई। राजा मुनिराज के चरणो में गिरकर अपने अशुभ विचार पर बार-बार क्षमा याचना करने लगा। देव ने दयापूर्वक अपनी माया हटा ली।

मुनि की प्रबल अहिसा भावना का प्रभाव वन के पशु-पक्षियो पर भी था। पारस्परिक वैमनस्य भुलाकर वे स्नेहपूर्वक एक साथ रहने लगे। स्नेहाभिभूत होकर एक मृग तो सदा मुनि के साथ रहने लगा। मृग जिधर निर्दोष आहार की सम्भावना होती मुनि को उधर ही ले चलता था। यह मृग एक दिन मुनि को एक रथारूढ व्यक्ति के पास ले गया। रथी ने सभक्ति प्रणाम कर निर्दोष आहार अर्पित किया। मृग के नेत्र साश्रु हो उठे। वह रथि को सौभाग्यवान मान रहा था, जिसे मुनि सेवा का अवसर मिला। मुनि सोच रहे थे कि यह श्रावक उत्तम बुद्धिवाला और भद्र परिणामी है।

जरत्कुमार (जराकुमार) के बाण से श्रीकृष्ण के निधन का समाचार पाकर पाडवगण द्रौपदी और माता कुती वहा आते हैं और श्रीकृष्ण का अतिम सस्कार करने के लिए बलदेव से निवेदन करते हैं। बलदेव कुपित हो जाते हैं। तब पाँडवादि बलदेव के इच्छानुसारी हो गये। चातुर्मास समाप्त हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत काया से दुर्गन्ध आने लगी, तो सिद्धार्थ देव ने आकर बलदेव को प्रतिबोधित किया। हरिवश ७३/५४-६८

(ख) पाडवपुराण (शुभचद्राचार्य) के अनुसार—

पहले सिद्धार्थ देव आकर बलदेव को प्रतिबोध देते हैं, किंतु उन पर कोई प्रभाव नही होता। बाद मे पाडव आकर उन्हें स्नेहपूर्वक समझाते हैं तब उनका मोह कुछ कम होता है। पर्व २२, श्लोक ७८-७९

मुनि बलराम, मृग और रथी इस प्रकार शुभ विचारों में मग्न थे कि तभी सहसा वृक्ष की एक भारी शाखा टूटकर उन पर गिरी और तीनों प्राणियों कि इहलीला ममाप्त हो गयी। शुभध्यान मे देह त्याग कर ये तीनों ब्रह्म देवलोक के पद्मोत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

महत्वपूर्ण निष्कर्ष

हिन्दी जैन साहित्य में श्रीकृष्ण कथा को मैंने अपनी अल्पमति के अनुसार प्राकृत आगम, प्राकृत आगमेतर तथा अपभ्रश और सस्कृत जैन ग्रंथो के आधार पर यहाँ पर संक्षिप्त रूप में सप्रमाण और ससदर्भ प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, यही इस अध्याय का महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है। अगले अध्यायो में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन मैं प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

७

हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण-साहित्य और अन्य

भूमिका

इतर साहित्य की भाँति ही जैन हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य के विकास की यात्रा मे भी अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी का पडाव आता है। हिन्दी साहित्य मे भी जैन साहित्य प्रचुरता के साथ मिलता है। वर्तमान मे अनेक मनीषि साहित्यकार इस दशा मे कार्य करने के लिए सचेष्ट हैं और अब तक रचित हिन्दी जैन कृष्ण साहित्य जो समय के आवरण मे लुप्त हो गया है उसका भी पुन अन्वेषण हो रहा है। फलत अतीत में रचित ऐसे अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अन्वेषित हुए हैं जिनके कारण आदिकालीन साहित्य की कुछ प्रतिष्ठित मूल धारणाओ को भी पुनर्विचार को प्रेरणा दी है। कुछ विद्वानो का यह मत रहा है कि आदिकाल में ही हिन्दी साहित्य की प्रमुख कृतिया मिलती हैं[1]—खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचद प्रकाश, जयमयक जस चन्द्रिका, परमाल रासो, रणमल छन्द, खुसरो की पहेलिया, विद्यापति पदावली आदि।

इन कृतियो को महत्ता प्रदान करते हुए आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियो एव विशेषताओ का अध्ययन करने के लिए इन कृतियो को आधारभूत माना गया है। जैन साहित्य भण्डारो की खोज की उपलब्धियो ने उन सारी धारणाओ को प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो द्वारा आदिकालीन कृतियो के रूप में निश्चित की गयी कृतियो मे से कुछ को छोडकर शेष नयी खोजो पर सन्दिग्ध ठहरती हैं। इन नवीन खोजो के निष्कर्षानुसार इनमे से अनेक ग्रन्थ बहुत बाद की रचनाएं सिद्ध होती हैं और साथ ही अनेक नवान्वेषित कृतिया आदिकाल की रचनाओ के

१. स्व० आचार्य रामचद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास

रूप में प्रतिष्ठित होने योग्य सिद्ध हो रही हैं। इस प्रकार की अधिकांश कृतियाँ जैन हिन्दी साहित्य की हैं।

हिन्दी में श्रीकृष्ण सम्बन्धी साहित्य जैन और जैनेतर दोनों ही क्षेत्रों में पर्याप्त रचा गया और रचा जा रहा है। यद्यपि मूल प्रतिपाद्य विषय श्रीकृष्णचरित दोनों ही क्षेत्र के लिए एक ही रहा है, तथापि दोनों क्षेत्रों की रचनाओं में कतिपय ऐसी भिन्नताएं और असामान्यताएं भी विद्यमान हैं। उनके आधार पर इन दोनों प्रकार की रचनाओं को स्पष्टतः पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है। दोनों की आकृतियां ही पृथक्-पृथक् दृष्टिगत होती हैं।

जैन और जैनेतर कृष्ण साहित्य में शिल्प सम्बन्धी एक मूलभूत अंतर तो यह है कि जैन क्षेत्र में यह साहित्य अधिकांशतः प्रबन्धात्मक है। इन रचनाओं में श्रीकृष्ण जीवन सम्बन्धी प्रसंगों का एक सुगठित और सोद्देश्य कथानक का आधार लिया गया है। इसके विपरीत जैनेतर हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य अधिकांशत. मुक्तक रूप का है।

अन्य ज्ञातव्य, महत्वपूर्ण अन्तर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से सम्बध रखता है जिसे जैन और जैनेतर क्षेत्रों में अपनाया गया है। हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य की जैनेतर परम्परा मे श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का जो रूप खड़ा हुआ है, उसके अनुसार श्रीकृष्ण गोपीजनवल्लभ राधाधरसुधापायी, रास-प्रिय, रसिक, वनमाली, होली खेलने वाले लला ही अधिक लगते हैं। उनका यह रूप केलि-प्रिय और सामान्य धरातल तक ही सीमित रह गया है। जैनेतर परम्परा में वैदिक मान्यता के अनुरूप उनके व्यक्तित्व में अवतारीतत्व, दिव्यता और अलौकिकता भी ठीक से नही उतर पायी है। जैन परम्परा में भी यह अलौकिकता एवं दिव्यता नही आ पायी है और न वह आ भी सकती थी। कारण यह है कि ईश्वर जैसी किसी सत्ता में मूलत जैनो का वह विश्वास ही नहीं है। जैनमत तो मानवीय सत्ता को ही सर्वोपरि मानता है। श्रीकृष्ण का जो स्वरूप जैन परम्परा में मान्य रहा है वह तो एक पराक्रमशील महान् पुरुष का ही है। इस स्वरूप में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण साहित्य सर्वथा सफल और समर्थ रहा है। श्रीकृष्ण इस परंपरा मे भी मानव और लौकिक रूप मे ही चित्रित हुए हैं। किन्तु, उनके व्यक्तित्व मे एक भव्यता और महानता के दर्शन होते हैं। उन्हें साधारण रसिया के स्तर पर नही लाया गया अपितु नरोत्तम माना गया है। वे जैन परपरा में मान्य ६३ शलाका पुरुषों में सम्मान्य स्थान रखते हैं और शूर-वीर, शक्तिशाली, यशस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी-सम्राट हैं। उन्हें शक्ति, शील व सौंदर्य का सगमरूप दिया गया है। वे

"वासुदेव" है और अधम, आततायी, अन्यायी एवं अत्याचारी जनो से पृथ्वी को भार-मुक्त करने वाले हैं।

श्री महावीर कोटिया की मान्यता है कि आसन्न-भूतकाल में ही लगभग पचास ऐसे ग्रथ खोजे गये हैं जिनकी गणना हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य की परपरा मे की जा सकती है। इनमे से कतिपय ग्रथ काव्य की दृष्टि से अति सुदर और उत्तम हैं। आदिकाल की परिधि में आने वाले ग्रथों को उन्होने विशेष उल्लेखनीय माना है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी इन ग्रथो का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी जैन कृष्ण चरित सबधी प्रमुख रचनाएँ निम्नानुसार हैं—

	कवि का नाम	कृति का नाम	रचना काल
१	नेमिनाथ रास	सुमतिगणि[2]	१२३८ ई०
२.	गजसुकुमाल रास	कवि देल्हण (देवेंद्र सूरि)[3]	१३ वी शताब्दी
३.	प्रद्युम्न चरित	कवि सधारु[4]	१३५४ ई०
४	रगसागर नेमि फागु	सोमसुदरसूरि[5]	१४२६ ई०
५.	सुरगाभिध नेमिफागु	धनदेवगणि[6]	१४४५ ई०
६	हरिवशपुराण	ब्रह्म जिनदास[7]	१४६३ ई०
७	नेमिनाथ फागु	जयशेखरसूरि[8]	१५वी शताब्दी
८	बलिभद्र चौपई	कवि यशोधर[9]	१५२८ ई०
९	नेमिनाथ रास	मुनि पुण्यरतन[10]	१५२९ ई०
१०	प्रद्युम्नरासो	ब्रह्म रायमल[11]	१५७१ ई०

२ हस्तलिखित प्रति जैसलमेर दुर्ग शास्त्र भण्डार

३ आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाए, पृ० ५७ से ६० स डा. गणपति चद्रगुप्त

४ स प चैनसुखदास न्यायतीर्थ व डा कस्तुरचन्द कासलीवाल

५ वही—पृ ११६ से १२६

६ हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतिया, पृ १३६ से १५८

७ हस्तलिखित प्रति खण्डेलवाल दिगबर जैन मन्दिर, उदयपुर

८ वही, जैसे पाच में है।

९. अप्रकाशित

१० अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दिगबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर

११ प्रति उपलब्ध आमेरशास्त्र भण्डार, जयपुर

	कवि का नाम	कृति का नाम	रचनाकाल
११.	नेमीश्वर रास	ब्रह्म रायमल[12]	१५५८ ई०
१२.	नेमीश्वर की वेलि	कवि ठाकुरजी[13]	१६वी शताब्दी
१३.	बलभद्र वेलि	कवि सालिग[14]	ई० सन् १६१२
१४.	हरिवंशपुराण	शालिवाहन[15]	१६३८ ई०
१५.	नेमीश्वर चंद्रायण	भ० नरेंद्रकीर्ति[16]	१६३३ ई०
१६	नेमिनाथ रास	कनककीर्ति[17]	१६३५ ई०
१७	नेमिनाथ रास	मुनि केशरसागर[18]	प्रतिलिपि सन् १६३५ ई०
१८.	प्रद्युम्न प्रबंध	देवेंद्रकीर्ति[19]	१६६५ ई०
१९.	पांडवपुराण	बुलाकीदास[20]	१६९७ ई०
२०	नेमिश्वर रास	नेमिचंद[21]	१७१२ ई०
२१.	हरिवंशपुराण	खुशालचंद काला[22]	१७२३ ई०
२२.	उत्तरपुराण	खुशालचंद काला[23]	१७३२ ई०
२३.	नेमिनाथ चरित्र	अजयराज पाटनी[24]	१७३६ ई०

---

१२. प्रति उपलब्ध आमेरशास्त्र भण्डार, जयपुर

१३. प्रति उपलब्ध दिगंबर जैन मंदिर बधीचन्द, जयपुर

१४. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, वि० स० १६६९ की प्रति उपलब्ध है।

१५. प्रति उपलब्ध दिगंबर जैन पल्लीवाल मन्दिर, पुलियागंज, आगरा और आमेर-शास्त्र भण्डार, जयपुर

१६. प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

१७, अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर

१८ ,, ,, ,, ,,

१९. ,, ,, दिगंबर जैन भण्डार, जयपुर

२०. ,, ,, शास्त्र भण्डार, श्री महावीरजी जयपुर

२१. ,, ,, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

२२ ,, ,, ,, ,,

२३ ,, ,, दिगंबर जैन भण्डार, जयपुर

२४. ,, ,, ,, ,,

२४	नेमिनाथ चरित्र	जयमल[25]	१७५७ ई०
२५.	नेमिनाथ रास	रतनमुनि[26]	१७६७ ई०
२६	नेमनाथ रास	विजयदेवसूरि[27]	१७६९ ई०
२७	नेमिचद्रिका	मनरगलाल पल्लीवाल[28]	१८२३ ई०
२८	प्रद्युम्न चरित	मुन्नालाल[29]	१८४४ ई०
२९.	कृष्ण की रिद्धि	बुद्धमल[30]	१८४४ ई०
३०	भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम कृष्ण	मुनि चौथमलजी[31]	१९४१ ई०
३१	भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन	श्री देवेंद्रमुनि जी शास्त्री[32]	१९७१ ई०

अमम स्वामी चरित्र—

"अमम स्वामी चरित्र" शीर्षक से मुनिरत्नसूरि द्वारा वि० स० १२५२ मे रचना की गयी है। इस ग्रथ मे श्रीकृष्ण का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है जो अमम स्वामी के नाम से भावी तीर्थंकर होने वाले हैं। ग्रथ मे श्रीकृष्ण के पूर्वभवो के वर्णन भी हैं—यह इस ग्रथ की विशेषता है। सामान्यत· श्रीकृष्ण के पूर्वभवो को या तो अन्य ग्रथो मे वर्णित ही नहीं किया गया या उनका अतिसक्षिप्त वर्णन ही किया गया है।

इन मौलिक रचनाओ के अतिरिक्त कतिपय अनुवाद ग्रथ भी हैं। मूलरूप मे अन्य भाषाओ मे रचित प्रमुख ग्र थो का हिंदी मे अनुवाद किया गया है। प्रमुख अनुवादित ग्र थो के नाम इस प्रकार हैं·

---

२५ अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध विनयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर
२६. ,, ,, दिगबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर
२७ ,, ,, ,, ,,
२८ ,, ,, ,, ,,
२९ अप्रकाशित, दिगबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर
३०. ,, विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर
३१. ,, सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सिहोर केण्ट
३२ प्रकाशित तारक गरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

अनुवादित ग्रथ	अनुवादक
नेमिपुराण भाषा	भागचंद
नेमिपुराण भाषा	बखतावरमल
प्रद्युम्नचरित भाषा	ज्वालाप्रसाद बखतावर सिंह
पाडव पुराण	पन्नान्नाल चौधरी
नेमिपुराण भाषा	उदयलाल
नेमिनाथ चरित	काशीराम
प्रद्युम्नचरित	शीतलप्रसाद
प्रद्युम्नकुमार (पद्यानुवाद)	अमोलक ऋषिजी
प्रद्युम्नकुमार (गद्य संस्करण)	शोभाचन्द्र भारिल्ल
उत्तर पुराण वचनिका	पन्नालाल दूनीवाले
प्रद्युम्नचरित	बख्तावरमल रतनलाल
प्रद्युम्नचरित वचनिका	मन्नालाल बैनाडा

स्थानकवासी जैन परंपरा मे अनेक मुनिवर स्वाध्याय व सृजन की साधना मे भी प्रवृत्त हैं और उनके सद्-प्रयासो से जैन धर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार में अत्यंत मूल्यवान योगदान हुआ है। विगत कुछ दशको से तो एक प्रबल अभियान के रूप में इस प्रयत्न को ग्रहण किया जा रहा है और इसकी उत्तम उपलब्धिया भी हो रही हैं। किंतु, यत्किंचित् रूप में यह प्रयत्न प्रत्येक काल में अवश्य अस्तित्व मे रहा है। इन असख्य ग्रन्थो में अनेक रचनाए जैन परपरानुसार श्रीकृष्ण के जीवन और व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालती हैं।

आचार्य श्री जयमल जी महाराज की इस प्रकार की रचनायें हैं—भगवान नेमिनाथ, महारानी देवकी, श्रीकृष्ण की ऋद्धि आदि।[33] इसी प्रकार कवि रायचंद जी महाराज की प्रतिष्ठित रचनाएं हैं—राजीमती नेमिनाथ चोढाल्या (सं० १८३४), राजीमती रथनेमि की सज्झाय (सं० १८४१), कृष्ण भेरी सवाद (स० १८४३), देवकी रानी की ढाल आदि[34]। आचार्य रायचन्द जी म० आचार्यजयमल जी महाराज के संप्रदाय के थे।

---

३३. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि द्वारा "जयवाणी" सन्मति ज्ञान पीठ आगरा से वि० स० २०१६ मे प्रकाशित

३४ मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ का लेख—सतकवि रायचद जी और उनकी रचनाए

श्री चौथमलजी महाराज ने श्रीकृष्ण लीला की रचना की, नेमिचंद जी महाराज की रचना नेमिनाथ और राजुल है।[35] आचार्य खूबचद जी महाराज ने प्रद्युम्न और शाबकुमार की ढाल बनायी। जैन दिवाकर चौथमल जी महाराज ने भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण[36] तथा मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमल जी महाराज का महाभारत[37] व प्रवर्तक शुक्लचद जी महाराज[38] तथा प्रवर्तक सूर्यमुनि[39] जी महाराज का महाभारत भी सुन्दर रचनाए हैं। तेरापथी मुनियो की भी अनेक रचनाए मिलती हैं।[40]

पं० काशीनाथ जैन का नेमिनाथ चरित्र भी एक सुदर कृति है।

शोध-संपादन के आज के युग में अनेक आधुनिक प्रतिभाशाली साहित्यकारो ने अपने कौशल का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण सबधी चरित को अपने-अपने रूपों और आकारो मे प्रस्तुत किया है। जयपुर, जोधपुर, खण्डप, पीपाड, उदयपुर आदि स्थानकवासी भण्डारो मे अनेक ग्रन्थ सुरक्षित हैं।

प० सुखलालजी ने "चार तीर्थंकर" मे और पडित कैलाशचन्द जी ने 'जैन साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठका' मे श्रीकृष्णचरित की जैन परपरा से अनुमोदित झाकी प्रस्तुत की है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने 'प्राचीन जैन ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण का नाम' के लेखो द्वारा व्यवस्थित रूप मे सक्षिप्त किंतु ठोस व प्रामाणिक श्रीकृष्ण-जीवन के प्रसग प्रस्तुत किए हैं। 'अरहत नेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण' मे श्रीचन्दजी रामपुरिया का भी ऐसा ही सफल उपक्रम हमारे सामने आता है। श्री महावीर कोटिया ने "जैन श्रीकृष्ण साहित्य में श्रीकृष्ण" जैसे लेखो के माध्यम से श्रीकृष्ण चरित को अद्भुत कौशल के साथ ज्ञापित किया है। श्री कोटिया के ऐसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लेख जिनवाणी पत्रिका मे सादर स्थान प्राप्त करते रहे हैं।[41] 'मुनि हजारीमल अभिनदन ग्रथ' मे इस सबध मे श्री कोटिया की प्रतिभा का परिचय मिला है।

---

३५. स० पूज्य श्री देवेंद्र मुनिजी "नेमवाणी"

३६ भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, प्र० ब्यावर

३७ पाडव यशोरसायन (महाभारत) ले मरुधरकेसरी मिश्रीमल,

३८ महाभारत, प्रवर्तक शुक्लचदजी, प्र० अबाला पजाब

३९ महाभारत, सूर्यमुनि जी

४० मुनि धनराज जी, जैन महाभारत आदि।

४१ जैन श्रीकृष्ण साहित्य विषयक लेख—जिनवाणी पत्रिका

प्राचीन और अर्वाचीन जैन श्रीकृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण चरित्र के अनेकानेक प्रसंग अव्यवस्थित रूप से बिखरे पड़े हैं। इनका संकलन और इन्हे व्यवस्थित रूप देकर जैन दृष्टि से श्रीकृष्ण का समग्र व्यक्तित्व एक साथ उभारने के भी अध्यवसाय पूर्ण कुशल प्रयत्न हुए हैं। इस दृष्टि से पूज्य युवाचार्य मधुकरमुनि जी व पूज्यपाद देवेंद्रमुनि जी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मधुकर मुनिजी की 'जैन कथामाला की' रचना के विराट प्रयत्न को सभी दिशाओं से साधुवाद मिला है उन्होंने अपने "जैन श्रीकृष्ण कथा" में विभिन्न आगम व आगमेतर ग्रंथो से अपेक्षित प्रसंगों का चयन कर श्रीकृष्ण चरित को बड़ी कोशलता के साथ रूपायित किया है। इसी प्रकार पूज्यवाद श्री देवेंद्र मुनि जी शास्त्री ने अपने 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्म-योगीश्रीकृष्ण : एक अनुशीलन ग्रंथ' मे अथक श्रमशीलता, विद्वत्ता, बहुश्रुतता और बहुज्ञता का परिचय देते हुए अनेक ग्रथो से अपेक्षित सामग्री जुटाकर श्रीकृष्ण का जो जैन परंपरा संमत स्वरूप खड़ा किया है वह एक श्लाघनीय और स्तुत्य कार्य है। इस ग्रंथ द्वारा विद्वान लेखक ने अनेक जैन मान्यताओं का प्रतिपादन और जैन दर्शन के अनेक मूलभूत विचारो का सुगम संप्रेषण भी किया है और साथ ही श्रीकृष्ण के सपूर्ण चरित्र को इस कौशल के साथ रूपायित किया है कि जैन परपरा द्वारा स्वीकार्य स्वरूप मे श्रीकृष्ण के चरित्र की सभी विशेषताए स्वत ही व्यक्त होकर निखर उठी हैं। इस ग्रंथ में मुनि जी की मौलिकता और शोधप्रधान दृष्टि विशेष द्रष्टव्य है।[४२]

(१) हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण के रचयिता शालिवाहन थे, जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (सस्कृत) के आधार पर यह रचा गया है। रचयिता ने इसका उल्लेख अपनी रचना की प्रत्येक सधि के अंत मे इस प्रकार दिया है'—'इति श्री हरिवंशपुराणे सग्रहे भव्यसमंगलकरणे आचार्य-श्रीजिनसेन-विरचिते तस्योपदेशे श्रीशालिवाहन विरचिते।' यह ग्रंथ संवत् १६९५ सन् १६३८ में रचा गया जिसका कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

> संवत् सोरहसै तहां भये, तापर पचानव गहे।
> माघमास कृष्ण पछि जानि, सोमवार सुभवार बखानि ॥३। ७८॥

यह रचना जब हो रही थी तब लेखक आगरे में रहता था तथा वही पर यह रचना पूर्ण की गयी थी, उस समय शाहजहा आगरे में राज्य करता था। इसका भी उल्लेख—

---

४२ भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी . श्रीकृष्ण एक अनुशीलन—देवेंद्रमुनि शास्त्री

नगर आगरा उत्तम थानु, शाहजहाँ साहि दिए मनु भानु (३-८ ।)

कई स्थानो पर इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हैं।[43] इस रचना की १२ से २६ सधियो मे श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित हुआ हैं। प्रथम संधि मे २४ तीर्थंकरो की व सरस्वती माता की वदना है। दूसरी, तीसरी सधि मे त्रैलोक्य वदन, चौथी सधि में तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत का चरित्र वर्णन है। ५ से ११ तक की सधियो मे २१ तीर्थंकरो, १२ चक्रवर्ती, ८ बलदेव, ८ वासुदेव और ८ प्रतिवासुदेवो का सक्षिप्त चरित्र है। इसके बाद सपूर्ण कृति मे २२ वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि और नवम वासुदेव कृष्ण चरित्र का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। साथ ही कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमाल तथा पुत्र प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी अवातर प्रसगो मे आया है। भाषा राजस्थानी से प्रभावित व्रज है। दोहा, चौपाई छदो में रचित इस रचना में कृष्ण के वीरत्व को अधिक उभारा गया है।

कस की मल्ल-शाला मे कृष्ण-पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है

चडूर मल्ल उठ्यो काल समान, वज्रमुष्टि दैयत समार।
जानि कृष्ण दोनो कर गहे, फेर पाई धरती परु चहे ॥१॥[44]

रुक्मिणी-हरण के प्रसग मे कृष्ण जब पाचजन्य शख फूकते हैं तो सपूर्ण धरामंडल थरथरा उठा व शत्रुगण कंपित हो उठे[45]—

लई रुक्मिणी रथ चढाई: पचाइण तब पूरीयो।
णिसुनि वयणु सव सेन कंप्यो महिमण्डल थरहरीयो।
मेरु कमठ तथा शेष कम्प्या महलो जाइ पुकारियो।
पुहुमि राहु अवधारियो, रुक्मिणी हरि ले गयो ॥२॥

इस प्रकार युद्ध का कवि ने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन कर काव्यकृति मे चमत्कार भर दिया है। साथ ही जरासध युद्ध मे भी यह वीरत्व साकार हो उठा है। जो चक्र जरासध का कृष्ण के ऊपर वार करने के लिये उठा था

४३. हरिवशपुराण (एक प्रतिलिपि), श्री पल्लीवाल दिगवर जैन मदिर, धुलियागंज, आगरा, प्रतिलिपिकाल सवत् १८०८ है। दूसरी प्रति आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर—प्रतिलिपि सवत् १७५९ है।

४४ शालिवाहन कृत हरिवशपुराण (हस्तलिखित आगरा प्रति, पत्र ४५/१७८०-८१।

४५. वही—पत्र ५२/१९५३।

इन ग्रथों के रचयिता जाति से दिगंबर जैन थे और इनका ज टोडा (जयपुर) ग्राम में हुआ। इसके बाद ये सागानेर में जाकर बस ग और यही पर दोनो ग्रथ रचे गये।

हरिवश पुराण और उत्तरपुराण मे परपरागत जैन कथा-वस्तु विवेचन है। हरिवशपुराण मे तीर्थंकर अरिष्टनेमि, उनके समकालीन कृष्ण बलराम और जरासध आदि शलाका पुरुषो का वर्णन है। उत्तरपुराण ऋषभदेव के अतिरिक्त २३ अन्य तीर्थंकरो और उनके समकालीन शलाक पुरुषो के सक्षिप्त चरित वर्णित हैं। दोनों कृतियो की भाषा बोलचाल की सरल हिंदी है तथा दोनो मे प्रसाद गुण पाया जाता है।

छदो की दृष्टि से चौपाई, दोहा, सोरठा आदि मात्रिक छदो क प्रयोग हुआ है। सर्ग के लिए सधि शब्द का प्रयोग किया है। परपरागत तीन श्रेष्ठ जैन पुरुष व्यक्तियों का इसमे समावेश है। यहा पर दोनो मे से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

१—देवाँ वन मे जाय, मेघ तनी वरसा करी।[50]
गोवर्धन गिरिराय, कृष्ण उठाय चापसौं।

दूसरा उदाहरण मल्लयद्ध प्रसग का है, यथा—

२—जाके सम्मुख दोड्यो जाय, वेत उपारि लये उमगाय।
ताहि वत थकी गज मारी, हस्ति भागि चली पुर मझारि॥
ताहि जीति शोभित भए, कंस आप मल्ल मति लखितए॥
रुधिर प्रवाह थकी विपरीत, देख क्रोध धरि करि तजि नीति॥
आप मल्ल के आया साथ, तब हरि वेग अरि निध जोय॥
चरण पकरि तब लयो उठाय, पंखि सन उत ताहि फिराय॥
फेरि धरणि पटक्यो तबे, कृष्ण कोय उपनाय।
मानू यमराजा तणी, सौले भेट चढ़ाय॥[51]

इसमें कृष्ण के वीर स्वरूप का उत्साह के साथ वर्णन है।

जरासध के साथ हुए युद्ध मे कृष्ण का यही पराक्रम अपने पूर्ण रूप से प्रकट हुआ है।

---

५०. हरिवशपुराण पन्ना ६४, छद ४७।
५१. उत्तरपुराण पन्ना २००, छद ३ से ६।

दोनों कृतियां कृष्ण की वीरता और ऐसे पराक्रमो के अनेक वर्णनों से भरी पड़ी हैं।

(३) नेमिनाथ रास :

श्रीकृष्ण चरित से संबद्ध उपलब्ध रास साहित्य मे "नेमिनाथ रास" प्राचीनतम काव्य है। इसका रचना काल वि० सं० १२७० माना जाता है।[52] इसके कर्त्ता सुमति गणि हैं जो खरतरगच्छीय श्री जिनपतिसूरि के शिष्य थे। रचनाकार का नामोल्लेख ग्रथ की पुष्पिका मे हुआ है

"इति श्री नेमिकुमार रास पण्डित सुमतिगणि विरचित ॥"

कृतिकार सुमति गणि राजस्थान के निवासी थे—ऐसा स्वीकार किया जाता है। जैसलमेर दुर्ग के बड़े भण्डार में "नेमिनाथ रास" की एक हस्त-लिखित प्रति उपलब्ध है। भाषा की दृष्टि से इस काव्य-रचना का अति महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रारंभिक हिंदी की एक प्रौढ और सुदर रचना है। यह उस काल की रचना है जब कि हिंदी मे अत्यल्प रचनाएं हो रही थी। तब इस प्रकार की परिपक्व रचनाए तो और भी कम थी। यही इसका महत्व है।

श्रीकृष्ण-वृत्तांत

नेमिनाथ रास नायक प्रधान शीर्षक है और इससे स्वत स्पष्ट हो जाता है कि इस रास काव्य का मूल प्रतिपाद्य विपय भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित्र है। तथापि प्रासगिक रूप मे श्रीकृष्ण का चरित्र भी वर्णित हुआ है। नेमिनाथ और राजुल का परिणय इस ग्रथ में प्रमुख वर्ण्य विषय रहा है और इतिहास साक्षी है कि इस सारे प्रसग में श्रीकृष्ण की भूमिका न केवल विशद अपितु महत्वपूर्ण भी रही है। ऐसी स्थिति मे श्रीकृष्ण का वृत्तात इस रचना मे व्यापकता के साथ आये तो स्वाभाविक ही है।

"नेमिनाथ रास" में श्रीकृष्ण द्वारका के परम शक्तिशाली और पराक्रमी नरेश के रूप मे वर्णित हुए हैं। उनकी विभिन्न रानियो—विशेषत: सत्यभामा का परिचय भी विस्तार से दिया गया है। विभिन्न छोटे-छोटे प्रसगो मे श्रीकृष्ण का उल्लेख मात्र ही प्रस्तुत काव्य मे मिलता है। उनके चरित्र और चरित का व्यवस्थित एव क्रमिक विकास नही है।

---

५२ भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण एक अनुशीलन, ले देवेंद्र मुनि शास्त्री, प्र० तारक गुरु जैन ग्रथालय, उदयपुर।

काव्यरूप एव साहित्यिक सौष्ठव .

प्रस्तुत रचना एक चरित्र काव्य है अर्थात् यह एक प्रबंध काव्य है। कथानक की परीक्षा करने पर यह एक खड काव्य सिद्ध होता है। एक सफल खडकाव्य चरितनायक नेमिनाथ के जीवन की एक अतिमहत्वपूर्ण घटना— परिणय प्रसग कथानक के केंद्र मे रही है। नेमिनाथ चरित की सीमा मे रहकर काव्य इसी के इर्दगिर्द घूमता रहा है। नायक के चरित्र का उद्घाटन बडे ही कौशल के साथ हुआ है। रस, अलंकार योजना, शैली, वस्तुविधान, प्रबधात्मकता आदि सभी विशेषताओं से युक्त प्रस्तुत खंड काव्य एक उत्तम कृति है।

कथानक एवं उसकी संरचना

जैन पौराणिक ग्रथो में उपलब्ध नेमिनाथ आख्यान प्रस्तुत खंडकाव्य का आधार रहा है। वृष्णिवंशीय समुद्रविजय सौरियपुर नगर के राजा थे। राजा समुद्रविजय और रानी शिवा देवी राजकुमार नेमि के जनक-जननी थे। इन दिनो द्वारका के समुद्र राज्य के स्वामी श्रीकृष्ण राजकुमार के चचेरे भाई थे। द्वारका में ही समुद्रविजय का भी निवास था और नेमि-कुमार का बाल्यकाल द्वारका में श्रीकृष्ण के साथ ही व्यतीत हुआ। आरभ से ही सभी सुख-सुविधाओ एव वैभव से परिपूर्ण परिस्थितियो के होते हुए भी नेमि निर्लिप्त मन के स्वामी रहे। सुखोपभोग के प्रति उनमे विकर्षण का भाव ही प्रधान रहा। वय होने पर श्रीकृष्ण द्वारा नेमिकुमार का विवाह राजा उग्रसेन की राजकुमारी राजुल के साथ निश्चित कर दिया गया। तोरण द्वार पर पहुचते-पहुचते भोज के लिए बाध रखे पशुओ का करुण-क्रदन सुनकर वर नेमिकुमार को ससार से विरक्ति हो आयी और वे अनब्याहे ही लौट आए। रेवतक पर्वत (गिरनार) पर तपस्या लीन नेमिनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे अर्हन्त कहलाए। राजीमती ने भी इनके सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। कालातर मे दोनो को मोक्ष प्राप्त हुआ। सक्षेप में "नेमिनाथ रास" का यही घटनाक्रम है।

शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो कार्य व्यापार की विभिन्न अवस्थाओ के उचित निर्वाह से कथानक-विकास भी सफलता के साथ हुआ है। नेमिनाथ द्वारा कैवल्य-प्राप्ति इस कथानक मे उद्देश्य अथवा फल है। सासारिक सुख-सुविधाओ के प्रति उदासीनता का भाव और निर्लिप्तता चरितनायक के जीवन के इस रूप में आरभ अवस्था दिखाई देती है। विरक्ति ही तो

कैवल्य या मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है। श्रीकृष्ण अपनी रानियो की सहायता से नेमिकुमार को संसाराभिमुख बनाने और विवाह के लिए तत्पर करने का प्रयत्न करते हैं। यह विघ्न की अवस्था है। किंतु, रानिया असफल रह जाती हैं। यह नायकद्वारा फलप्राप्ति की आशा दिखानेवाली स्थिति प्राप्त्याशा की अवस्था है। नेमिकुमार वरवेष में राजुल के द्वार की ओर बढते हैं। यहाँ फलप्राप्ति के मार्ग में वास्तविक और प्रबल विघ्न उपस्थित हो जाता है। किंतु, जब वे निरीह पशुओ का करुण-क्रंदन सुनकर विरक्ति भावना से प्रेरित होकर तोरणद्वार से लौट आते हैं तो यहा सारी विरोधी परिस्थितियाँ पराभूत हो जाती हैं। फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। यह नियताप्ति की अवस्था है। अंत मे कठोर तपसाधना द्वारा वे निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं जो कथानक का लक्ष्य है। यह फलागम की अवस्था है। अर्थ-प्रकृतियों और संधियों का निर्वाह भी इस कथानक में सफलता के साथ हुआ है। कथानक सर्वथा कसा हुआ है और कही भी शिथिलता नही आ पाई है। मात्र ५८ छंदों में ही सारी कथा वर्णित कर दी गयी है। इस दृष्टि से भी यह खंडकाव्य ही माना जावेगा।

चरित्रचित्रण :

खंडकाव्य की प्रकृति के अनुरूप नायक की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन करना ही रचनाकार का प्रमुख लक्ष्य होता है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण गौण होता है और वह नायक के चरित्र को उभारने में सहायक मात्र होता है। "नेमिनाथ रास" भी इस सामान्य सिद्धात का अपवाद नही है। इसमें नायक नेमिनाथ को चरित्रचित्रण की दृष्टि से प्रमुखता प्राप्त हुई है। नेमिनाथ श्रेष्ठ राजकुलोत्पन्न अतिसुंदर और सर्वगुण सपन्न राजकुमार हैं और अंततः तीर्थंकरत्व के गौरव से मंडित होते हैं। नायकोचित गरिमा से युक्त नेमिकुमार बलशाली हैं। बाल्यावस्था से ही श्रीकृष्ण के शस्त्रागार में जाकर उन्होंने अपनी शक्ति का जो परिचय दिया है वह इसका प्रमाण है। वे श्रीकृष्ण के धनुष को टंकारित कर देते है, जिन्हे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भी नही चढ़ा सकता था। पाचजन्य शख को वे आस्फुरित कर देते हैं, जिसके आस्फुरण से स्वय श्रीकृष्ण चौंक पड़ते हैं। सर्व सुख-सुविधा सुलभ होने पर भी वे संसार के प्रति आकृष्ट नही होते। इन सुखो को असार मानकर वे इनसे उदासीन रहते हैं। राज्य और वैभव के प्रति उन्हे तीव्र विरक्ति थी। यही विरक्ति प्रस्तुत काव्य मे अनेक स्थलों पर व्यक्त हुई है तथा उत्तरोत्तर विकसित होती है। यही उदासीनता

अतत उनके ससार से विरक्त होने में सहायक होती है। कठोर तप-साधना के परिणाम स्वरूप उन्हे कैवल्य व कालातर में मोक्ष भी प्राप्त होता है।

अन्य पात्र

नायक नेमिनाथ के अतिरिक्त भी अन्य कुछ पात्र ऐसे हैं जिनकी चारित्रिक विशेषताओ का चित्रण इस प्रकार से हुआ है कि उनके नायक के चरित्रगत वैशिष्ट्य को उजागर करने मे तो सहायता मिली ही है, साथ ही संबधित पात्रो के चरित्र को भी महत्वपूर्ण अवकाश प्राप्त हुआ है। ऐसे पात्रो मे अग्रगण्य हैं राजीमती (राजुल)। इसके अतिरिक्त जिन पात्रो का प्रासगिक उल्लेख मिलता है वे हैं—राजा समुद्रविजय, रानी शिवादेवी, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण, बलभद्र, श्रीकृष्ण की अग्रमहिषिया (पट्रानिया), राजुल के पिता राजा उग्रसेन आदि। प्रमुखता के क्रम मे इन सहायक पात्रो मे राजीमती के पश्चात् श्रीकृष्ण का ही स्थान है। किंतु, जैसा कि पूर्व मे वर्णित किया जा चुका है, उनका चरित्रगत विकास इस कृति मे चित्रित नही हो पाया है, स्फुट विशेषताए ही यत्र-तत्र आभासित हो पायी हैं।

रसयोजना

प्रस्तुत काव्य "नेमिनाथ रास" एक भावपूर्ण और सरस सफल खड-काव्य है, इसमें शान्त रस का प्राधान्य है। यह कहना पडेगा कि इसमें वीतराग रस है। चारित्रिक विशेषताओ को देखते हुए स्वय नायक नेमिनाथ तो निर्वेद के ही प्रतिरूप लगते हैं। बाल्यकाल से ही सासारिक सुखो के प्रति उनकी उदासीनता, राज्य-वैभव के प्रति उनकी निर्लिप्तता की भावना, निरीह पशुओ का करुण-क्रदन सुनकर तोरण द्वार से भी अविवाहित लौट आना आदि नायक के निर्वेद भाव को स्पष्टत व्यक्त कर देते हैं। नेमिनाथ के इस स्वरूप से प्रभावित होकर राजीमती द्वारा दीक्षा ग्रहण किया जाना भी इसी वीतराग रस की याने शातरस की प्रबलता मे सहायक हुआ है। अतत नेमिनाथ कैवल्य प्राप्त करते हैं—इस प्रकार खडकाव्य का समापन भी शातरस मे ही होता है। इसे मैं वीतराग रस मानता हूँ।

शातरस की इस प्रधानता के साथ-साथ करुण और शृगार रसो को भी स्थान मिला है। राजीमती का विवाह जब यादव-कुलरत्न अरिष्टनेमि के साथ निश्चित हो जाता है तो मनोज्ञ पति के प्राप्ति की इस कल्पना से राजीमती अत्यत हर्षित उल्लसित और गर्वित होती है। भावी जीवन की गरिमापूर्ण स्वप्नराशि में वह निमग्न सी हो जाती है। भविष्य की उसकी

उदात्त कल्पना और उमग विकसित होते-होते उस समय चरम अवस्था पर पहुच जाती है जब कि वरवेश में नेमिकुमार तोरण द्वार तक पहुंचते हैं। किंतु, इसी समय उसकी सारी आशाओ पर तुषारपात हो जाता है। नेमिकुमार तोरण से ही लौट जाते हैं। बाहर-भीतर से सजी सवारी राजकुमारी राजीमती का सारा शृगार क्रंदन मे परिणत हो जाता है। यह करुणापूर्ण प्रसग हृदयद्रावक है। शृंगार के सयोग पक्ष का पटाक्षेप हो जाता है और विप्रलभ का द्वार खुलता है। इस स्थल से राजुल द्वारा दीक्षा ग्रहण के प्रसंग तक यही वियोग शृंगार रस चलता है तथा अंत मे वीतराग रस मे उसकी परिणति हो जाती है।

नेमिकुमार के बालवर्णन मे वात्सल्य रस की भी सुदर झाकी मिलती है। इस प्रकार काव्याकृति मे वात्सल्य, संयोग-वियोग, करुण और विशेष प्रकार से शात रस अर्थात् वीतरागी रस का सुदर निर्वाह हुआ है।

भाषा छंद एवं अलंकार योजना .

प्रस्तुत काव्य प्रारंभिक हिंदी में रचित, अपने युग की एक अतिसुदर कृति है। हिंदी का यह आरभिक रूप था तथापि भाषा का जो सौष्ठव एवं प्रवाह दृष्टिगत होता है उससे कवि की भाषा का सामर्थ्य प्रतीत होता है। भाषा के जिस रूप का व्यवहार प्रस्तुत रचना में मिलता है, वह तत्कालीन लोक प्रचलित जनसामान्य की भाषा थी। कदाचित् यह भी एक प्रमुख कारण था कि अपने युग मे रासक काव्य के रूप मे उक्त काव्य को अपार जनप्रियता प्राप्त हुई।

छद की दृष्टि से प्रस्तुत कृति में आद्योपात एक ही पद्धति का निर्वाह दृष्टिगत होता है। समस्त रचना मे धूवड छद का प्रयोग हुआ है और छदात मे एक-एक द्विपदी मिलती है।

प्रस्तुत खड-काव्य मे अलकारो का बडा ही सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। अलकार-प्रयोग से काव्य का अपना मौलिक सौंदर्य अभिवर्धित ही हुआ है। अलकार स्वाभाविकता पूर्वक आ गये हैं, अनावश्यक व अवांछित अवस्था में वे नही दिखायी देते है। कृति मे अनेक स्थलो पर उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलकारो का सुदर प्रयोग द्रष्टव्य है।

(४) प्रद्युम्नरास :

प्रस्तुत कृति के लेखक ब्रह्म रायमल हैं। १७वी शती के विद्वान सतों में इनका उल्लेखनीय स्थान है। ये मुनि अनतकीर्ति के शिष्य थे। राजस्थान

के विभिन्न नगरों में जैसे सागानेर, रणथम्भोर, साभर, टोडारायसिंह और हारसोल में ये विचरण करते थे। इनकी रचनाओं मे क्रमश:

नेमीश्वररास	१६१५	हनुमंतरास	१६१६
सुदर्शनरास	१६२६	श्रीपालरास	१६३०
प्रद्युम्नरास	१६२८	भविष्यदत्त रास	१६३३
परमहस चौपाई	१६३६		

तथा जम्बुस्वामी चौपाई, निर्दोष सप्तमी कथा, आदित्यवार कथा, चद्रगुप्त स्वप्न चौपाई, चितामणि जयमाल, ज्येष्ठ जिनवर कथा और ४६ ठाणा, ये सभी इनकी रचित कृतिया हैं। इन कृतियो की भाषा राजस्थानी है, तथा ये गीतात्मक शैली मे लिखी हुई हैं। ऐसा लगता है कि कवि अथवा उनके शिष्य इन कृतियों को सुनाया करते थे। भविष्यदत्त रास सर्वोत्तम कृति मानी गयी है।

यहा पर हमने इसका सक्षिप्त परिचय देना ही उचित समझा क्योंकि प्रद्युम्न का चरित्र विस्तृत रूप मे पूर्व ही विवेचित कर चुका हू। इसकी कथा भी प्राय वही है। डा० कस्तूरचद कासलीवाल की पुस्तक अन्य जानकारी के लिये द्रष्टव्य है।[53]

(५) प्रद्युम्नचरित

कवि सधारु कृत प्रद्युम्न चरित की रचना सवत १४११ (सन् १३५४) की मानी जाती है। यह भी एक प्रकाशित रचना है।[54] प्रद्युम्नचरित प्रस्तावना पृ० २६ देखिए।

कृति में श्रीकृष्ण-वृत्तांत

प्रस्तुत प्रबध रचना के चरित नायक कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र, प्रद्युम्नकुमार हैं। उन्ही का चरित प्रमुखता के साथ वर्णित है। किंतु, प्रद्युम्नकुमार श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र हैं इस नाते प्रासगिक रूप में श्रीकृष्ण चरित का वर्णन भी स्वाभाविक ही लगता है। काव्यारभ में ही

५३ राजस्थान का जैन साहित्य डा० कस्तुरचद कासलीवाल, सस्क०, १६७७ पृ० २०८, २०६, प्रकाशक, प्राकृत भारती, जयपुर

५४. प्रद्युम्नचरित सपा० प० चैनसखदास व डा० कस्तरचद कासलीवाल,

द्वारका नगरी का विशद वैभव और सौंदर्य अत्यंत प्रभावशाली ढग से अंकित किया गया है। साथ ही द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के [बल, विक्रम और शौर्य का यशोगान भी हुआ है। नायक प्रद्युम्नकुमार के जनक-जननी होने के नाते इस युगल श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाहादि के सूत्रो को भी कथानक मे समुचित महत्व दिया गया है। यथा—श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कथा, शिशुपाल (रुक्मिणी के लिए नियत्त किया गया वर) के वध का प्रसग आदि ऐसे ही प्रसंग हैं, जो संपूर्ण कथानक में समग्रता लाने की दृष्टि से अनिवार्य भी हैं; जिनके द्वारा श्रीकृष्ण वृत्तात का समावेश इस चरित काव्य में स्वत. ही हो गया है। ऐसे प्रसगो के वर्णन में कवि ने उत्साह भी दिखाया है। इन कथासूत्रो के माध्यम से श्रीकृष्ण के चरित्र की अनेक विशेषताए (यथा शौर्य पराक्रम शक्ति साहसादि) उद्घाटित हो गयी हैं तथा इतर प्रसगो में भी श्रीकृष्ण चरित्र की इन विशेषताओं को प्रतिष्ठित किया गया है। प्रबंध के अतिम दो सर्गों में तो श्रीकृष्ण की धर्मनिष्ठा का अत्यत प्रभावशाली विवेचन किया गया है। वस्तुत. श्रीकृष्ण-वृत्तात की दृष्टि से "प्रद्युम्नचरित" एक अत्यत महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है।

कथानक की सरचना :

कवि ने ७०१ पद्यो में प्रद्युम्न की कथा कही है जो ६ सर्गों मे विभाजित है। घटनाओ का क्रम शृखलाबद्ध है। यह काव्य प्रचलित रूप मे जैन परपरा द्वारा मान्य प्रद्युम्नचरित्र ही है। इस काव्य मे यही वर्णित है और इसके कथानक के आधार जैन पौराणिक ग्रथ ही रहे है। कथानक की दृष्टि से रचना मे कवि के प्रबंध-कौशल का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

श्रीकृष्ण द्वारका के नरेश और सत्यभामा उनकी पटरानी हैं। स्वच्छद विहारी नारद जी का द्वारका आगमन होता है। सत्यभामा द्वारा उपेक्षा पाकर नारद जी क्षुब्ध हो गए और उसका गर्व चूर करने की युक्ति खोजने लगे। कुडनपुर नरेश राजा भीष्म की त्रिलोकसुदरी कन्या रुक्मिणी को उन्होंने माध्यम माना और प्रयत्नपूर्वक श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के मध्य प्रणय सबध स्थापित कर दिया। दोनो पारस्परिक मोह से ग्रस्त हो, एक दूसरे को प्राप्त करने की कामना करने लगते हैं। जब नारद जी सूचित करते हैं कि रुक्मिणी का परिणय शिशुपाल के साथ होना निश्चित हो गया है तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं और विरोध करने पर शिशुपाल का वध कर देते हैं। द्वारका मे श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह सपन्न होता है। और कालातर मे रुक्मिणी राजकुमार प्रद्युम्न को जन्म देती है। छ ही दिन

पश्चात् असुर धूमकेतु शिशु प्रद्युम्नकुमार का अपहरण कर लेता है। विद्याधर राजा कालसवर के यही यह शिशु पोषित होने लगता है। कालसवर की रानी कनकमाला वात्सल्यभाव के साथ प्रद्युम्न को रखती है। १२ वर्ष की आयु का बालक प्रद्युम्न इसी परिवार मे अपना जीवन व्यतीत करता है। वह अनेक विद्याओ और कलाओ में निष्णात हो जाता है।

किशोर प्रद्युम्न अत्यन्त सुदर था। उसका व्यक्तित्व बडा आकर्षक और प्रभावशाली था और शस्त्र-सचालन मे कुशल भी था। यह किशोर बडा पराक्रमी था। इस अवधि के पश्चात् वह द्वारका पहुचता है और अपने माता-पिता से मिलता है। श्रीकृष्ण प्रद्युम्न का राज्याभिषेक कर देते हैं और उसका विवाह भी करा देते हैं। सुदीर्घ सुखी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भगवान नेमिनाथ के उपदेशो से प्रभावित होकर प्रद्युम्नकुमार कठोर तपश्चर्या द्वारा घातिक कर्मों का क्षय करके कैवल्य लाभ करते हैं और आयु के अत मे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। यही घटनाक्रम "प्रद्युम्न-चरित" मे अपनाया गया है।

प्रबध काव्य की दृष्टि से उक्त कथानक सर्वथा सुगठित और सुसबद्ध है। मूल कथा के अतिरिक्त कतिपय अवातर कथाए भी समाविष्ट हैं, यथा—रुक्मिणी-हरण, नारद की विदेह क्षेत्र की यात्रा, सिहरथ-युद्ध, उदधिकुमार का अपहरण, मानकुमार का विवाह, सुभानुकुमार एव शाबकुमार की द्यूत क्रीडा आदि। इन सक्षिप्त कथासूत्रों से प्रवाह मे बाधा नही आयी है अपितु इससे विभिन्न कथा-प्रसंगो को सकारण बनाने और उन्हें परस्पर सबद्ध करने का सफल प्रयास हुआ है। इस प्रयास से काव्य और अधिक प्रभावशाली एव मनोरंजक भी हो गया है और साथ ही ज्ञानवर्धक भी।

नायक द्वारा कैवल्य लाभ ही इस काव्य मे भी कथानक का फल रहा है। किंतु, कथानक का शेषाश प्रद्युम्नकुमार के ऐसे चरित को वर्णित नही करता है जिसमे फल की सारी प्रक्रिया का सन्निवेश हो। अर्थात् विभिन्न अवस्थाओ के निर्वाह की ओर कवि का ध्यान नही रहा है। उसका प्रतिपाद्य तो मात्र परपरागत प्रद्युम्न कथा ही रह गयी है। नायक के लिए सघर्षपूर्ण परिस्थितियां भी बार-बार आयी अवश्य हैं। ये परिस्थितिया फल प्राप्ति के मार्ग मे व्यवधान स्वरूप नही हैं। न ही किसी एक प्रतिनायक से यह सघर्ष होता है। सीधा-सपाट कथानक मात्र यही उद्देश्य रखता है कि प्रद्युम्न कुमार के शौर्यपूर्ण जीवन की सुदर झलक हमे मिल जाए किंतु कथा-

काव्य का फल यह नहो है। फलप्राप्ति तो नायक द्वारा सहसा ही एक आकस्मिक घटना के रूप में हो गयी है। उसके लिए प्रयत्न-क्रम कथानक में दिखाई नहीं देता। न ही प्रयत्नों को निष्फल करने के उद्देश्य से बाधाएं हैं और न बाधाओ को समाप्त करने को नायक की चेष्टाए ही। घात-प्रतिघात की यह स्थिति इस काव्य में फलप्राप्ति के प्रयत्नक्रम के अभाव मे ही नही आ पायी है। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य अवश्य ही सदोष है।

चरित्र-चित्रण :

प्रद्युम्नकुमार प्रस्तुत चरित काव्य का नायक है। राजवंशोत्पन्न प्रद्युम्नकुमार इस प्रकार अभिजात वर्ग के हैं। अपने पिता श्रीकृष्ण की भाति वे वीर और पराक्रमी भी हैं। जैन परपरा मे वे पुण्यपुरुष कामदेव के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। प्रस्तुत काव्य मे नायक प्रद्युम्नकुमार के चरित्र का जो रूप अवस्थित हुआ है, उसके अनुसार धैर्य, साहस, शौर्य, शक्तिमत्ता, सौंदर्य शोभा और उदात्तता के गुण उनकी चारित्रिक विशेषताए हैं। शौर्य एवं प्रताप उनका वंशानुगत ही नही जन्मजात गुण भी है। कवि ने इस बात को उल्लेखित भी किया है। विशेषत प्रद्युम्न चरित के विवेचन की व्रज भाषा बहुत सुंदर रूप से प्रयुक्त है—यथा—

सीहिणी सीहू जणे जो वालु, हस्तीजूह तणो णे कालु।
जूह छाडि गए वण झाऊ, ता कह कोण कहे मरिवाउ ॥१६१॥

अर्थात् सिहनी सिह शावक को जन्म देती है। वही हाथियो के झुण्ड के लिए काल के समान है। यदि अपने समूह को छोड़कर सिह अकेला ही वन में निकलजाए तो उसे कौन ललकार सकता है। इस प्रकार की उक्तियो द्वारा प्रद्युम्नकुमार के साहस-निर्भीकता, एव शक्ति को प्रकट किया गया है। वे युद्ध कौशल में अप्रतिम थे। श्रीकृष्ण के साथ प्रद्युम्न के युद्ध के पश्चात् नारद जी श्रीकृष्ण को उनसे परिचित कराते हुए कहते हैं—

यह सु मयणु गुरुवो वरवीर, रण सग्राम सुहास धीर।
थाह पौरिष को वर्णइ, पणउ यह सो पूत रुक्मिणी तणउ ॥[55]

वीर प्रद्युम्न से युद्ध छेडना ठीक वैसा ही था जैसे आते हुए वज्र को

---

५५ यह वडा भारी वीर है तथा रणसग्राम में धीर एव साहसी है। इसके पौरुष का अधिक वर्णन कौन कर सकता है? ऐसा यह वीर रुक्मिणी का पुत्र है।

झेलना या सर्प के मुख मे हाथ डालना ।[56] समग्र काव्य ही उनके अपा शौर्य के रग में रगा हुआ लगता है ।

प्रद्युम्नकुमार के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी, नारद कालसवर, कनकमाला, भानुकुमार आदि अन्य पात्रों के चरित्र का भी यथासभव चित्रण हुआ है। रुक्मिणी की अतीव सुदरता और पुत्र-प्रेम श्रीकृष्ण की शक्तिमत्ता एवं पराक्रम, बलराम का भ्रातृस्नेह, सत्यभाम की द्वेष भावना, नारद का ज्ञान एवं उनका क्रोध—प्रतिशोध आदि सुदरत के साथ चित्रित हुआ है ।

रस-योजना :

प्रद्युम्न चरित काव्य मे युद्धो के वर्णन अतिरेक के साथ मिलते हैं। श्रीकृष्ण शिशुपाल युद्ध, प्रद्युम्न श्रीकृष्ण युद्ध, प्रद्युम्न कालसवर युद्ध, प्रद्युम्न रुक्मि युद्ध आदि अनेक युद्धो का ऐसा विस्तृत वर्णन हुआ है कि समग्र काव्य मे वीर रस की धारा ही प्रवाहित दृष्टिगत होती है, सर्वत्र ओज ही ओज है। युद्धारभ से पूर्व का वीरो का वार्तालाप भी पूर्णत वीरत्व से ही रससिक्त है।

युद्धोपरात रणक्षेत्र के दृश्य-वर्णन मे बीभत्स रस, रुक्मिणी रूप वर्णन एव श्रीकृष्ण-रुक्मिणी मिलन मे शृगार रस की सृष्टि भी हुई है। अत मे प्रद्युम्न विरक्त हो साधनामार्ग ग्रहण कर लेते हैं और इस स्थल पर शात रस आ जाता है। इस प्रकार वीर रस प्रधान इस प्रबध मे अन्यान्य कतिपय रसो को भी उपयुक्त और समीचीन स्थान प्राप्त हुआ है।

वीररस का उदाहरण जानने के लिए पराक्रमी राजा कृष्ण अपनी तलवार हाथ में लेकर युद्ध भूमि मे ऐसे विराजते हैं जैसे कि यमराज स्वय आकर उपस्थित हो गये हो। उनके खड्ग धारण करने से समस्त लोक आकुल व्याकुल हो जाते हैं। देवराज इद्र और शेषनाग भी व्याकुल हो उठते हैं। यथा—

तव तिहि धनहर घालिउ रालि, चन्द्र हसकर लियो संभालि ।
बीजु समिसु चमकइ करवालु, जाणीसु जीभ पसारे काल ॥

---

५६ सबई वीर बोलई प्रज लेइ, आवतं वश्र होलि के लेई। -
जे बिसहर मुह घाले हत्थ, सो मो सहु जुझणह समत्थो ॥ ३०६ ॥

जबहि खरग हाथ हरि लयउ, चन्द्र रयणि चांवइ कर गहिउ।
रथ ते उतरि चले भर जाम, तीनि भुवन अकुलाने ताम ॥
इंदु चंदु अगु मे खलभलउ, जाणो गिरिपर्वतउ टलटलउ।
अन मा कहइ सुरंगिनि नारि, अवयहु इहइ कइसी मारि ॥[57]

भाषा, छद एवं अलंकार :

प्रद्युम्नचरित व्रज भाषा का काव्य है और यह व्रज भाषा राजस्थानी से प्रभावित है। उस काल मे व्रज में वीर रस की इतनी प्रभावपूर्ण रचना द्वारा इस कृति के कर्ता ने एक अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। हा, इतना अवश्य है कि ग्रंथ की व्रज भाषा अपभ्रश एव राजस्थानी से प्रभावित है।

इस काव्य मे मुख्यत' चौपाई छंद का विशिष्ट प्रयोग हुआ है। चौपाई के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य छंद प्रयुक्त हुए हैं और इनमे दोहा, सोरठा, ध्रुवक, वस्तुवध आदि प्रमुख छद हैं।

प्रस्तुत रचना में स्थल-स्थल पर अलंकारो का सुदर और आकर्षक प्रयोग हुआ है। रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, स्वभावोक्ति, उपमा आदि के प्रति कवि का स्नेह इस काव्य में अधिक प्रकट हुआ है। उत्प्रेक्षा के कतिपय प्रयोग तो उल्लेखनीय ही हैं, जैसे—

सेन उठि बहु साडु समुद्र, जाणो उपनउ उथल्यउ समुद्र।
नरसहिबाण सरे असराल, जाणो घण गाजइ मेघकाल।[58]

प्रद्युम्नचरित इस प्रकार हिंदो भाषा की एक उत्तम कृति है।

(६) नेमीश्वर रास :

प्रस्तुत कृति के रचयिता कवि नेमिचंद्र हैं। यह रचना ई० सन् १७१२ (वि० स० १७६९) में हुई। कवि ने अपना विस्तृत परिचय, गुरु-परपरा, कृति का रचना काल एव स्थान का परिचय मे कृति मे दिया है। यथा[59]

५७. प्रद्युम्नचरित छद सख्या ५३९, ४०, ४१।

५८ प्रद्युम्नचरित, सं० प० चैनसुखदास व कस्तुरचन्द कासलीवाल,

५९ नेमीश्वररास, हस्तलिखित प्रतिलिपि वि० स० १९९३, प्रतिलिपिकार पाण्डेय दयाराम, उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर प्रति प्रपन्न २७/१२८४

अंबावती सुभथान, सवाई जयसिंह महाराजई।
पातिसाह राखे मान, राजकरे परिवार स्यु ॥१॥

अबावती नगरी (आमेर-जयपुर) मे राजा सवाई जयसिंह का राज्य है। बादशाह इनका सन्मान करता है। यही पर प्रस्तुत कृति की रचना हुई।

रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

सतरासे गुणहत्तरे सुदि आसोज दसे रवि जाणि तो।
रास रच्यो श्रीनेमि को, बुधिसार में कियो वखांण तो ॥[60]

अर्थात् सवत १७६९ आसोज शुक्ला १० रविवार को यह रचना पूर्ण हुई। कवि ने अपने गुरु का नाम जगत्कीर्ति बतलाया है जो मूलसंघ, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ के आचार्य थे। प्रस्तुत रचना हरिवशपुराण के आधार पर रचित है—

हरिवश की मे वारता, कही विविध प्रकार।
नेमिचन्द्र की वीनती, कवियण लेहु सुधार ॥[61]

जिनसेन के हरिवशपुराण के अनुसार इसमे श्रीकृष्ण का चरित है, कृति मे सर्गसूचक शब्द, "अधिकार" का प्रयोग है, कुल ३६ अधिकार हैं। कृति का प्रारभ मगलाचरण से कर के प्रारभिक दो अधिकारो में श्रेष्ठ पुरुषो की वदना है, तृतीय अधिकार में कथावस्तु का प्रारभ हुआ है।

श्रीकृष्ण जन्म, बाल-लीला, कंसवध, यादवो का द्वारिका निवास, रुक्मिणी-हरण, शिशुपाल-वध, नेमिनाथ का जन्म, कृष्ण-जरासध युद्ध, द्रौपदी-हरण, पुन कृष्ण द्वारा द्रौपदी को लाना, कृष्ण का पाडवो पर कुपित होना तथा उनका हस्तिनापुर से निर्वासन, नेमिनाथ का गृहत्याग, तप व केवलज्ञान की उपलब्धि, द्वारिका मे नेमिनाथ के आगमन के प्रसग, कृष्ण के परिजन रानियो, पुत्रो आदि का दीक्षा ग्रहण, द्वारिका विनाश, कृष्ण का परमधाम गमन, बलराम की तप और मुक्ति, इत्यादि प्रसगो का क्रमश वर्णन आया है। प्रारभ मे कृष्ण चरित्र को तथा अतिम अधिकारों में नेमिनाथ चरित्र की विवेचना है।

कृति के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण हैं जिनके वीरतापूर्वक कार्यों का उल्लेख है जो अति सुदरता से अभिव्यक्त हुआ है। यथा—

---

६० वही—पदसख्या १३०९।

६१ आमेर शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति, पदसंख्या—१२७२।

कान्ह गयो जब चौक मे, चाणूर आयो तिहि बार।
पकड़ि पछाड्यो आवतो, चाणूर पहुंच्यो यमद्वार ॥
कंस कोप करि उठ्यो, पहुंच्यो जादुराय पे।
एक पलक मे मारियो, जमघरि पहुँच्यो जायतो ॥
जै जै कार शब्द हुआ, बाजा बाज्या सार।
कंस मारि घीस्यो तबे, पलक न लाइ बार ॥[62]

श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण की घटना का भी कवि ने उल्लेख करते हुए लिखा है—

हसी मन में चिन्तते, परवत गोरधन लियो उठाय।
चिटी आंगुली ऊपरे, तलिउ था सब गोपी गाय ॥[63]

कृति के अतिम अंश मे कृष्ण की धर्म विषयक रुचि और नेमिनाथ के प्रति श्रद्धाभाव का वर्णन आया है—

नमस्कार फिरि-फिरि कियो, प्रश्न कियो केशवराय।
भेद कह्यो सप्त तत्वको, धर्म-अधर्म कह्यो जिनराय ॥[64]

कृति में कृष्ण के वालगोपाल स्वरूप का विवेचन करते हुए कवि ने श्रीकृष्ण को दधिमाखन खाने और उसे फैलाने का चित्रण भी किया है—

मांखण खायरु फैलाय, मात जसोदा बांधे आणि ते।
डरपायो डरपे नहीं, माता तणीय न माने काणि ते ॥

कृष्ण के गोपाल वेश का वर्णन देखिए—

काना कुण्डल जगमगे, तन सोहे पीताम्बर चीर तो।
मुकुट विराजे अति भलो, वंशी बजावे श्याम शरीरतो ॥[65]

इस कृति की भाषा मे राजस्थानी प्रभावित हिंदी के तद्भव शब्दों का वाहुल्य है। दोहा, सोरठा, छंदो का विशेष रूप से कवि ने प्रयोग किया है

(७) गजसुकुमाल रास : देवेंद्र सूरि

---

६२ हस्तलिखित पदसंख्या १७०-७३।
६३ हस्तलिखित प्रति पदसंख्या १८५।
६४. वही—पदसख्या ११०।
६५. हस्तलिखित प्रति, पदसंख्या १६८-६६।

रचनाकाल . वि० स० १३१३ से १३२४ के मध्यानुमानित है।
उपलब्धि जैसलमेर ज्ञान भण्डार तथा अभय जैन ग्रथालय बीकानेर मे हस्तलिखित प्रति। जैसलमेर भण्डार की प्रति वि० स० १४०० की लिखी हुई है। कृतिकार के गुरु का नाम जगच्चन्द्रसूरि था।[66]

श्रीकृष्ण-वृत्तांत

नेमिनाथ रास की भाति "गजसुकुमाल रास" खडकाव्य कोटि की प्रबध रचना है। परपरागत आख्यान ३४ छंदो मे वर्णित है। गजसुकुमाल के चरित को इस कृति मे प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप मे अपनाया गया है। और, प्रासगिक रूप में ही श्रीकृष्ण का वृत्तात आया है। श्रीकृष्ण के कनिष्ठतम भ्राता गजसुकुमाल थे। गजसुकुमाल के जन्म-पूर्व की परिस्थितियो, पारिवारिक परिचय आदि के प्रसगो में श्रीकृष्ण का वृत्तात स्वाभाविक ही है। आरभ में श्रीकृष्ण का द्वारका के श्रेष्ठ शक्तिशाली और पराक्रमी नरेश के रूप में चित्रण हुआ है। उनका महापुरुष व्यक्तित्व बडे कौशल के साथ अकित हुआ है। श्रीकृष्ण के पौरुष, शौर्य और पराक्रम का चित्रण अनेक प्रसगो मे हुआ है। यथा—कस-सहार, चाणूर-वध, जरासध-हनन आदि। श्रीकृष्ण चरित्र के एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष को भी इस रचना मे स्थान दिया गया है जिससे उनकी मातृभक्ति और धर्मभावना व्यक्त हुई है।

काव्य-रूप .

जैसा कि वर्णित किया जा चुका है "गजसुकुमाल रास" एक खण्डकाव्य है अत कथानक का केंद्रित विषय गजसुकुमाल चरित ही रहा है। नायक गजसुकुमाल के चरित्राकन की सीमा मे अन्यान्य प्रासगिक घटनाओं का वर्णन हुआ है। प्रबधात्मकता, रसनिष्पत्ति, वस्तुविधान, काव्यसौष्ठवादि सभी दृष्टियो से खण्डकाव्य की कसौटी पर प्रस्तुत कृति खरी उतरती है।

कृति मे श्रीकृष्ण के वीर और पराक्रम सपन्न राजपुरुष का व्यक्तित्व कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। यथा—

नयरिहि रज्जु करेई तहि कण्ह नरिंदु।
नरवै मनि सणहो जिव सुरगण इदू ॥[67]

---

६६ हिंदी रास काव्य, डा० हरीश, पृ० ८०१

६७. गजसुकुमाल (अप्रकाशित), हस्त प्रति, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर।

कृष्ण के चाणूर मल्ल द्वारा कृष्ण से किया गया मल्लयुद्ध, कस तथा जरासध हनन का भी कवि ने उल्लेख किया है। कृष्ण वासुदेव राजा है। शंख, चक्र तथा गदा आदि का धारण करना जैन परपरा के अनुसार वासुदेव का लक्षण है। कवि ने उसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

सख चक्क गज पहरण धारा, कस नराहिव कय सहारा।
जिण चाणउरि मल्लु बियरिउ, जरासिंधु बलवतऊ घातिउ ।।[68]

कथानक एवं उसकी संरचना

प्रस्तुत खडकाव्य के कथानक का आधार भी गजसुकुमाल सबधी जैन पुराणो के आख्यान ही रहे हैं। नृपति श्रेष्ठ श्रीकृष्ण द्वारका के शासक हैं। इसी समय भगवान अरिष्टनेमि का द्वारका आगमन होता है। भगवान के शिष्यो मे छ सहोदर बधु भी थे और रूप रग मे भी उनमे पर्याप्त साम्य था। इनमे से दो मुनि आहारार्थ देवकी के यहा आए। कुछ ही अतराल मे अन्य दो और फिर शेष दो बधु भी आ पहुंचे। देवकी असमजस में पड गयी। नियम विपरीत मुनिगण एक ही घर मे बार-बार कैसे आ रहे हैं? देवकी के हृदय मे इन युवा साधुओ को देख कर असीम वात्सल्य भाव उमड आया। कारण उसे ज्ञात नही हो सका। भगवान ने स्पष्ट किया के ये ६ पुत्र स्वय देवकी के हैं जो सुलसा के घर बडे हुए है और सुलसा के मृतपुत्र ही कंस को दिए गए थे। देवकी का मातृत्व इस दृष्टि से अपूर्ण रह गया कि उसका कोई पुत्र अपने बाल्यकाल मे उसके पास नही रहा और वह अपने वात्सल्यभाव को तुष्ट नही कर पायी। श्रीकृष्ण ने उसकी मनोकामना जानकर तपस्या की। देवता से उन्हे ज्ञात हुआ कि देवकी को एक पुत्र और प्राप्त होगा, किंतु माता इस पुत्र से केवल बाल्य-काल का सुख ही प्राप्त कर सकेगी। यथासमय देवकी को पुत्र प्राप्त हुआ, जो गजशावक सा सुकुमार और सुदर था, अत उसका नाम गजसुकुमाल रखा। अपने नाम के इस अनत प्रेम भरे वातावरण मे बालक बडा होने लगा। एक दिन द्वारका मे पुन भगवान नेमिनाथ का पदार्पण हुआ। भगवान की वाणी का गजसुकुमाल पर गहन आतरिक प्रभाव हुआ और उसके मन मे विरक्ति की भावना प्रबल हो उठी। स्वजन-परिजनो विशेषत श्रीकृष्ण के प्रयत्नो से सोमिल ब्राह्मण की सुदरी कन्या सोमा के साथ गजसुकुमाल का विवाह हो गया। किंतु, गजसुकुमाल ने भी तुरत ही दीक्षा ग्रहण कर ली।

---

६८ वही, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति, ग्रथभण्डार, जैसलमेर दुर्ग।

मुनि गजसुकुमाल ने भगवान के समक्ष केवलज्ञान-मार्ग जानने की उत्कट जिज्ञासा प्रकट की और भगवान ने तितिक्षा-धारणा का मार्ग बताया। किशोर मुनि गजसुकुमाल श्मशानभूमि मे ध्यामग्न बैठे थे कि सोमिल ब्राह्मण की दृष्टि उन पर पड गयी। वह क्रोधित हो उठा कि इसे वैराग्य ही ग्रहण करना था तो सोमा का जीवन इसने क्यो नष्ट किया। क्रोधाभिमुख सोमिल ने मुनि के मुडित शीष पर मिट्टी की पाल बनाकर उसमे चिता के दहकते अगारे भर दिए। मुनि गजसुकुमाल ने इस घोर परिषह को असीम सहिष्णुता के साथ सह लिया। वे विचारने लगे कि, मैं नही, किंतु, पार्थिव शरीर ही तो जल रहा है। मैं तो आत्मा हू और आत्मा दहन के परे है। अटूट साधना मे रत मुनि गजसुकुमाल को मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। दुष्ट सोमिल ने भी ज्यो ही श्रीकृष्ण को देखा, भयाधिक्य से उसका प्राणांत ही हो गया।

"गजसुकुमाल रास" खण्डकाव्य का कथानक अत्यत सुगठित है। सारे प्रबध मे योग ३४ छंदो का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह खण्डकाव्य तीव्र प्रवाहमय और प्रभावशाली है। शैथिल्य नाम-मात्र को भी दृष्टिगत नही होता और अनर्गल विस्तार के दोष से भी सर्वथा मुक्त है।

कथानक की समस्त कार्य अवस्थाओ की दृष्टि से भी यह एक सुसबद्ध घटनापुज एव व्यवस्थित कथा-विकास वाली रचना है। नायक गजसुकुमाल द्वारा मोक्ष-लाभ इस खण्डकाव्य का उद्देश्य या फल है। नायक के जन्म से पूर्व की यह घोषणा कि वह युवावस्था मे ही दीक्षा ग्रहण कर विरक्त हो जायेगा—कथा-विकास की प्रारभ अवस्था है। कवि ने इंद्रवत् पूज्य द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के बलविक्रम की यथोचित गाथा का गान किया है। तत्पश्चात् भगवान नेमिनाथ का द्वारका आगमन और देवकी की पुत्र-प्राप्ति की कामना वर्णित है। तदनतर कवि ने बालक गजसुकुमाल की सासारिक विषयो के प्रति दृढ उदासीनता चित्रित की है। यह चिंतनशील बालक भगवान के तत्त्वपूर्ण उपदेशो के प्रभावस्वरूप विरक्त हो जाता है। यह कथानक की प्रयत्नावस्था है। गजसुकुमाल को ससार-विमुख पाकर सभी स्वजन-परिजन चिंतित हो उठते हैं। उसे जगदुन्मुख करने का प्रयत्न किया जाता है। स्वय श्रीकृष्ण सोमिल-पुत्री सोमा से उसका विवाह करवा देते हैं। सारी परिस्थितिया फलप्राप्ति के मार्ग मे नायक के लिए बाधास्वरूप हैं। कथानक-विकास की तृतीय अवस्था प्राप्त्याशा भी सर्वथा ओझल नही हो जाती। कथा-विकास के सयोजन की इस विशेषता के कारण कथानक इस

स्थल पर भी ढीला नही हो पाया। अब भी नायक दीक्षा ग्रहण करने को कटिबद्ध है। वह तुरत ही भगवान की शरण में आता है और दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग जानने की उत्सुकता व्यक्त करता है। भगवान ऐसे मार्ग की ओर इगित भी करते हैं। सारी बाधाओं की यहां इतिश्री हो जाती है। फलप्राप्ति की आशा बनने लगती है। यही प्राप्त्याशा की अवस्था है। मार्ग पाकर मुनि गजसुकुमाल उस पर गतिशील हो जाते है और श्मशान भूमि में ध्यान-साधना करने लगते हैं और फल तो अभी दूर हैं, किंतु अब कथानक के उतार-चढाव की स्थिति नही है। सोमिल द्वारा दिए गये भयकर परिषह को भी क्षमा-भावना के साथ मुनि गजसुकुमाल ने सहन कर लिया। यहां नियताप्ति की अवस्था आ जाती है। इस अवस्था मे नायक द्वारा फलप्राप्ति प्राय निश्चित सी हो जाती है। अतत' फलागम की स्थिति है। नायक द्वारा फलप्राप्ति हो जाती है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यह सुघड कथानक बडे ही कौशल के साथ विकसित हुआ है और कथाक्रम कही विच्छिन्न नही हो पाया है।

चरित्रचि-त्रण

स्पष्ट है कि गजसुकुमाल स्वय ही इस रास काव्य का नायक है। उच्च वशोत्पन्न गजसुकुमाल न केवल इस कथानक मे स्थित है अपितु आद्योपात वही वर्णित और चित्रित भी है। कथानक की मूल समस्या उसी के जीव से सबंधित है। वही उसके समाधानार्थ प्रयत्नशील है और फल का भोक्ता भी वही है। सभी दृष्टियो से गजसुकुमाल नायक ही नही, उत्तम कोटि का नायक निर्णीत होता है। उनकी गुरुजनो के प्रति आदरभावना, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, लक्ष्य के प्रति दृढता, साधनाप्रियता आदि अनेक सद्गुणो के कारण वह एक उदात्तपुरुष है। मात्र १२ वर्ष की अवस्था मे गजसुकुमाल साधना पथ के पथिक हो गए। उनका समस्त जीवन ही वैराग्य को समर्पित है।

यही विरक्ति गजसुकुमाल के चरित्र की प्रमुख और प्रतिपाद्य विशेषता है। उनके चरित्र के अन्यान्य गुण-धैर्य, सयम, क्षमाशीलता, सहनशीलता आदि इसी विरक्ति की प्रबल भावना से उत्प्रेरित हैं। गजसुकुमाल दृढ मुमुक्ष हैं, उन्होने दीक्षा के पश्चात् ही मोक्ष-मार्ग की खोज आरभ कर दी थी। भगवान नेमि से सकेत पाकर तुरत उस मार्ग का अनुसरण भी उन्होने आरभ कर दिया। वे उग्र तपस्वी थे, यहा तक कि साधनारभ के दिन ही उन्होने मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। उनकी सवेदनशीलता भी बढी-चढी

थी। भगवान के प्रथम उपदेश ने ही उन्हे दीक्षार्थं तत्पर कर दिया। कष्ट सहन करने की क्षमता भी उनमें अपार थी। मुडित शीष पर अगारो का ढेर रखा गया पर उन्होने उफ तक नही किया। उनकी ध्यान-लीनता मे क्षण-भर के लिए भी व्यवधान नही आया। इस भयकर उपसर्ग के कर्त्ता सोमिल के प्रति भी कोई विकार उनके मन को स्पर्श न कर सका। अपने अनिष्ट-कारी के प्रति भी उपेक्षा, क्षमा और अक्रोध की प्रवृत्ति का इससे बढकर अन्य कोई वृत्तात कदाचित् ही कही मिल सके।

मुनि गजसुकुमाल की चारित्रिक विशेषताओं का तो यथासभव व्यापक चित्र प्रस्तुत किया ही गया है। अन्य कतिपय गौण पात्रो के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। देवको का ममतापूर्ण वात्सल्य भाव और उसका मातृत्व भी उभर कर सामने आया है, तो श्रीकृष्ण का पराक्रम और शौर्य भी। सोमिल ब्राह्मण के द्वेष और प्रतिशोध, स्वार्थ और क्रोध का भी सुदर चित्रण हुआ है।

रसयोजना

"गजसुकुमाल रास" खड काव्य वैराग्य प्रधान रचना है अत इसमें शात रस की प्रधानता तो स्वाभाविक ही है। आरभ मे तीर्थंकर भगवान का द्वारका मे पदार्पण होता है। शिष्यगण (मुनिजन) नगर मे भिक्षार्थ विचरण करते हैं। राजपरिवार और नगरवासी भगवान की पावनवाणी का श्रवण करते है। मा देवकी की पुत्रप्राप्ति की कामना के संबध मे श्रीकृष्ण तपस्या करते हैं। भविष्यवाणी होती है कि मा देवकी को जिस पुत्र की प्राप्ति होगी वह युवावस्था मे ही दीक्षा ग्रहण कर लेगा। इन सारी परिस्थितियो के कारण शात रस की सृष्टि हो जाती है। इसे जैन साहित्य की दृष्टि से वीतराग रस कहते हैं।

गजसुकुमाल का विरक्ति प्रधान जीवन चरित ही प्रमुख वर्ण्यविषय होने के कारण ग्रथ मे आद्योपात शात रस की झडी लगी हुई है। दीक्षो-परात पहले ही दिन वे साधनारत हो जाते हैं यह प्रसग भी शात रस के पोषण में बडा सहायक रहा है।

जिन स्थलो पर देवकी के मातृत्व-भावना के प्रसग आए हैं, वहा वात्सल्य रस की सृष्टि हुई है। भिक्षा के प्रयोजन से उसके यहा आए युवा मुनियों को देखकर उसके मन में वात्सल्य और स्नेह का ज्वार ही

उमड़ पड़ता है। उसकी यह कामना बलवती हो जाती है कि पुत्र की बाल-लीलाओ का सुख उसे भी मिले, जो उसे कभी सुलभ नहीं हो पाया। वह उन मुनिजनों की माता के भाग्य को सराहती है। अपने अभाव की स्मृति से उसके आतप्त हृदय में एक हूक उठती है जिसकी प्रतिध्वनि कृति में सुदरता के साथ सजाई गयी है।

कालातर मे गजसुकुमाल को पा कर देवकी निहाल हो जाती है। वह अपने पुत्र को प्राणो से भी अधिक प्यार करती है। असीम स्नेह के साथ वह उसका पालन-पोषण करती है। इन स्थलों पर भी वात्सल्य रस पूर्ण प्रभावशाली रूप में आया है।

भाषा :

"गजसुकुमाल रास" प्रारंभिक हिंदी की रचना है। डा० हरिवंश लाल कोछड प्रभृति विद्वज्जन इसे अपभ्रंश की रचना भी मानते हैं, किंतु अपभ्रंश की अपेक्षा यह हिंदी के प्रारंभिक रूप से अधिक निकटता रखती है। कृति से इसके उस रचनाकाल का परिचय झलकता है जब अपभ्रंश और अन्य लोकभाषाओं के मध्य का काल था। इस संधिकाल में हिंदी का प्रारंभिक स्वरूप ही प्रचलित था। इसकी भाषा १३वीं शताब्दी ईसवी की भाषा होने से उस समय के भाषा-रूप की जानकारी उपलब्ध हो जाती है जिसे हम हिंदी भाषा का आदिकालिक रूप कह सकते हैं।

(८) पंच पाण्डव चरित रास :

पंच पांडव चरित रास[६०] एक प्रकाशित रचना है। इसके कर्त्ता शालिभद्र सूरि हैं। स्वय कृति के अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका रचनाकाल वि० सं० १४१० है।

श्रीकृष्ण-वृत्तात :

शोर्पक से ही विदित हो जाता है कि प्रस्तुत कृति में पाडवो का चरित वर्णित है और पाडवों के अनेक प्रमुख प्रसगों मे उनका सवध श्रीकृष्ण से रहा है। अत रचना में श्रीकृष्ण के वृत्तात को प्रचुर और प्रमुख स्थान मिलना स्वाभाविक ही है। "पच पाडव चरित रास" मे श्रीकृष्ण के लिए 'देव' 'प्रभु' जैसे संबोधन प्रयुक्त हुए हैं। स्पष्ट है कि उन्हे इस ग्रथ में प्रभुत्व-पूर्णऔर महत्तायुक्त स्थान प्राप्त हुआ है।

---

६० पच पाडव चरित रास हिंदी के अज्ञात रासकाव्य—मगल प्रकाशन, जयपुर।

अवस्थाओ के साथ-साथ अर्थ प्रकृतियो एव सधियो का भी सुदर सयोजन इस कथानक मे दिखाई देता है।

चरित्र-चित्रण :

सामूहिक रूप से पाडव बधु इस कथा-काव्य के नायक है। इनके शौर्य, शक्ति, विक्रम और साहस का कवि द्वारा विशद वर्णन किया गया है। पाडवो मे भीम सर्वाधिक बलवान है और अर्जुन सर्वाधिक कुशल। अखाडे के प्रदर्शनो में भी कौरव पाडवो मे अर्जुन ही सर्वोपरि लगता है। उसके कार्यो से उसकी धीरता, वीरता, चपलता, कुशल धनुर्धारिता आदि गुण प्रकट हो जाते है। कवि ने उसे "लोहपुरुष" की जो सज्ञा दी है उससे भी उसका चारित्रिक वैशिष्ट्य प्रकट होता है। पांडव सामर्थ्यवान् और साहसी हैं उनके विषय मे कवि का कथन है—

जां महिमण्डलि ऊगिउ सूरु, जा वण पहुतउ पंडव धीरू ।[70]।

अर्थात् पृथ्वीतल पर जहां जहा सूर्योदय होता है वहा पाडव पहुंच जाने की क्षमता रखते हैं। भीम के अपार बल की कही समता नही है।

तरुवर मोडतु चलिउ भीम, देव तणू बलू बलीउ ईम ।[71]।

अर्थात् भीम इतना बलबान है कि वह चलते ही विशाल वृक्षो को तरोडता, मरोडता चलता है।

पाडवो के अतिरिक्त भी कर्ण, भीष्म, द्रौपदी, कुती, दुर्योधन, श्रीकृष्ण, विदुर, धृतराष्ट्र आदि अन्य अनेक पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। "धीरू वीरू, मति अगलउ करण, पढई तिणि ठाह" कह कर कवि ने कर्ण की धीरता वीरता और बुद्धिमत्ता का चित्रण एक ही पक्ति मे बडे कौशल के साथ कर दिया है।

रस-योजना

कृति के अन्त में पाडवो द्वारा दीक्षा ग्रहण का वृत्तात आया है, तथापि इस काव्य मे शात रस का प्राधान्य समझना भ्राति होगी। समग्र काव्य कौरव पाडव सघर्ष से भरा है और इस कारण वीर रस ही प्रमुख स्थान ग्रहण कर पाया है। इसके अतिरिक्त शृगार, करुण, रौद्र, बीभत्स आदि रस भी विभिन्न प्रसगो मे आए हैं।

---

७० हिंदी के अज्ञात रास काव्य, मगल प्रकाशन, जयपुर।

७१ वही—

भाषा :

पच पाडव चरित रास में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह अविकसित हिंदी है। इस तथ्य का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि प्रयुक्त भाषा में प्राचीन राजस्थानी एव गुजराती शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत के तत्सम शब्द भी अधिक हैं। हिंदी के शास्त्रीय रूप के विकास क्रम में इस रचना का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

छंद-अलंकार :

प्रस्तुत कृति में कवि द्वारा रसानुकूल अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है। चौपाई, त्रिपादी, रोला, दोहा-चौपाई, सोरठा, आदि छंदों का प्रयोग प्रमुखता से किया है।

रचना मे अलंकारों का प्रयोग स्वाभविक रूप मे हुआ है। कही भी इस दिशा में कवि का कोई पूर्वाग्रह दृष्टिगत नही होता। अनुप्रासो की छटा विशेषत. दृष्टव्य रही है और अनुप्रास प्रयोग से युद्ध वर्णन अधिक सजीव हो उठे हैं। अलकारो के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर कवि द्वारा सूक्तियो का प्रयोग भी हुआ है जिसने सारी अभिव्यक्ति को ही प्राणवान कर दिया है।

निष्कर्ष एवं तथ्य :

इस अध्याय मे मैंने जो अनुशीलन किया उसका अध्येतव्य विषय "हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास और पुराण तथा अन्य साहित्य" था। इस अनुशीलन मे "हरिवंशपुराण", उत्तरपुराण, नेमिनाथ रास, प्रद्युम्नरास, नेमीश्वररास, गजसुकुमाल रास, पंच पांडव चरित रास जैसी रचनाएं थीं जिनका मैंने साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया।

(१) इसमें दो रचनाओ को छोड़कर अन्य रचनाएं श्रीकृष्ण के जैन परंपरा वाले चरित्र को ही प्रस्तुत करती हैं।

(२) प्रद्युम्नरास और गजसुकुमाल रास ये दो अवश्य ऐसी स्वतत्र कृतिया हैं जो इस अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं। वैसे प्रद्युम्नचरित तो इसके पूर्व भी मेरे अध्ययन का विषय पूर्व अध्यायो में बन चुका है। पर, इसमें जो राजस्थानी से प्रभावित आदिकालीन हिंदी भाषा में ये दो रचनाए मेरे अध्ययन मे आयी वे विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमे भी गजसुकुमाल रास तो और भी विशेष महत्वपूर्ण है।

(३) दोनो कृतियाँ इस अध्याय की अन्य कृतियो की तरह ही जैन वीतराग रस की प्रस्थापना करती हैं। पर, ये दो रचनाए प्रद्युम्न रास और उसमें भी गजसुकुमाल रास जैन दर्शन और वैराग्य का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करती हैं। यह एक नया तथ्य है।

(४) नेमिनाथ, पंचपाडव, प्रद्युम्न और गजसुकुमाल के चरित्र-चित्रण श्रीकृष्ण के साथ अपनी एक अलग कोटि ही प्रस्तुत करते हैं।

(५) मेरी शोध दृष्टि मे गजसुकुमाल का चरित्र आरभ से अंत तक एक उज्ज्वल और सर्वोत्तम मुनि चरित्र है। तथ्य और निष्कर्ष उपादेय और महत्वपूर्ण हैं।

श्रीकृष्ण चरित्र एवं भ० नेमिनाथ से सम्बन्धित निम्नोक्त रास, फागु, धवल, विवाहलो, गीत आदि साहित्य भी दृष्टव्य एव अध्येतव्य है।

क्र०	कृति नाम	रचयिता	रचनाकाल
१	नेमिनाथ चतुष्पदी	विनयचन्द्रसूरि	१४वी शदी
२	नेमिरास	कवि पल्हण	१३वी ,,
३	नेमिनाथ फागु	कवि पद्म	१४वी ,,
४	,, ,,	राजशेखरसूरि(मलधार ग०)	१५वी ,,
५.	नेमीश्वरचरित फागबन्ध	माणिक्यसुन्दरसूरि	१५वी ,,
६	नेमिनाथ धवल	जयशेखरसूरि	१५वी ,,
७	नेमिनाथ फाग	,,	१५वी ,,
८	नेमिनाथ नवरस फाग	रत्नमडनगणि	,, ,,
९	नेमिनाथ फाग	कवि कान्ह	,, ,,
१०	नेमिनाथरास	सोमसुन्दरसूरि शिष्य	१६वी ,,
११	नेमिनाथ वसन्त फुलड़ा	मतिशेखर	,, ,,
१२	नेमिनाथ चन्द्राउला	गुणनिधानसूरि शिष्य	,, ,,
१३	नेमिनाथ धवल	ब्रह्ममुनि-विनयदेवसूरि	,, ,,
१४	पचपाण्डव सज्झाय	कवियण	,, ,,
१५.	यादवरास	पुण्यरत्न	,, ,,
१६	नेमि परमानन्द बेलि	जयवल्लभ	,, ,,
१७.	प्रद्यम्नकुमार चौपाई	कमलशेखर	१७वी ,,

१८. कृष्ण रुक्मिणी वेलि	पृथ्वीराज राठोड	१७वी ,,
१९. सांब प्रद्युम्न प्रबन्ध	समयसुन्दरोपाध्याय	,, ,,
२०. गजसुकुमाल रास	जिनहर्ष	१७१४
२१. गजसुकुमाल रास	भुवनकीर्ति	१७०३
२२. गजसुकुमाल रास	पूर्णप्रभ	१७८६
२३. गजसुकुमाल रास	लावण्यकीर्ति	१७वी शदी
२४ गजसुकुमाल रास	जिनराजसूरि	१६९९
२५. नेमिनाथ कलश	नयकुंजर	१५वी शदी
२६ नेमिनाथ छन्द	शिवसुंदर	१६वी शदी
२७ नेमिनाथ धमाल	ज्ञानतिलक	१७वी शदी
२८ नेमिनाथ फागु	कनकसोभ	१७वी शदी
२९. नेमिनाथ फागु	कल्याणकमल	,, ,,
३०. नेमिनाथ फागु	जयनिधान	,, ,,
३१. नेमिनाथ फागु	जिनसमुद्रसूरि	१६९८
३२. नेमिनाथ फागु	महिमामेरु	१७वी शदी
३३. नेमिनाथ फागु	राजहर्ष	१८वी शदी
३४ नेमिनाथ फागु	समधरु	१४वी शदी
३५ नेमिनाथ रास	कनककीर्ति	१६९२
३६. नेमिनाथ रास	जिनहर्ष	१७७९
३७ नेमिनाथ रास	दानविनय	१७वी
३८ नेमिनाथ रास	धर्मकीर्ति	१६७५
३९ नेमिनाथ राजीमति रास	समयप्रमोद	१६६३
४० नेमिनाथ विवाहलो	जयसागरोपाध्याय	१५वी
४१ *नेमिनाथ विवाहलो	महिमसुन्दर	१६६५

अगला अध्याय हिंदी के जैन श्रीकृष्ण मुक्तक काव्य संबंधी होगा ।

---

*टि० इन समस्त कृतियों के परिचय के लिये द्रष्टव्य है - जैन गूर्जर कविओ,

८

हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य

स्वरूप :

हिंदी जैन कृष्ण मुक्तक काव्य साहित्य अन्य भारतीय काव्य साहित्य की विधाओ को तरह ही अनेक रूपो मे रचा गया है जिसमे अनेक प्रकार के उपक्रम मिलेंगे। जैन मुक्तक काव्य मे रास और पुराण तथा अन्य साहित्य को हम इसके पूर्व के अध्याय में विवेचित कर आए हैं। वहा पर कही चरित काव्य और आख्यानक काव्य को भी स्थान दे दिया है। यहा पर विशेष रूप से फागु, चौपाई, बेली, चद्रिका, बारहमासा जैसे मुक्तक काव्य रचनाओ का समावेश किया गया है। इन जैन मुक्तक काव्य रचनाओ मे कृष्ण कही पर हैं तो कही पर नेमिनाथ जी हैं और कही पर ये दोनो न होकर बलभद्र और राजीमती जैसे अन्य पात्र ही हैं। इसकी एक और विशेषता यह है कि १२ मासा की परपरा जैन कवियो ने राजीमती को लेकर लोक-गीतो के रूप मे रची है इसलिए इनकी समस्त कृतियां मिलना सभव नही है। हमने कण्ठाभरण के रूप में कतिपय उदाहरण अत मे प्रस्तुत कर दिए हैं जो उनके भीतर की काव्यानुभूति की सरसता और विरहजन्य भावना पर प्रकाश डालती हैं। हमारे इस शोध का यह एक नवीन व मौलिक प्रयत्न है।

विषय-परपरा :

जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण विषयक स्फुट पदो की मुक्तक रचनाए भी मिलती है। इन पदों मे श्रीकृष्ण चरित्र के किसी प्रसग विशेष की कोई झलक मिल जाती है। जैन मुक्तक काव्यकारो ने प्रायः आध्यात्मिक पद ही रचे हैं। इन पदो में वर्ण्यविचार या भाव विशेषकर विवेचन करने के क्रम मे उदाहरण, दृष्टात आदि के रूप मे प्रख्यात पौराणिक आख्यानो का आश्रय लिया गया है। इसी क्रम मे स्फुट पदो मे श्रीकृष्ण चरित को भी स्थान मिला है। प्रकार के कथाश जैन आध्यात्मिक एव दार्शनिक मान्यताओ के पोषक और व्याख्याता रूप मे प्रयुक्त हुए हैं, यथा—

मिटत नहीं मेरे से या तो होणहार सोइ होइ।
कहां कृष्ण कहां जरद कुंवर जी, कहां लोहा के तीर।[1]
मृग के धोखे वन में मार्यो बलभद्र मरण गये नीर॥

पं० महासेन की १९ वी शताब्दी की इस रचना मे इस तथ्य को प्रतिपादित करने का लक्ष्य रहा है कि पूर्वनिश्चित क्रमानुसार जो कुछ घटित होने वाला है, वह घटित होता ही है। कोई अपने सामर्थ्य के प्रयोग से उसे वह न घटे ऐसा नहीं बना सकते। होनहार होकर ही रहता है। इस तथ्य की पुष्टि में, श्रीकृष्ण के जीवन का यह प्रसग प्रयुक्त करते हुए कहा गया है कि "देखो, कहा तो श्रीकृष्ण का वन (अर्थात् कौशांबी वन) मे पहुंचना और कहां जरत्कुमार का भी उसी वन में आखेट के लिए जाना और श्रीकृष्ण को उसी समय प्यास लगना तथा बलदेव का जल लाने को जाना। शयन किए हुए श्रीकृष्ण को देखकर जराकुमार को मृग का धोखा होना" आदि सारी परिस्थितिया इसी नियति द्वारा निर्मित हो गयी। क्यों कि श्रीकृष्ण का मरण एक "अटल होनो" थी और अतत. जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्ण का देहात हो ही जाता है।

कवि ने अपना मुख्य लक्ष्य होनहार के अवश्यंभावी के रूप में घटित होने का तथ्य प्रस्तुत करने का ही रखा है। श्रीकृष्ण जीवन के अनेक प्रसग मुक्तक पदो मे आए हैं और सहायक रूप मे चित्रण पाकर भी वे कृष्ण जीवन का आंशिक परिचय देने मे समर्थ रहे हैं।

जैन साहित्य के इतिहास मे मुक्तक पदो में काव्यरचना की भी एक दीर्घ परपरा रही है। इस परपरा के प्रमुख रचनाकारों का विवरण इस प्रकार दिया जा रहा है—

बनारसी दास	सवत् १६४३ (जन्म)
द्यानतराय	" १७३३ (जन्म)
भैया भगवतीदास	" १७३१-५५ (रचनाकाल)
बुध जन	" १८३०-९५ (रचनाकाल)
भूधरदास	१८वी शताब्दी
पडित महासेन	१९वी शताब्दी उत्तरार्द्ध

१. पडित महासेन-श्रीकृष्ण चरित—स्फुट काव्य १९वी शताब्दी।

(१) रंगसागर-नेमि फागु[2]

प्रस्तुत कृति के रचयिता सोमसुदरसूरि हैं। काव्य के अत में नामोल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

भूया उज्ज्वल सोमसुदर यशश्री संघ भद्रकर ।[3]

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सोमसुदरसूरि ने प्रस्तुत कृति की रचना ई० सन् १४२६ (स० १४८३) के लगभग की थी।[4] प्रस्तुत कृति के दो नाम कवि ने बतलाए हैं। फाग के प्रारभ मे रगसागर[5] लिखा है, और पुष्पिका मे "नेमिनाथ नवरस"[6] लिखा है।

१०९ छंदो मे परपरागत नेमिनाथ चरित का वर्णन करते हुए कवि ने ३ खडो में कृति को विभाजित किया है।

प्रथम खंड मे—जन्म वर्णन।
द्वितीय खड में—विवाह वर्णन।
तृतीय खड मे—विरक्त होकर गिरनार पर तपाराधना कर कैवल्य की उपलब्धि का विवेचन है।

फागु, रासक, आदोल आदि छदो के प्रयोग के साथ अलकारिक वर्णन कर कवि ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। प्रस्तुत कृति की भाषा राजस्थानी से प्रभावित आदिकालीन हिंदी है।

कृष्ण के शौर्य वर्णन में बाल जीवन की साहसिक घटनाओ का वर्णन इस प्रकार देखा जा सकता है[7]—

अवतरिआ इणि अवसरि मथुरा पुरिस रयण नव नेह रे।
सुख लालित लीला प्रीति अति बलदेव वासुदेव बेहु रे।
वसुदेव रोहिणी दिवकी नदन चदन अंजन वानरे,
वृंदावनि यमुना जलि निरमलि रमति साइगांइ गान रे।

---

२ रगसागर-नेमिफागु सोमसुदरसूरि।
हिंदी की आदि और मध्यकालीन कृतिया, पृ० १३६-१४८, सं डा गोविंद रजनीश।
३. तीसरा खण्ड ३७
४. वही, फाग परिचय पृ० १३४
५. स्मेरीकार रगसागरमहाफागे करिष्ये नवम्—प्रथम खड-२
६. इति श्री नेमिनाथस्य नवरसाभिधान भविकजनरजन फाग।
७. हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतिया. स० डा० गोविंद रजनीश. रगसागर-नेमिफाग खंड प्रथम ३२ से ३६।

रमति करंता रंगि, चडइ गोवर्द्धन शृंगि,
गुंजरि गोवालणिए गाइ गोपी सिउ मिलीए,
कालिनाग जल अतरालि कोमल कमलिनि नाल,
नाखिउ नारायणिए रमलि पराजणीए,
कसमल्ला खाएइ वीर पहुता साहस धीर,
वेहुवाइ वाकरीए बलवता बाँहि करीए,
बलभद्र वलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार,
कृष्णि बल पूरीउए चाणूर चूरिउ ए,
मौष्टिक चाणूर च्यूरिए देखीय ऊठिउ कस,
नव बलवत नारायणि तास कीधउ विध्वस।

इस प्रकार भाव, भाषा, छद, अलकार आदि सभी दृष्टियो से भी प्रस्तुत कृति सुदर है।

(२) नेमिनाथ फागु[8]—जयशेखरसूरि

कृतिकार जयशेखर का समय १५वीं शताब्दी विक्रम का पूर्वार्द्ध है। इन्होने श्वेताबर जैन सप्रदाय के मेरुतुगसूरि के पास सवत् १४१८ (ई० सन् १३६१) मे जैन दीक्षा धारण की थी। इनके द्वारा रचित निम्न कृतिया प्राप्त है—

त्रिभुवन दीपक प्रबध,
उपदेश-चिंतामणि,
धम्मिल-चरित्र,
प्रबोध-चिंतामणि,
नेमिनाथ फागु।

नेमिनाथ फागु की हस्तलिखित प्रति १६वी शताब्दी विक्रम की उपलब्ध है। कवि की जैन दीक्षा का आधार मानकर रचनाकाल १४वी शताब्दी ई० का अतिम समय माना जा सकता है।

कथानक

द्वारका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे जो अपनी वीरता व शूरता के लिए जगप्रसिद्ध थे। कृष्ण ने चाणूर, कस और जरासध को नष्ट किया था। कृष्ण के राज्य मे राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के पुत्र

---

८ हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतिया · सपादक डा० गोविंद रजनीश,

अरिष्टनेमि जब बडे हुए तो उनका विवाह राजा उग्रसेन की कन्या राजीमति के साथ निश्चित हुआ। ज्योही सजधज के बारात पहुचने लगी त्योही विवाहोत्सव मे मारे जानेवाले पशुओ का करुण क्रदन सुनकर नेमिकुमार का दिल दहल उठा। वे बिना ब्याह किए ही संसार मार्ग को छोड साधना मे लग गए। परिजनो की लाख कोशिशो के बाद भी वे विचलित नही हुए। तपाराधना के पश्चात् उन्हे केवल की प्राप्ति हुई। वे तीर्थंकर के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। उनके साथ ही राजुल (राजीमति) भी उन्ही के मार्गानुसार साधना पथ को स्वीकारती है।

उपरोक्त कथावस्तु ५७ फागु छदो मे निबद्ध है।[9]

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित आदिकालीन हिंदी है। यह गेय काव्य है। नेमिनाथ की वदना से काव्य का प्रारभ होता है। काव्य में द्वारिका नगर तथा कृष्ण का शौर्य वर्णन श्रेष्ठ बन पडा है।

द्वारिका तथा कृष्ण वर्णन के पश्चात् कवि नेमि-राजुल के परपरागत कथानक को प्रस्तुत करता है और अपनी प्रतिभा का परिचय देता है। अत में वह इस कृति को सुदररूप से समाप्त करता है।

फागु छद मे चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २३ मात्राए तथा १२, ११ पर यति होती है।

(३) बलिभद्र चौपाई

इस कृति के रचयिता कवि यशोधर थे। काष्ठासघ के जैन गुरु विजयसेन की वाणी से प्रभावित होकर जैन दीक्षा स्वीकार कर साहित्य क्षेत्र में आगे बढे। इनका समय सवत् १५२० से १५९० का बताया गया है।[10]

१८६ पद्यो मे रचित प्रस्तुत कृति की रचना संवत् १५८५ (ई० सन् १५२८) मे हुई है जिसका उल्लेख कवि ने निम्न रूप से किया है—

> **संवत् पनर पच्यासीर, स्कन्ध नगर मझारि।**
> **भवणि अजित जिनवर वणी, एगुणा गाया सारि॥**

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति मे कृष्ण के बडे भ्राता बलराम का चरित वर्णन है।

---

९ हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियां, संपादक डा० गोविंद रजनीश,
१०. राजस्थान के जैन सत : व्यक्तित्व एव कृतित्व . पृ० ८५, डा० कस्तूरचद कासलीवाल।

प्रभु अरिष्टनेमि के मुखारविंद से द्वारका की भवितव्यता जानकर कृष्ण बलराम दोनो विचारमग्न हो गये। यथासमय द्वारका का विनाश हुआ। दोनो जंगल मे पहुचे। बलराम पानी लेने गये और इधर जरत्कुमार का बाण कृष्ण को लगा। बलराम कृष्ण के विलाप मे रुदन करने लगे। अंत में वे प्रव्रज्या स्वीकार करते हैं व निर्वाण को उपलब्ध करते है। कृति की भाषा राजस्थानी से प्रभावित हिंदी है। प्रस्तुत कृति में १८९ पद ढाल, दूहा एवं चौपाई मे हैं।

द्वारिका का वर्णन करते हुए कवि ने उसे १२ योजन विस्तारवाली व इंद्रपुरी के समान बतलाया है। इस नगरी मे ऊची-ऊची अट्टालिकाए थी जिनमें अनेक धनपति व वीरवर निवास करते थे। यथा—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इद्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिरतु वसि, ते देखि जनमन उलसि ॥११॥
नव खण तेर खणा प्रासाद, इह श्रेणि सम लागु वाद।
कोटीधन तिहां रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा।१२।
याचक जननि देइ दान, न हीयउ हरण नहीं अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा।१३।[11]

द्वारिका का विनाश व कृष्ण के परभव-गमन की घटना को नेमिनाथ की भविष्यवाणी मे लिखते हुए कवि ने लिखा है—

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संघार।
मद्यभांड जे नाभि कहीं, तेह थकी वली जलहि सही ॥६२॥
पारलोक सवि जलसि जिसि, व बन्धव निकससु तिसि।
तह्य सहोदर जराकुमार, तेहनि हाथि मारि मोरार ॥६२॥[12]

बलराम तथा श्रीकृष्ण के सहोदर प्रेम भावना का आदर्श इसमे वर्णित हुआ है।

(४) नेमिश्वर की बेलि

प्रस्तुत कृति के कृतिकार ठाकुरसी १६वी शताब्दी विक्रम मे उत्पन्न हुए थे। पिता घेल्ह स्वय कवि थे।[13] ये दिगबर जैन कवि थे। इनकी निम्न रचनाए हैं—

---

११ राजस्थान के जैन सत व्यक्तित्व एव कृतित्व डा कस्तुरचद कासलीवाल
१२. वही,
१३ नेमीश्वर बेलि, घेल्ह सुतन ठाकुरसी।
कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी, कियो नेमि सुरति मति सरसी।

कृष्ण चरित्त, नेमीश्वर की बेलि,
पचेन्द्रिय बेलि, चिन्तामणि जयमाल,
सीमन्धर स्तवन, पार्श्व सकुन सत्तावीसी

१५५० के आसपास प्रस्तुत कृति की रचना का अनुमान कवि की अन्य कृति पचेन्द्रिय बेली के आधार से किया जा सकता है[14] किंतु कवि ने कृति मे इस बात का उल्लेख नही किया है।

जैन परपरागत नेमि-राजुल के कथानक का वर्णन करते हुए कवि ने वसत आगमन के साथ ही द्वारकावासियो का वन क्रीडार्थ वन मे गमन, अनासक्त नेमिकुमार को कृष्ण की रानियो द्वारा आसक्त बनाने की चेष्टा, नेमिकुमार द्वारा कृष्ण की आयुधशाला मे पहुचकर धनुष चढाना व पाचजन्य शंख बजाना, उग्रसेन की कन्या राजीमती से नेमिकुमार का विवाह, पशुओ की करुण पुकार श्रवण कर नेमकुमार का लौट जाना, राजीमती का व नेमि का विरक्त होना, आत्मसाधना कर सिद्ध गति प्राप्त करना आदि वर्णनों के द्वारा कवि ने काव्य कला का सुदर परिचय प्रदान किया है। भाषा सरल राजस्थानी है। कुछ उदाहरण देखिये—

सुरनर जावव मिलि चल्या व्याहण नेमिकुमार।
पसु दीठा बाड़ो भर्‌यो बांध्या सुसर दुवारि॥
हरण रोछ सूवर प्रमुख, पुकारहि मुह ऊचाहि।
नेमिकुमार रथ राखि करि, बूझ्यो सारथ वाहि॥
रे सारथ ए आजि, पसु बंधिया किणि काजि।
तिणि जंप्या किसनि भणाया, पसु जाति जके मन भाया॥
पोषिवा भगति बराती, पसु वधिवा सहि परमाती।
तब नेमिकुमार रथ छोड़ि, पसु मुकलाया वडु तोडि॥[15]

दोहा तथा सखी छद में निर्मित यह कृति काव्य गुणो से युक्त है। सखी छंद वह कहलाता है जहां ४ चरण तथा प्रत्येक चरण मे १४ मात्राओ का क्रम हो। प्रथम द्वितीय चरण तथा तृतीय चतुर्थ चरणो की तुक मिलती है, जैसे—

---

१४. राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत पृ० २५४

१५. वही—

तजि मोहु मान मद रोसा अतिसहिया विषम परिवासा ।
तह अठ्ठ करम बलुवायो तिमि केवल ग्यानु पायो ।।[16]

कृति की हस्तलिखित प्रतियां दिगवर जैन मदिर बडा तेरहपथियों का जयपुर, दिगंवर जैन मदिर बधीचदजी जयपुर, भट्टारक भण्डार अजमेर के शास्त्र भण्डारो मे हैं। काव्य की दृष्टि से सरल एव सरस वर्णन है व अनुप्रास, रूपक आदि अलंकारो से युक्त है यह एक कथात्मक गीतिकाव्य है।

(५) बलभद्र बेलि

इसके रचयिता का नाम सालिग है। कृति में रचना काल का कोई उल्लेख नही है किंतु इसकी प्रतिलिपि सवत् १६६९ की मिलती है।[17] इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना इसके पूर्व ही हुई होगी। डा० नरेंद्र भानावत के मतानुसार कवि सालिग १६वी शताब्दी के कवि हैं।[18]

प्रस्तुत कृति के २८ छंदो मे द्वारका-विनाश, कृष्ण का परमधाम गमन और उनके अग्रज बलभद्र के अंतिम समय की घटनाओ का विवेचन है।

कथावस्तु—

द्वैपायन ऋषि के शाप से द्वारका नगरी का अग्नि में विनाश होता है, कृष्ण व बलराम वहां से निकल कर कौशाबी वन में पहुचते हैं, कृष्ण को प्यास लगी है यह देख कर बलभद्र पानी लाने गये। ज्योहि श्रीकृष्ण एक वृक्ष की छाया मे विश्राम करने लगे त्योहि जरत्कुमार ने हरिण के धोखे से बाण चलाया जो उन्हे लगा और श्रीकृष्ण का देहावसान हो गया। बलभद्र पानी लेकर लौटे तब कृष्ण को अचेत अवस्था मे पाकर उनके मृत शरीर को कधे पर उठाकर ६ मास पर्यंत घूमते रहे। अत मे देवताओ ने उन्हे प्रबोध देने के लिए एक नाटक रचा। उसमे यह बतलाया गया कि घाणी से रेत को पीस कर तेल का निकलवाया गया तथा पत्थर पर पुष्प को खिलवाया गया। इसके फलस्वरूप बलभद्र का मोह दूर हुआ। कृष्ण के मृत शरीर का दाह सस्कार कर, अरिष्टनेमि की सेवा मे पहुचकर, प्रव्रज्या ग्रहण कर वे ५ वें देवलोक मे पुन उत्पन्न हुए।

---

१६ राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत पृ० २४४

१७ बलभद्र बेलि—रच० सालिग।
समकित विण काज न सिझइ। सालिग कहइ सुवउ कीजइ ।।२८।।

१८ राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत

सरल रास्थानी भाषा मे निर्मित प्रस्तुत काव्य के कुछ उदाहरण देखिए :—

तब देव उपाव करावइ । मिल उपरि कमल ति बावई ।
तें बावइ कमल तिणि आगइं । बलिभद्र कहइ किम लागई ।।
पाथर ऊपर पोयणी, किम ऊगसी गमार ।
जो ये मुआं जीवसी, तउ ऊगसी कुमार ।।
इम वचन सुणी मंन जाणी । बेंलु पील्हइ घाणी ।
तू मुरख जोइ नवि मासी । बेंलु किम पील्हासी ।
तो एसू ओ मडउ ओ जीवइ । तो तेल बलइ लव दीवइ ।
समझावत लडकी बोलइ । बलिभद्र पड्यो इम डोलई ।।

कवि ने अपनी इस कृति मे दोहा और सखी छदो का प्रयोग किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर मे सग्रहीत एक गुटके में उपलब्ध है।[19]

(६) नेमि ब्याह

कविवर विनोदीलाल की यह एक छोटी-सी सरस रचना है[20] जिसमें नेमिनाथ की बरात का चित्रण करते हुए कवि ने पशुओ की करुण पुकार को सुनकर नेमि के हृदय मे वैराग्य भाव को जागृत कराया है। इसकी कथा-वस्तु पूर्व की हिंदी कृति नेमिचद्रिका की तरह है।

प्रस्तुत कृति मे नेमिनाथ के दिल में दु खी राष्ट्र के दु ख को दूर करने की प्रबल आकाक्षा जागृत होती है। यद्यपि उनके मन मे कुछ क्षणो तक सासारिक प्रलोभनो से युद्ध होता है, परतु जब वे तटस्थ होकर राष्ट्र की परिस्थिति का चिंतन करते हैं, उस समय उनका मोह समाप्त हो जाता है। भौतिक वैभव को त्याग कर मानव-कल्याण के हेतु वे तपाराधना के लिए जाते हैं। उनका यह कार्य जीवन से पलायन नही है, अपितु यथार्थ मे यह ऐसा पुरुषार्थ है जिसके लिए आत्मबल की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार दृढ मनोबल साधारण व्यक्ति नही कर पाता। जिसके अत करण मे मानव-कल्याण की भावना सुलग रही हो, जिसकी आत्मा में अपूर्व बल होगा वही व्यक्ति इस प्रकार के अद्वितीय कार्यों को सपन्न कर सकेगा।

---

१९ बलभद्र बेलि (हस्त० प्रति) अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, प० सख्या १४ से १७
२०. नेमिब्याह : 'कवि विनोदीलाल—हिंदी जैन साहित्य परिशीलन, ले० डा० नेमिचद्र शास्त्री, पृ० २०१ से २२२।

नेमिनाथ ऐसे ही असाधारण व्यक्ति थे। कवि विनोदीलाल ने रचना के आरंभ में वर की वेषभूषा का जो वर्णन किया है वह द्रष्टव्य है—

मोर धरो सिर दूलह के कर कंकण बांध दई कस डोरी।
कुडल कानन में झलके अति भाल में लाल विराजत रोरी।
मोतिन की लड शोभित है छवि देखि लजे बनिता सब गोरी।
लाल विनोदी के साहिब मुख देखन को दुनिया उठ दौरी ॥[21]

विरक्त होने काले नेमिनाथ का चित्रण:—

नेम उदास भये जब से कर जोड के सिद्ध का नाम लियो है।
अम्बर भूषण डार दिये शिरमौर उतारके डार दियो है।।
रूप धरों मुनिका जब हीं तब हीं चढ़ि के गिरनारि गयो है।
लाल विनोदी के साहिब ने तहा पाच महाव्रत योग लयो है ॥[22]

कवि ने इस रचना में युवको के आदर्श के साथ युवतियो के आदर्श का भी सुदर अंकन किया है। जब तक देश का नारी समाज जाग्रत नही होगा और विवाह ही जीवन का उद्देश्य है इस सिद्धात का त्याग नही करेगा तब तक राष्ट्र का कल्याण नही हो सकता। राजुल ने ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। भोग-जीवन का जघन्य लक्ष्य है। व्यक्ति जब भोगवाद से ऊपर उठता है तभी वह सेवा कार्य मे प्रवृत्त हो सकता है। जब माता-पिता राजुल को पुन वरान्वेषण की बात कहकर सतुष्ट करते हैं, तब राजुल ही सुदर उत्तर देती हुई कहती है—

काहे न बात सम्हाल कहो तुम जानत होयहो बात भली है।
गालियां काढ कहो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है ॥
मैं सबको तुम तुल्य गिनो तुम जानत ना यह बात रली है।
या भव मे पति नेम प्रभू वह लाल विनोदी को नाथ बली है ॥[23]

(७) नेमि चन्द्रिका

प्रस्तुत कृति का रचयिता मनरगलाल पल्लीवाल है। ग्रथ के अंत मे परिचय देते हुए लेखक ने लिखा है कि वह कान्यकुब्ज (कन्नौज) का

---

२१. नेमिब्याह . कवि विनोदीलाल—हिंदी जैन साहित्य परिशीलन. ले० डा०नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० १ से २२।
२२ वही—
२३ वही—

निवासी जैन धर्मावलंबी था, पिता कनोजीलाल थे। अपने मित्र गोपालदास के कहने से उन्होने इस कृति का निर्माण किया था।[24]

प्रस्तुत ग्रंथ का आधार जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण है। इसकी रचना कवि के कथनानुसार विक्रम सवत् १८८० (सन् १८२३) है।[25] ३८९ छदों में विरचित इस ग्रथ के प्रारंभ में जिनेश्वर व गणेश की वदना है। द्वारिका नगरी के शक्ति सपन्न राजा वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन, नेमिनाथ के माता-पिता का वर्णन, नेमिनाथ तथा कृष्ण की बाल लीलाएं, नेमि का सौंदर्य और वीरत्व एवं वैराग्य वर्णन, कैवल्य प्राप्ति तथा मोक्ष के वर्णन हैं। कृति की कथावस्तु परंपरागत है। खंडकाव्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। इसकी भाषा सरल हिंदी जो सामान्य पाठक समझ सकते हैं। दोहा, सोरठा, चौपाई, अडिल्ल तथा भुजंगप्रयात छंदों का प्रयोग करते हुए कवि ने शात, करुण, विप्रलभ शृगार आदि रसो का अच्छा उपयोग अपनी इस कृति में किया है। यहां पर रसों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

वीररस का उदाहरण

नाग साधि करके मुरलिधर। सहस पत्र ल्याये इंदीवर।
कस नास किन्हों छिनमांहि। उग्रसेन कहं राज्य कराहि।
जीत लीन शिशुपाल नरेस। जरासध जीतो चक्रेस॥
इत्यादिक बहु कारण करे। सकल अनीति मार्ग तिन हरे।[26]

भारत भूमि के सपूर्ण राजाओ मे श्रेष्ठ व पूजनीय वीर कृष्ण कस का वध कर पिता उग्रसेन को राज्यासीन करते हैं। शिशुपाल व जरासध जैसे शक्तिसंपन्न वीरो पर विजय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक पराक्रमपूर्ण कार्य किए हैं। ऐसे कार्यों से श्रीकृष्ण ने अनीति के स्थान पर नीति की स्थापना की है।

इस प्रकार के श्रेष्ठ कृष्ण किस तरह से नृपतिगण व देवगणो के द्वारा सेवित थे और ये ही लोग उनकी आज्ञा-पालन कैसे करते थे इसे लेकर इस प्रसग का कवि ने मार्मिक विवेचन किया है। यथा—

---

२४ नेमिचद्रिका की एक हस्तलिखित प्रति, जैन मदिर बडा तेरापथियो का, जयपुर मे उपलब्ध है।

२५ एक सहस अरु आठ सत वरष असीती और।
याहि सवत मो करी पूरण छह गुण गौर॥ —नेमिचद्रिका।

२६ नेमिचद्रिका—छद १९-२०।

सकल भूप सेवत तिन पांय ।
सेव करत आज्ञा मन भाय ।।[27]

एक और वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें सांसारिक अस्थिरता एवं झूठे स्वार्थ से प्रेरित विरक्ति के भाव निर्वेद की पुष्टि करते हैं, इसे देखिए—

अस्थिर वस्तु जितनी जग माँहि
उपजत विनशत संशय नाँहि ।।
स्वारथ पाय सकल हित करे ।
बिन स्वारथ कोउ हाथ न धरे ।।[28]

(८) बारह मासा नेमि-राजुल

जैन कवियों ने बारह मासों की रचना करके अपनी राष्ट्रीयता की भावनाओं का सुंदर चित्रण किया है, इसमें वीरता का भी प्रदर्शन है। बारह मासों में सवाद शैली में सेवा तथा वैराग्य की भावना को प्रकर्ष दिया गया है और अंत में उसी का महत्त्व है। सवादों के माध्यम से इसमें विभिन्न मानवीय भावनाओं का सुंदर अंकन दिखाई देता है। इस कृति का रचयिता कवि विनोदीलाल है।[29]

इसमें राजुल अपने संकल्पित पति नेमिनाथ से अनुरोध करती है कि "स्वामी आप इस युवावस्था में विरक्तभाव से क्यों तपस्या करने जाते हैं ? यदि आपको तपस्या करना ही अभीष्ट था और आप देश मे अहिंसा संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे तो आपने आषाढ़ महीने में यह व्रत क्यो नही लिया ? जब आप श्रावण मे विवाह की तैयारी कर आ गए तब क्यो आप इस तरह मुझे ठुकराकर जा रहे हैं ? मेरा मंतव्य है कि राष्ट्रोत्थान में भाग लेना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। स्वर्णिम अतीत हरेक सहृदय को प्रभावित करता ही है। राष्ट्र की संपत्ति युवक और युवतिया हैं और इन्ही के ऊपर राष्ट्र का समुचा उत्तरदायित्व है। इसलिए आपका महत्वपूर्ण त्याग वैयक्तिक साधना न होकर राष्ट्रहित साधन वन जायगा। फिर भी मैं आपके कोमल शरीर व ललित कामनाओ का अनुभव करती हू, इसलिए मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि यह व्रत आपके लिए

२७ नेमिचन्द्रिका—छंद १९-२०

२८ वही—

२९. बारह मासा नेमि राजुल ले० विनोदीलाल, हिंदी जैन साहित्य परिशीलन- ले० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० २०२-५,

उचित नही है। श्रावण मास मे व्रत लेने से घनघोर वादलो का गर्जन, विद्युत् की चकाचोध, कोयल की कूहुक, अधकारपूर्ण यामिनी और पूर्वी पूर्वी हवा के मधुर शीतल झोंके आपको वासना से परिपूर्ण किए बिना नही रहेगे। अतएव इस महीने में दीक्षा लेना खतरे से खाली नही है। अतः इस समय तप साधना करना भी ठीक नही है।"

राजुल की उक्त बातो का उत्तर नेमिनाथ ने बडे ही ओजस्वी शब्दो मे दिया है। वे कहते हैं कि "*जब तक व्यक्ति आत्मशोधन नही कर लेता* तब तक राष्ट्र का हित नही कर सकता। आत्मशोधन के लिए समय विशेष की आवश्यता नही रहती। भय और त्रास उन्ही व्यक्तियो को विचलित कर सकते हैं जिनके मन मे किसी भी प्रकार का प्रलोभन शेष रहता है। मेरे मन मे कोई प्रलोभन नही है। प्रकृति के मनोहर रूप में जहा रमणीय भावनाओ को जागरुक करने की क्षमता है वहा उसमें वीरता, धीरता और कर्तव्य-परायणता की भावना उत्पन्न करने की योग्यता भी विद्यमान है। *अत श्रावण मास की झड़ी, वासना के स्थान पर विरक्ति ही उत्पन्न* कर सकेगी।" नेमिनाथ के इस उत्तर को सुनकर राजुल भाद्रपद मास की कठिनाइयो का विवेचन करती है, वह मोहवश उनसे प्रार्थना करती हुई करती है कि "प्राणनाथ, आप जैसे सुकुमार व्यक्ति भाद्रपद मास की अनवरत होने वाली वर्षा ऋतु की मुक्त प्रवृत्ति में, जहा न भव्य प्रासाद होगा न वस्त्रवेश्म, आप किस प्रकार रह सकेंगे? झंझावात, नन्ही-नन्ही पानी की बूदे पानी से युक्त होकर शरीर मे अपूर्व वेदना उत्पन्न करेंगी। *यदि आपको योग धारण ही करना है* तो घर पर चलकर योग धारण कीजिए। सेवक को वन जाना आवश्यक नही, वह घर मे रहकर भी सेवा कार्य कर सकता है। प्राणनाथ, मैं यह मानती हू कि इस समय देश में हिंसा का बोलबाला है, इसे दूर करने के लिए पहले अपने को पूर्ण अहिंसक बनाना पडेगा, तभी देश का कल्याण हो सकेगा। परतु, आपका मोह मुझे इस बात की प्रेरणा दे रहा है कि मैं इस कठिनाई से आपकी रक्षा करू।"

राजुल की इन बातो को सुनकर नेमिनाथ हस पडते हैं और कहते हैं कि "कष्ट सहिष्णु बनना प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक है। ये थोडे से कष्ट किस गिनती मे हैं? जब नरक निगोद के भयकर कष्ट सहे हैं तथा जब इस समय हमारा राष्ट्र संतप्त है, प्रत्येक प्राणी हिंसा से छटपटा रहा है, उस समय तुम्हारी ये मोहभरी बाते कुछ भी महत्व नही रखती। मैंने अच्छी तरह निश्चय करने के उपरात ही इस मार्ग का अवलबन लिया है।"

इसी प्रकार राजुल ने १२ महीनों की भीषणता का चित्रांकन किया है। नेमिनाथ इन विभीषिकाओं से नहीं डरते। वह तो अपने व्रत में दृढ़ रहते हैं। इस प्रसंग के सभी पद्य सरल और मधुर हैं। कार्तिक मास का चित्रण करती हुई राजुल कहती है—

पिय कातिक में मन कैसे रहै, जब भामिनि भौन सजावेंगी।
रचि चित्र विचित्र सुरंग सबै, घरहीं घर मंगल गायेंगी।
पिय नूतन नारि सिंगार किए, अपनो पिय टेर सुनावेंगी।
पिय बारहि बार बरै दियरा,...जियरा तरसावेंगी ॥[30]

नेमिनाथ का प्रत्युत्तर—

तो जियरा तरसे सुन राजुल, जो तन को अपने कर जाने।
पुद्गल भिन्न है भिन्न सबै, तन छोड़ि मनोरथ आन सयाने ॥
बूडेगो सोई कलिधार में, अरु चेतन को को एक प्रमाने।
हंस पिवे पय भिन्न करे जल, सो परमातम आतम जाने ॥[31]

वसंत ऋतु के आगमन की विभीषिका दिखलाती हुई राजुल कहती है :

पिय लागेगो चैत वसत सुहावनो, फूलेगी बेल सबै वन माही।
फूलेंगी कामिनी जाको पिया घर, फूलेंगी फूल सबै वनराई ॥
खेलहिंगे ब्रज के बन में सब, बाल-गुपाल रु कूवर कन्हाई।
नेमि पिया उठ आवो घरे तुम, काहेको करहो लोग हसाई ॥[32]

(६) बारह मासा वर्णन

उपलब्ध बारह मासों में सबसे प्राचीन "जिन-धर्मसूरि बारह नावउ" है जो अपभ्रंश भाषा की रचना है। उसके पश्चात् कवि पाल्हण रचित नेमिनाथ बारह मासा मिलता है। पाल्हण का आबूरास सं० १२८९ की रचना होने से इस बारह मासा का रचनाकाल भी इसी के आसपास होना चाहिए।[33] यथा—

सावणि सघण घुडुक्कइ मेहो, पावसि पत्तउ नेमि विछोहो।
दद्दर मोरलवहिं असगाह, दहदिह वीजु खिवइ चउवाह ॥

---

३०. बारहमासा नेमि राजुल' ले० विनोदीलाल, हिंदी जैन साहित्य परिशीलन भाग १ ले० नेमिचंद शास्त्री, पृ० २०२-५।

३१ वही—

३२. वही—

३३ राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परपरा, ले० अगरचंद नाहटा,

कोइल महुर वयणु चाए रवइ, विवीहुउ धाह करेई।
सावणु नेमि जिणिद विणू, भगइ कुमरि किय-गमणउ जाए ॥२॥

प्रस्तुत बारहमासा १६ पद्यो का है, प्रथम व १५ वे पद्य में कवि का का नाम आता है, वे दोनो पद्य इस प्रकार हैं—

आदि—

कासमीर मुख मडण देवी, वाएसरि 'पाल्हणु' पणमेवी।
पदमावतिय चक्केसरि नमिऊ, अबिकदेवी हुउ वीनवउ ॥
चरिउ पयासउ नेमि जिण केरउ, कवितु गुण धम्म निवासो।
जिम राइमइ विओगु भओ, बारह मास पयासउ रासो ॥१॥

अत—

जो जादवकुल मडल सारो, जिणि तिणि चडि परिहरिउ ससारो।
कुमरि तजिय तपु लउ गिरनारे, सिघि परिणउ गउ मोख दुवारे ॥
जणु परिमलु 'पाल्हणु' भणए, तसु पय अणुदिण भत्ति करेउ।
मणवछिउ फलु पाविजए, घुय सम सरिसु वयणु फुड् एहु ॥१५॥
इणि परि भणिया 'बारहमासा' पठत सुणतह पूजउ आसा।
रायमइ नेमिकुमर बहु चरिउ, सखेविण कवि इणि परि कहिउ।
अबिकदेवी सासण देवि माई, सघ सानिधु करिजउ समुदाई ॥१६॥

(१०) नेमि-बारहमासा[34]

नेमजी ओ रगरगीला छेल-छबीला छोड चल्याजी गिरनार।
नेमजी ओ जेठज मासज जेठज मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउजी धरती करे रे पुकार…
नेमजी ओ आषढ़ मासज आषढ़ मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउ जी बूल उठे छे अपार…
नेमजी ओ श्रावण मासज, श्रावण मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउ जी घटा चडी घनघोर…
नेमजी ओ भादव मासज, भादव मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउ जी वर्षन लाग्यो नीर…
नेमजी ओ आसोज मासज, आसोज मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउ जी जोगी बण गया ज्ञाट…
नेमजी ओ कातिक मासज, कातिक मासज आयो मारा नेमजी

३४. नेमि बारहमासा (कठाभरण से)

आयो मांरा पिउ जी घर-घर दीपक माल···
नेमजी ओ मिगसर मासज, मिगसर मासज आयो मांरा नेमजी
आयो मांरा पिउ जी साधू सत विहार···
नेमजी ओ पोहज मासज, पोहज मासज आयो मांरा नेमजी
आयो मोरा पिउजी ठण्ड पड़े जी अपार···
नेमजी ओ माघज मासज, माघज मासज आयो मारा नेमजी
आयो मांरा पिउ जी थर-थर कांपे शरीर···
नेमजी ओ फागण मासज, फागण मासज आयो मारा नेमजी
आयो मांरा पिउ जी घर-घर उड़े रे गुलाल···
नेमजी ओ चेतज मासज, चेतज मासज आयो मांरा नेमजी
आयो मांरा पिउ जी पूजन दो गिणगोर···
नेमजी ओ वैशाख मासज, वैशाख मासज आयो मारा नेमजी
आयो मारा पिउ जी आखा तीज तेवार···

(११) नेमजी और राजुल का सवाद[35]

(तर्ज—तेजा गाओगा जो···)

राजुल—सुनज्यो-सुनज्यो नेमजी पे पाछा बयाने आवो हो ।
राजुल तो जोवे है थारी वाटडी ॥
नेमजी . जीवांरी तो घात म्हासु, सही नही जावे हो,
म्हारी तो काया रे पलटो खावियो ॥
राजुल : एक नही हा दो नही पर घणां भवा,रो साथ हो ।
इण भव म्हाही तारी म्हारा नेमजी ॥
म्हारा तो हृदय में वस गया आपजी ॥
कुण थाने भरमायों न कुण तो वहकायो हो,
काई तो कारण सु काठा रूठिया ॥
मुश्किल से तो व्याव रचायो सुनज्यो प्यारा नेमजी,
तोरण आया किकर छोडियो ॥
मूक जीवा पर दया थाने आई म्हारा नेमजी,
हां राजुल का हृदय नु किण विध तोडियो ॥
नेमजी ' माया मुं मुक्ति नहीं है सुनज्यो राजुल नार ए,
काया विन माया भूल जान ज्यो ॥

३५. नेमजी और राजुल सवाद

राजुल . प्राणनाथ हो आप नेम जी दूज्यो नही नाथ जी ।
नेम का चरण मे चित राख स्यू ॥
नेमजी • शुद्ध रेवेला शील थारो सुनज्यो राजुल नार ए ।
शील री महिमा रो नही पार ए ।
सखिया • सखिया तो अरदास करे सुन ज्यो राजुल बाई सा,
ध्यान छोडो ए नेम कुवांर को ॥
सखिया • काला पीला नेम सरीखा घणा है ससार मे,
ब्याव तो करोनी सुख चैन सु ॥
राजुल काला पीला जो भी नेमजी हृदय रा वो हार है ।
हा-नेम री महिमा रो नही पार ए ॥
नेमजी सखिया तो भरमासी थाने सुनज्यो राजुल नार हो ।
सखिया री बैखावट मति मान ज्यो ॥

दोहा बिना ब्याव के लौट गये, छोड मोह जजाल,
विरक्त भाव से रहते हैं नेम नाथ भगवान् ॥
एक करोड अस्सी लाख सोनैया, करते प्रति-दिन दान ।
ऐसे महापुरुषो को पूनम करे प्रणाम ॥
सुनकर इस सदेश को, राजुल भई बेहोश ।
सन्नाटा तब छा गया, दोनो पक्षो में घोर ॥
सखिया करे करे सखिया, उपचार राजुल नार ए,
हिंमत तो धारो ए, जग मायने ॥
नेमजी : सदेश अब भेज रहे हैं सुनजो राजुल नार ए,
प्रेरणा देने मे तोरण आवियो ।
इस भव का सबध तुम से सुनजे राजुल नार ए,
अमर रहवेला जग मायने ॥
ससारी वैभव मे सुख नही है ससार मे
संबघ तो जोडो ए परलोक को ॥
दोहा : मैं तो अब तैयार हू, तुम होवो तैयार ।
सफल करें मानव को, सर्वोत्तम सिद्धि पाय ।
दोहा सुनकर शुभ सन्देश को, राजुल करे विचार ।
सजम लेस्यू शान सु, सुनज्यो नेम कुवार ॥
शुभ मोहरत शुभ लग्न मे, सजम सुखरो विचार ।
सात सो कन्या रे साथ मे, राजुल वणी अणगार ॥
राजुल • दे दे म्हाने सत रो, आदेश माता प्यारी थे,
सजम तो धारु हो सुख चैन को ॥

रहसी वो तो शादी बिना, नेमजी अवतार री,
राजुल तां पालेला शुद्ध शील ने,
धन्य-धन्य थारो सफल हो गयो जीवन ससार में,
धर्म दीपायो जग मांयने ।[36]

(१२) नेमजी की लावणी—कविवर लक्ष्मणराम ।

नेमजी की जान बनी भारी, देखन कू आवे नर नारी ।
अति है घोड़ा और हाथी, मनख री गिनती नहीं आती ।
ऊंट पर धजाजो फहराती, धमक से धरती धर्राती ॥

दोहा : समुद्र विजयजी को लाडीलो, नेमजी उनका नाम ।
राजुल देख आये परणवा, उग्रसेन घर ठाम ।
प्रसन्न भइ नगरी सब मारी, नेमजी की जान बनी भारी ।

कसुंबल बागा अतिभारी, काने कुंडल छवि है न्यारी,
कलगी तोरा सुखकारी, माला गले मोतियन की डाली,

दोहा : काने कुंडल जगमगे, धीप खूब झलकार ।
कोटीभानु की करब उपमा, शोभा अधिक अपार ।
बाज रह्या बाजा टकसारी, नेमजी की···

नेमजी वचन फरमाए, पशु जीव काए को लाये ।

दोहा · यांको भोजन होवसी जान वासते लेह,
सुनी वचन यह नेमजी थर-थर कापे देह,
भाव सू चढ गया गिरनारी, नेमजी की जान···

झरखे राजुल दे आई, हाथ जल पकड्यो छिन माई
कहा तू जावे मेरी जाई, औखर है तुम मोकलाई

दोहा : मेरे तो वर एक ही, हो गया नेम कुवार ।
और भुवन में वर नहीं, कोटि करो विचार ।
दीक्षा जब राजुल ने धारी, नेमजी की जान···

सहेल्या सब ही समझावे, हीए राजुल के नहीं आवे,
जगत सब झूंठे दरसावे, मेरे मन नेम कुवर भावे,

दोहा : तोड्या काकर दोरडा, तोड्या नवसर हार,
काजल टीकि पान सोपारी, त्यागा सब सिणगार,

---

३६. नेमजी राजुल सवाद ।

सहेल्या सब ही विलखाणी, नेमजी की

त्याग्या सब सोलह सिणगारा, आभूषण रत्नजडित सारा,
लगे मोहे सब ही सुख भारा, छोडकर चाली निरधारा।

दोहा : मातपिता परिवार को, तजता न लागी वार।
वियोग कर चली आपसू, जाय चढी गिरनार,
झूमती छोडी मा प्यारी, नेमजी की

दया जब पशुअनकी आई, त्याग जब दीनो छिन माई।
नेमजी गिरनारे जाई, पशु के बधन छुडवाई।

दोहा नेम राजुल गिरनार पे, लीनो सजम धार।
लवणराम करी लावणी, उपन्यो केवलज्ञान।
जिन्हो की क्रिया बड़ी प्यारी, नेमजी की जान

(१३) कृष्ण लावणी

पुरुषोत्तम प्रगट्या अवतारी, जगत मे महिमा विस्तारी। टेर।
देवकी को नंदन है नीको, हुओ आदव कुल मे टीको,
भादवा वदी अष्टमी को, जनम जब हुओ हरिजी को।

दोहा तिन अवसर वसुदेवजी, मन का सोच मिटाय।
कोमल कर मे लेय कान्ह को, जावे गोकुल माय।

भवन से आय उतर हेटा, द्वार के ताला जड्या सेंठा।
कस का पहरा बाहर बैठा, निकल जाने का नही रास्ता।

दोहा · चरण अगुल लगावियो, गोविंद को तिण वार।
खड-खड ताला टूट पड्या, कोई सड सड खुल्यो द्वार।
अखण्डित निकल गए बाहरी, जगत मे •

अंधेरी रात घटा छाई, जोर से गाजे गगन माई।
चमकती बिजल्या दर्शाई, वायरी बाजे जोश खाई

दोहा अति उमग आकाश से, पड रही जल की धार।
सहस्र नाग छाया कर दीनि, पडे न बूद लगार।
जिन्हो का पुण्य बडा भारी, जगत मे महिमा
निकल मथुरा से गोकुल धावे, अपट जमुनाजी पुर जावे।
निकलवा मारग नही पावे, विविध मिसतल मन में ठावे

दोहा : पग फरस्यो गउपाल को, जमुना हुई दो भाग।
वसुदेवजी तुरन्त निकल गये, हुलस्यो हियो अथाग।

गोकुल पहुंचे गिरधारी, जगत में…

यशोदा के हाथ जाय दीनो, प्रेम से गिरधर को लीनो,
नन्दजी महोत्सव खूब कीनो, दान बहु याचक को दीनो।
दोहा : आए मथुरा में निज घरे, वसुदेव जी चाल।
दिन-दिन बीज कला ज्यों बढता, आनद मे नंदलाल।
कोई नहीं जाने नर-नारी, जगत में…

कृष्ण दिन-दिन भैया मोटा, हाथ मे दण्ड लिया छोटा।
ग्वाल संग रमे दही होटा, शत्रु के हुआ जेम सोटा।
दोहा : सोलह वर्ष गोकुल विषे, लीला करी अनेक।
तीन खण्ड का नाथ हुआ तो, पूरब पुण्य तो देख।
जगत वल्लभ कहे नरनारी, जगत मे…

दलाल्यां धर्म तिणि कीनि, शास्त्र मे साख देख लीनि।
दोहा : महामुनि नन्दलालजी, तस्य शिष्य कहे एम।
पुण्यप्रताप वछित फल पाये, रखो धर्म का नेम।
मांगलगढ़ जोड करी त्यारी, जगत मे महिमा…[37]

(१४) नेमिनाथ और राजुल—कविवर नेमिचद जी म०

(राग—कुवरा साधु तणो आचार)

इम किम छोड्यो नेमकुमार। राणी राजुल रा भरतार ॥टेर॥
छप्पन करोड प्रभु जान बणाई, आया हर्ष अपार।
तोरण थी रथ पाछो फेर्यो, दया धर्म दिलदार ॥१

पशुअन की प्रभु पीडा देखी, मारी नही सुणी रे पुकार,
वीन्द किणी विलमाया थाने, पाछा वल्या इण वार।इम.। २

जो थारे वालम नही परणणो तो, पेली करता विचार।
तेल चढी हमने छिटकाई, किम निकले जमार। इम । ३

जो थारे प्रीतम या हीज करणी तो, फेरा फिरता चार।
हू पण सजम साथे लेती, नहीं करती मनवार। इम.। ४

हूस रही म्हारे सासरिया री, नही देख्यो घर बार।
नेणा सु परनाला वरसे, झुर रही राजुल नार। इम । ५

---

३७ कृष्ण लावणी

खैर करी पिया थाने ओलुम्बो, काई देऊ बारम्बार।
आठ भवांरी प्रीत बधाणी, नव मे तोड्यो तार। इम। ६

इम कही ने काकण डोरडा, तोड्यो नवसर हार।
सखी सहेलिया वरजत सारी, जाय चढी गिरनार। इम। ७

आप तो नेमजी पेली पधार्या, मुझे न लीधी लार।
आप पेली मू जाऊ मुगत मे, जाणजो थारी नार। इम ८।

चौपन्न दिनो रे पेली यो सती, पोहती मोक्ष मझार।
नेम राजुल या सरीखी जोड़ी, थोडी इण ससार। इम। ९

पूज्य अमर सिघजी रो सिंघाडो, दीपत ज्यू दिनकार।
पूज्य पूनम महाराज प्रसादे, भणे नेम अणगार। इम। १०

समत उगणीसे साल त्रेपने, भाद्रव पच शनिवार।
गाम रेडेडे कियो चौमासो, घणो हुवो उपगार। इम। ११[38]

रथनेमि एव राजीमती

रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता थे। रथनेमि का आकर्ष राजीमती की ओर प्रारभ से ही रहा। जब भगवान् अरिष्टनेमि ने राजीमती को बिना विवाह किये ही छोड दिया तो रथनेमि उसके साथ विवाह कर के लिए लालायित हो उठा और अपनी भावना राजीमती के सामने व्यक्त करने लगा। राजीमती ने वमन कर उसे पीने के लिए कहा। रथनेमि ने क्रुद्ध होकर कहा—क्या तू मेरा अपमान करती है? राजीमती ने कहा—भाई वे द्वारा वमन किये हुए को ग्रहण करना क्या तुम्हारे लिए उपयुक्त है? रथनेमि का विवेक जागृत हो उठा। यहा एक प्रश्न चिंतनीय है। वह यह है—अर्हंत अरिष्टनेमि के दीक्षा लेने के पश्चात् रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण की आवश्यक निर्युक्ति, वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित मे लिखा है—रथनेमि चार सौ वर्ष गृहस्थावस्था मे रहे, एक वर्ष छद्मस्थ अवस्था मे रहे और पाच सौ वर्ष केवली पर्याय मे। उनका नौ सौ वर्ष का आयुष्य हुआ। इसी तरह कुमारावस्था, छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था का विभाग करके राजीमती ने भी उतने ही आयुष्य का उपभोग किया।

---

३८ नेमिनाथ और राजुल—कविवर नेमिचद जी महाराज।

अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारावस्था मे रहे, सात सौ वर्ष छद्मस्थ व केवली अवस्था मे रहे, इस तरह उन्होने एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा।

जिज्ञासा यह है कि रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता हैं। भगवान् तीन सौ वर्ष गृहस्थाश्रम मे रहे तथा रथनेमि और राजीमती चार सौ वर्ष। राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण मे सिर्फ चौपन दिन का अतर है। चौपन दिन के अतर का उल्लेख कवियो की रचना मे मिलता है। यदि उस उल्लेख को प्रामाणिक माना जाय तो यह स्पष्ट है कि राजीमती का दो सौ वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम मे रहना चिंतनीय विषय है। विज्ञो को इस सबध मे अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत करना चाहिये।

उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति तथा वादीवेताल शातिसूरि रचित बृहद्वृत्ति, मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भवभावना ग्रथ कि दृष्टि से अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती नद की कन्या एकवासा तथा यादवो की अनेक महिलाओ के साथ दीक्षा ग्रहण करती है। राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं जिन्होने मोह को जीत लिया। मुझे धिक्कार है जो मैं मोह के दलदल मे फसी हू। इसलिए यही श्रेयस्कर है की मैं दीक्षा ग्रहण करू। इस प्रकार राजीमती ने दृढ सकल्प कर कघी के सवारे काले केशो को उखाड डाला। श्रीकृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्ये! इस भयकर ससार रूपी सागर से तू शीघ्र तिर जा। रथनेमि ने भी उसी समय भगवान् के पास सयम ग्रहण किया।

एक दिन की घटना है—बादलो की गडगडाहट से दिशाए काप रही थी। रेवतक का वनप्रातर साय-साय कर रहा था। साध्वी समूह के साथ राजीमती रैवतक गिरि पर चढ रही थी। एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया। बिछुडी हुई राजहसिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया। राजीमती ने एकात स्थान निहार कर सपूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिये।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उसी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा मे अवस्थित था। बिजली की चमक मे निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर पडी। वह अपने अगो का गोपन कर बैठ गई। काम-विह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुरूपा! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हू। तू मुझे स्वीकार कर। मैं तेरे बिना जीवन धारण नही कर सकता। तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर, फिर समय आने पर हम दोनो पुन. सयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो मैं किन्तु तुम्हारी इच्छा नही करती। अगधन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसद करते है किंतु वमन किये हुए विष का पान नही करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यो कर रहे हो? जैसे अकुश से हाथी वश मे हो जाता है, वैसे ही रथनेमि का मन सयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा प्रसग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ तब नारी ने उसका सच्चा पथ प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहु-बलि को अहकार के गज से उतरने की प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणो का निरूपण इस अध्याय मे हुआ है। इसके पश्चात् पुरुषादानीय भगवान् पार्श्व के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि की बहुत ही सक्षेप मे कथाए हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी उसमे दी गई है। इस कथा मे दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिंतन किया गया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उस युग मे प्रचलित थी। विश्व मे कोई भी पदार्थ एकात रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ मे परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ मे परि-वर्तित हो जाता है। अत अतर्मानस मे किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है यह बात प्रस्तुत कथानक मे स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर इन दोनो तीर्थंकरो के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थंकरो के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर बावीस तीर्थंकरो के श्रमणो-

पासक द्वादश व्रतों को ही धारण करते थे। उनके लिए पांच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।[४२]

तथ्य और निष्कर्ष :

मुक्तक काव्य में जीवन का अंतर्दर्शन और रागात्मकता की अभिव्यक्ति होती है। इसमें भावना की और अनुभूति की अधिक गहराई होती है। मिलन-विरह, हर्ष-शोक और आनंद-विषाद के चित्र सीमित रूप में ज्ञेयता द्वारा लय और गति के साथ उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार के काव्य में आत्मनिष्ठा और आत्मानुभूति का भाव प्रकाशन सामने आता है। हिंदी जैन मुक्तक साहित्य मे लावणी, ढाल, बारहमासा, भजन, पद जैसा विपुल साहित्य मिलता है। विषय किसी व्यक्ति या प्रसंग को लेकर ही क्यों न हो उसमे श्रृंगार से आरंभ होकर उसकी परिणति वीतराग रस मे होती है। संसार की स्वार्थपरता से भयभीत होकर अंत में शांति प्राप्ति के लिए अंतर्मुख होकर अंतरातम से प्रेरणा प्राप्त की जाती है। ऐसे पदो में आत्म-चेतना की जागृति और गहरी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति उसका लक्ष्य होता है। उसमे आत्मनिवेदन भी एक विशेषता है। जीवन के सूक्ष्म व्यापक सत्यो का उद्घाटन करना, मानव के प्रकृत रागद्वेषो का परिमार्जन करना और मानव की स्वभावगत इच्छाओ तथा आकांक्षाओं और प्रवृत्ति-निवृत्तियो का सामंजस्य करना जैन मुक्तक काव्यो का वर्ण्य विषय है। काव्य के "सत्यं शील सुंदरम्" इन तीन अवयवो मे से जैन मुक्तक काव्यो में लोकहित, शिवत्व की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह एवं संयम की विवेचना सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त हुई है। वैराग्य भावना संसार की असारता को प्रकट करती है। जनकल्याण के लिए मानवता का चरम विकास आवश्यक होता है, जैन मुक्तक काव्यो मे यह सब सरसता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मैंने इस अध्याय मे जिन मुक्तक काव्य-विधाओ को अध्ययन में लिया है, उन सब में यही आत्म-निष्ठता और वैराग्य से उत्पन्न वीतराग रस प्रधान है। श्रृंगार रस को भी उदात्तीकरण के साथ वीतराग रस मे परिणत करना यही हिंदी जैन मुक्तक काव्यो की अन्यतम विशेषता है। मैंने अपने अनुशीलन मे इसे यथासंभव दिखाने की भरसक चेष्टा की है।

---

४२ धर्मकथानुयोग एक समीक्षात्मक अध्ययन, देवेंद्र मुनि शास्त्री, पृ० ५५ भूमिका।

इस अध्याय में कुल दो फागु काव्य, ३ बेलियां, १ नेमीब्याह, १ नेमिचद्रिका और कई बारहमासे हैं। इनके अतिरिक्त कई नेमि-राजुल सवाद, वाणी, कृष्ण और नेमि लावणिया भी विद्यमान हैं। तथा एक परिच्छेद रथनेमि और राजीमती विषयक है। ये सारी कृतिया हिंदी जैन कृष्ण काव्य के मुक्तक काव्य विधा को प्रस्तुत कर देती हैं। मैंने भरसक इनको ठीक-ठीक परखने का पूरा प्रयत्न किया है। लावणिया, बारहमासे और सवाद जैसी विधाये लोकमानस मे सास्कृतिक रूप में अधिक प्रतिष्ठित होती रही हैं। इनकी गेयता और इनकी भाव गभीरता और अनुभूति की तीव्रता उन्हे जनमानस-पटल पर अधिक प्रभाव उत्पन्न करने मे सहायक हो जाती हैं। इसमे अनुभूति की प्रामाणिकता भी इसमे चार चाद लगा देती है। मुक्तक काव्य की इस जैन विधा मे राजीमती का विरह वर्णन विप्रलभ का विषय होने पर भी वह जैन दार्शनिकता का वीतरागी तत्त्व आत्मसात करता हुआ सासारिक असारता और मोह से उबार कर उसको एक ऊची आध्यात्मिक धरातल पर ला कर बैठा देता है। यह तथ्य अत्यत मार्के का और अपने ढग का अनोखा है।

बाधाओ के कगारो पर बैठी हुई राजीमती अपने ध्येय पथ से टस से मस नही होती। यहा तक की अरिष्टनेमि का सहोदर भाई रथनेमि भी उसको नही डिगा सकता। उसके चरित्र का यह अत्यत अनमोल और उज्ज्वल पक्ष है जो उसे जैन श्रीकृष्ण साहित्य मे और वीतरागी जैन परपरा के साहित्य में सर्वोपरि स्थान देने मे हिचकिचाहट नही महसूस करेगा। यही मेरा शोध निष्कर्ष इस हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य का महत्वपूर्ण तथ्य है।

गेयता और लोकसाहित्यपरक सास्कृतिक अक्षुण्ण लोकप्रियता यह एक अन्यतम तथ्य और निष्कर्ष इस शोधाध्ययन मे मेरे हाथ आया है।

इसके बाद मैं अपने समूचे अध्ययन के तथ्यो और निष्कर्षों को लेकर एक तुलनात्मक उपसहार प्रस्तुत करने का प्रयास करने वाला हूँ। यहा पर उसको मैंने केवल सूचित मात्र कर दिया है।

९

तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एव उपसंहार

यह अतिम अध्याय है। मैंने अब तक जो अनुशीलन किया उसको अब भारतीय साहित्य की विभिन्न परपराओ के साथ श्रीकृष्ण के स्वरूप ार विहगावलोकन करते हुए उसको तुलनीय रूप मे देखकर जैन परपरा ने श्रीकृष्ण के श्रीकृष्ण-स्वरूप के तथ्यो को प्रथम प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके बाद अपने समग्र अध्यायो के निष्कर्षों और तथ्यो को प्रस्तुतकर अपने इस उपसहार को पूर्ण करूँगा। इस उपक्रम मे जो तथ्य हाथ लगे हैं उनको सामने रखकर इस क्षेत्र मे अलग से अनुशीलनप्रद क्या हो सकता है उस पर केवल इंगित करते हुए मैं इसका समापन करूगा।

भारतीय साहित्य की विभिन्न परंपराओं मे श्रीकृष्ण

वासुदेव श्रीकृष्ण भारत ही नही वरन् समस्त विश्व की महान विभूतियो मे अग्रगण्य हैं। भारतीय सस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को उनकी महत्व-पूर्ण देन रही है। धर्म, राजनीति, अध्यात्म, दर्शन, समाजशास्त्र आदि सभी श्रीकृष्ण के व्यापक शीलयुक्त व्यक्तित्व एव कृतित्व से उपकृत हैं। उनके इतने गहन और विशद प्रभाव का प्रमाण इस तथ्य से भली-भाति मिल जाता है कि साहित्य और कला का प्रत्येक क्षेत्र हमे श्रीकृष्णमय मिलता है।

श्रीकृष्ण चरित्र को देश की सभी भाषाओ के साहित्य मे महत्वपूर्ण अपनापन मिला है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिंदी आदि सभी भाषाओ मे श्रीकृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्राचुर्य के साथ मिलता है। प्रादेशिक भाषाओ मे भी श्रीकृष्ण चरित्र को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और लोक-साहित्य मे भी। साहित्य की लगभग सभी विधाओ के माध्यम से इस महान चरित को उजागर करने की सफल चेष्टाए भारतीय साहित्य के कोष को समृद्ध करने

में समर्थ रही हैं। वैदिक, जैन, बौद्ध, आदि धर्म-परपराओ ने भी अपने-अपने आदर्शों व सिद्धान्तो की व्याख्या दी और श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र का अपने-अपने ढग से उपयोग किया है, उससे श्रीकृष्ण चरित स्वय ही और अधिक व्यापक हो गया है। हिंदी साहित्य का इतिहास तो श्रीकृष्ण युक्त है ही। विशेष रूप से भक्ति काल तो श्रीकृष्ण चरित की अमूल्य निधि से धन्य ही हो उठा है। रीतिकाल घोर लौकिकता के लिए विख्यात है ही। इस काल मे भी श्रीकृष्ण को जितना अपनापन मिला है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण लोक-जीवन मे कितने घुले मिले हुए हैं और उनका चरित्र कितना अधिक लोकप्रिय है।

जैन साहित्य तो विशेषत श्रीकृष्ण चरित की दृष्टि से बडा ही समृद्ध है। एक दीर्घ-परपरा हमे जैन वाङ्मय मे ऐसी मिलती है जिसमे श्रीकृष्ण चरित को प्रतिपाद्य विषय के रूप मे स्वीकार किया गया है। जैन आगमो मे भी इस कथा को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और आगमेतर ग्रथो मे भी।

जैन परपरा मे सर्व प्रथम आगमो मे ही श्रीकृष्ण चरित वर्णित मिलता है। जैन कृष्ण साहित्य के इस प्राचीनतम रूप के अस्तित्व मे आने और इसके विकसित होने का अपना एक निराला ही ढग रहा है। वस्तुत जैन आगमो मे—अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की वाणी का सकलन है। भगवान् अपने विचारो को सामान्य जन के समक्ष लोक-प्रचलित इतिवृत्तो और आख्यायिकाओ और कथानको के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रभावी प्रयत्न किया करते थे। इस क्रम मे विभिन्न सिद्धातो की समुचित व्याख्या एव पुष्टि के प्रयोजन से उन्होने श्रीकृष्ण जीवन की विविध घटनाओं का उपयोग भी उक्त प्रयोजन से किया। स्पष्ट है कि भ० महावीर से पूर्व भी श्रीकृष्ण चरित का लोक मे किसी-न-किसी रूप मे प्रचलन रहा, तभी भगवान उसका उपयोग कर सके और उसे उन्होने उपयोग के योग्य भी समझा। योग्य से अर्थ यह कि भगवान महावीर ने अनुभव किया कि श्रीकृष्ण चरित को लोक-मानस द्वारा इतना हृदयगम किया जा चुका है कि मैं अपने सिद्धातो के प्रतिपादन एव स्पष्टीकरण के हेतु यदि इसका उपयोग करू तो मेरे प्रयोजन की सफलता मे यह एक उत्तम साधन सिद्ध हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भगवान का निर्वाण ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। इस तथ्य से यह भली-भाति विदित होता है कि कृष्ण कथा का प्रचलन अत्यत प्राचीन काल से है।

जैन श्रीकृष्ण कथा का अपना आगम

आगम ग्रथो में धर्म सिद्धातो का निरूपण हुआ है। जब जिस सिद्धांत

के प्रतिपादन में श्रीकृष्ण जीवन के जिस प्रसंग का उपयोग समीचीन समझा गया तब उसका उपयोग कर लिया गया। अस्तु, आगमों में श्रीकृष्ण जीवन के अनेकों प्रसंग सम्मिलित अवश्य हो गये हैं, किन्तु जैन श्रीकृष्ण-कथा के इस आरंभिक स्वरूप मे ये प्रसंग क्रमबद्धता के साथ प्रस्तुत नही हो पाए हैं। यहां इन प्रसंगों में न तो कार्य-कारण संबंध स्थिर हो पाता है और न पूर्वापर स्वरूप ही बन पाता है। साथ ही ये विभिन्न प्रसंग अन्यान्य विषयक कथाओं के बीच-बीच में बिखरे पड़े हैं। इन्हें एकत्र कर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप देने के प्रयासों से आगमेतर ग्रंथ अस्तित्व में आए। आगमेतर ग्रंथ भी विभिन्न विषयों और प्रयोजनों से सम्बद्ध रहे हैं। साहित्य क्षेत्र मे ज्यों-ज्यों भाषा माध्यम बदलता गया त्यों-त्यों यह कथानक युगीन भाषा में ढलता गया और जैन कृष्ण कथा संबंधी विशाल कृति-समुच्चय निर्मित हो गया।

ऐतिहासिक महापुरुष श्रीकृष्ण के जीवन चरित को निःसंदेह सभी दिशाओं से अपनाया गया है और वैदिक वाङ्मय भी इसका अपवाद नही है। वैदिक साहित्य का विपुल भाग श्रीकृष्ण संबंधी है। इन ग्रंथो से श्रीकृष्ण के स्वरूप, व्यक्तित्व, जीवन और विशिष्टताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वैदिक परंपरा के ग्रंथों का अध्ययन एक और तथ्य भी प्रकाशित करता है कि श्रीकृष्ण नामक एक ही नही एकाधिक विशिष्ट व्यक्ति रहे हैं। देवकी-वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण तो वैदिक साहित्य मे प्रतिपाद्य रहे ही हैं, किन्तु इनसे भी भिन्न इसी नाम के (श्रीकृष्ण) अन्य जन भी रहे हैं और उनकी चर्चा भी इस साहित्य मे हुई है। उन सभी श्रीकृष्णों का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा है और अपनी-अपनी विशेषताओ के निरूपण हेतु उन्हें इस साहित्य में यथोचित स्थान प्राप्त हुआ है। इन अनेक श्रीकृष्ण-स्वरूपो में से देवकीनदन श्रीकृष्ण को भिन्न करके पहचानना अपने आप में अवश्य ही एक गंभीर और महत्व पूर्ण कार्य रहा होगा। इन्ही श्रीकृष्ण (देवकीनदन) के चरित का चित्रण भी वैदिक परंपरा में अपनी मान्यताओ और दृष्टिकोणो के अनुरूप ही हुआ है। इसी प्रकार बौद्ध साहित्य में भी श्रीकृष्ण को समुचित स्थान मिला है, किन्तु बौद्ध धर्म और सिद्धातो के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व निरूपित हुआ है। बौद्ध धर्म-ग्रंथो में जातक कथाओ का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से घट जातक का संबध श्रीकृष्ण चरित से है। जैन श्रीकृष्ण चरित की अपेक्षा वैदिक श्रीकृष्ण का चरित काफी भिन्न है। बौद्ध साहित्य में उपलब्ध उनका रूप और भी भिन्न है। सभी ने इस एक चरित का उपयोग अपने ढग से व अपनी दृष्टि से किया है। परिणामत: इन सभी श्रीकृष्ण-स्वरूपो का

अध्ययन करने से इन विभिन्न धर्मों का पारस्परिक दृष्टि-भेद स्पष्ट हो जाता है।

जैन कथा साहित्य मे कृष्ण

प्रत्येक देश, जाति और धर्म के साहित्य मे कथाओ का बडा जनप्रिय स्थान रहा है। लोक साहित्य मे भी कहानियो का बडा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कुतूहल और जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण कथाए श्रोता का मन आकर्षित करने मे अत्यन्त सफल रही हैं। और, अंत तक अपने साथ उन्हें जोड कर रखने की क्षमता भी रखती हैं। कोरे उपदेश शुष्क व नीरस हो जाते हैं। सर्वसाधारण उनके प्रति आकर्षित नही हो पाता। इसी कारण उपदेशो का लाभ उन तक पहुच नही पाता। जब उपदिष्ट कथ्य कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो रुचिकर हो जाता है और लक्षित व्यक्तियो तक सुगमता से पहुच जाता है। धार्मिक नेता अनुयायियो मे ऐसी कथाओ के माध्यम से अपेक्षित परिवर्तन लाने मे अन्य मार्गों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं। कथा-कहानियो मे किसी सिद्धात का कोरा दर्शन न होकर दृष्टात रूप मे व्यावहारिक रूप से घटित घटना का रूप होता है, अत वह सिद्धांत सजीव, सहज और अधिक विश्वसनीय हो उठता है और प्रभावशाली ढग से परिवर्तन उपस्थित कर देता है।

जैन वाङ्मय मे भी कथा साहित्य के इस अद्भुत चमत्कारपूर्ण प्रभाव के कारण इसे असाधारण प्रश्रय मिला है। केवल तात्त्विक विवेचन, दार्शनिक विचार और धार्मिक क्रियाओ को ही जैन साहित्य का प्रतिपाद्य समझने वाले भ्रम मे है। यथार्थ मे उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण, रोचक तथा लोकप्रिय अश तो कथा साहित्य का ही है। वस्तुत जैन कथा स हित्य का एक विशाल भण्डार है। जैन कथाए विभिन्न भाषाओ मे विभिन्न शैलियों और रूपो मे मिलती हैं। जैन कथाओ मे लोक कथाए भी हैं तो नैतिक आख्यायिकाए भी हैं, साहसिक कहानिया भी हैं तो पशुपक्षियो की और देवी देवताओ की कहानिया भी हैं। मुक्तक रूप मे स्वतत्र कहानिया भी मिलती हैं और कहानियो के समुच्चय भी मिलते हैं जिन्हे शृखालाबद्ध कर विशद कथानक का रूप दिया गया है।

जैन कथाओ के कथानक कल्पना पर आधारित भी हैं तो इतिहास पुराणादि पर भी आधारित हैं। महाभारत, श्रीमद् भागवत आदि प्रतिष्ठित जैनेतर ग्रथो का आश्रय भी निस्सकोच भाव के साथ ग्रहण किया गया है। इस प्रकार कथानक चाहे इतिहास-पुराणो से ग्रहण किए गए हो और चाहे

वे कल्पना प्रसूत हो, जैन कथा साहित्य की एक शाश्वत विशेषता यह रही है कि वे विशुद्ध भारतीय धरातल पर अवस्थित हैं। उस पर भारतीय संस्कृति का आच्छादन रहा है तथा उसके द्वारा प्रतिपादित आदर्श सदा भारतीयता की गरिमा से संपन्न रहा है।

जैन कथाकारों का तंत्र

जैन कथाकर अपने कथ्य के विषय में सदा मुक्त और स्वाधीन रहा है। उसके मानस मे किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नही होता। इस दृष्टि से बौद्ध कथाओं और जैन कथाओं में एक अतर अत्यत स्पष्ट रूप मे उद्घाटित हो जाता है। बौद्ध कथाओं को केवल साधन का रूप ही दिया गया है, जिनके माध्यम से धार्मिक सिद्धांतों का विवेचन ही उनका परम लक्ष्य होता है। यह विवेचन ही उनका प्रमुख रहा है और कथा गौण ही गयी है। जैन कथाओ मे कथा को प्रमुख, साध्य का स्वरूप मिला है। कथाकारों के लिए कथा का वस्तुपरक स्थान रहा है। वह तो अपने पात्रों, घात-प्रतिघातादि परिस्थितियो में रमकर कहानी कहता चलता है। इस दौरान उसका चित्त कथानक के बाहर किसी ऐसे तथ्य के पीछे नहीं भटकता है जिसको अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट करने मात्र के लिए कहानी कहने का वहाना भर किया गया हो। कथा-कथन ही उसका लक्ष्य है जो किसी सिद्धात के प्रतिपादन हेतु प्रतिबद्ध नही है। यही कारण है कि कहानी मे किसी अन्य उद्देश्य की गध न पाकर उसके प्रति पाठक भी समग्रता के साथ रुचिशील हो उठता है। कथा स्वरूप का निर्वाह भी इसी विशेषता के कारण भली-भाति सम्भव हो सका है।

जैन कथाए होने से, जैनत्व का रग उन पर न चढे तो साधारण अन्य कहानी न होकर इन्हे जैन कथाओ की सज्ञा क्यो कर दी जा सकती थी? इन पर जैन दर्शन का हल्का सा पुट रहता अवश्य है किंतु उल्लेखनीय यह है कि वह पुट न तो इतना गाढ़ा चढाया जाता है कि इस मे निरे धर्म प्रचार का स्वरूप बढकर कथा स्वरूप को समाप्त कर दे। प्राय किया यह गया है कि कहानी तो अपनी समस्त स्वच्छदता के साथ चलती रही है अथ से इति तक, केवल सबधित जैन दर्शन का सकेत मात्र उनमे भर दिया गया है। इन्हे कथा के माध्यम से पुण्य के सुफल और दुष्कर्म के दुष्परिणामो को स्पष्ट कर दिया गया है। इससे यह इगित स्पष्ट मिल जाता है कि प्रस्तुत कथा जैन धर्म या जैन दर्शन के अमुक सिद्धात के दृष्टान्त रूप मे कथित है। दृष्टात और इन जैन कथाओ मे अतर यह आभासित हो जाता है कि दृष्टात मे

पोषित सिद्धात का कथन पूर्व में ही हो जाता है और सिद्धात के तात्त्विक एव स्पष्ट विवेचना के लिए एक छोटी-मोटी कथा भी कह दी जाती है। इस क्रम में कथा की स्वतत्रता का निर्वाह नही हो पाता। इधर जैन कथा ही प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेती है। अत: निष्कर्षत ही किसी नैतिक सिद्धात की पुष्टि हो गयी हो—ऐसा प्रतिभासित भर कर दिया गया है। इस प्रकार अप्रतिबद्ध रूप मे जैन कथाए जन साधारण के साथ स्वस्थ मनोरंजन कराने मे भी समर्थ रही हैं।

कथाकार की सफलता

इस अप्रतिबद्धता के कारण एक सुपरिणाम और भी बन गया है जो बडा ही महत्वपूर्ण है। अपनी इस स्वच्छदता के कारण कथाकार प्रत्येक प्रकार की मानसिता को ग्रहण करने मे सफल रहा है, जीवन की दशाए और भावनात्मक परिस्थितियों को कथाओ मे अपनापन मिला है। फलत कथा साहित्य का दायरा फैलकर बडा व्यापक हो गया और वह जीवन के अत-रिक्ष को स्पर्श करने लगा। जैन कथा साहित्य, जीवन और समाज का दर्पण बन गया है। अपनी इस व्यापक-परता के कारण जैन कथा साहित्य सर्व सामान्य की रुचि का विषय बन गया। यही तो इस कथा साहित्य की प्रक्रिया है। मनोरजन के लक्ष्य से जन-मन को आकर्षित कर बडे ही सहज और सरस ढग से किसी न किसी तात्त्विक या दार्शनिक सिद्धात को सुगम बना कर इस मे प्रस्तुत कर दिया जाता है। कथा का आश्रय पाकर यह सम्प्रेषण सुगम और प्रभावपूर्ण हो जाता है।

इनकी लोकप्रियता

जैन कथाए लोकप्रियता की कसौटी पर उच्चतम रीति से खरी उतरी हैं। न केवल सारे राष्ट्र की रुचि इस ओर जागृत हुयी है, अपितु अतर्राष्ट्रीय रुचि भी इस कथा साहित्य के प्रति विकसित हुई है। योरोप के अनेक प्राच्यविदो ने जैन कथा साहित्य के प्रति आतरिक आकर्षण व्यक्त करते हुए गहन गवेषणा का कार्य किया है। ऐसे विद्वानो मे टाने, हर्टल, बूलर, ल्यूमेन, तेस्सितोरी, जेकोबी आदि के नाम सम्मान के साथ लिए जाते हैं। यह भारतीय जैन साहित्य राष्ट्रीय सीमा लाघ कर विदेशो तक भी पहुच गया है। इन तथ्यो से इस मान्यता की पुष्टि हो जाती है कि जैन कथाए जहा एक ओर प्रबल जन रुचि से युक्त है, वहा दूसरी ओर उनमे जैन-धार्मिकता का सश्लेषण प्रगाढता के साथ नही है। उनका अपना स्वतंत्र

साहित्यिक स्वरूप है, अन्यथा अन्य धार्मिक साहित्य मे वे घुल-मिलकर एकाकार कदापि नही हो पाती।

हमारा जैन कथा साहित्य इस दृष्टि से एक विराट धरातल पर अवस्थित है। वह अखिल भारतीय सस्कृति सापेक्ष्य है। किसी प्रकार का सांस्कृतिक सकोच इसमे दृष्टिगोचर नही होता। यही कारण है कि इस कथा-साहित्य का सार्वदेशिक एव सार्वकालिक अक्षुण्ण महत्व है। जैन कथाओ मे जीवन का बडा ही प्रभाव पूर्ण चित्र मिलता है।

वैदिक परपरा और जैन परंपरा मे श्रीकृष्ण कथा का तुलनात्मक विवेचन

वासुदेव श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण वासुदेव

जैन एव वैदिक परपराओ मे श्रीकृष्ण के जीवन वृत्त के स्वरूप पर्याप्त रूप से समरूप हैं, क्योकि दोनो ही के लिए उद्गम स्रोत इतिहास ही है। यह अन्य बिंदु है कि दोनो परपराओ मे उस एक ही ऐतिहासिक वृत्त को प्रस्तुत करने के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं, अत स्वरूप वैभिन्न भी आ गया है। इस दृष्टि से एक प्रमुख असमानता यह पायी जाती है कि यद्यपि दोनो ही परपराओ मे श्रीकृष्ण वासुदेव के पुत्र हैं, किंतु जहा वैदिक परपरा मे वे वासुदेव श्रीकृष्ण हैं, वहा जैन परपरा मे वे "श्रीकृष्ण वासुदेव" हैं। सामान्यत इन दोनो मे चाहे अतर नही किया जाए और दोनो का प्रयोग किसी स्थल के लिए हो सकने के योग्य प्रतीत होता है। फिर भी दोनो में मौलिक अतर हैं। वैदिक परपरा में "वासुदेव श्रीकृष्ण" का तात्पर्य मात्र यही है—वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और इस रूप मे समग्र इतिहास मे श्रीकृष्ण ही एक मात्र पात्र हैं। यद्यपि वसुदेव के अन्य अनेक पुत्र थे। बलराम भी उन्ही के पुत्र थे, किंतु वे वासुदेव के अपर नाम का वहन नही करते। "वासुदेव" शब्द श्री कृष्ण के पर्यायवाची रूप मे ही रूढ और सीमित हो गया है। "वासुदेव" शब्द के प्रयोग से अकेले श्रीकृष्ण का ही परिचय प्राप्त होता है, किसी अन्य वासुदेव पुत्र का नही।

इसके विपरीत जैन परंपरा मे जब श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा जाता है तो इसका प्रयोजन यह है कि वे एक वासुदेव थे। यहा "वासुदेव" का अर्थ वसुदेव-पुत्र कदापि नही हैं। वासुदेव तो एक श्रेणी या वर्ग है। इस दृष्टि से वासुदेव एकाधिक हो—इसमे कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती।

नियति का काल चक्र

जैन परपरा मे कालचक्र की एक समग्र व्यवस्था है। काल अपने प्रवाह के साथ-साथ सदा परिवर्तनशील रहता है, । कभी धार्मिक प्रवृत्ति एव

सदादर्शों का उत्थान होता चलता है और कभी उसके चरम पर पहुंचकर समय अधोमुखी होने लगता है। जैसे घड़ी की सुईया ६ से १२ के अंको तक निरतर उच्च से उच्चतर होती रहती हैं और तत्पश्चात् १२ से ६ तक की यात्रा मे वे निम्न से निम्नतर दिशा में गमन करने लगती हैं। तात्पर्य यही है कि पतन से उन्नति की ओर और उन्नति से अपकर्ष की ओर की यह गति जगत की नियति है जो सदा निरंतरित रहा करती है। धर्मभावना भी क्रमशः विकसित होती रहती है और पुनः सकुचित होने लगती है। विकास और ह्रास की यह अवस्था सर्पवत् कही जाती है। सर्प की पूछ से फन की ओर आकार उत्तरोत्तर विकास का प्रतीक माना जा सकता है, और फन से पूछ की ओर क्रमशः ह्रास की ओर। प्रथम स्थिति को उत्सर्पिणी काल और द्वितीय को अवसर्पिणी काल कहा जाता है। उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद पुन उत्सर्पिणी काल का यह अजस्र क्रम असमाप्य माना जाता है। घडी की सुईया भी तो ६ से १२ तक चढ़कर १२ से ६ तक नीचे उतरती रहती हैं और पुन ६ से १२ तक की उत्कर्ष यात्रा आरम्भ कर देती हैं। सुईयो की ये दोनो यात्राओ को जैसे ६-६ भागो मे बाटा गया है, वैसे ही प्रत्येक उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल भी ६-६ खण्डो में विभक्त होता है। प्रत्येक खड को "आरा" कहा जाता है। इन आरो की अवधि समान नही होती है कोई छोटा और कोई बडा होता है।

इस प्रकार एक काल चक्र में एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल रहता हैं और कुल १२ अरक होते हैं। प्रत्येक काल चक्र के तीसरे और चौथे अरक में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान समय में जो धर्म भावना का अपकर्ष ओर क्षीणता दृष्टिगत होती है, इससे भी यही तथ्य सकेतित होता है कि यह अवसर्पिणी काल है। इस अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकरों की परंपरा समाप्त हो गयी। २४वे तीर्थंकार भगवान महावीर हुए हैं और अभी यह ५वा आरा है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में एक-एक तीर्थंकर-परपरा (२४ तीर्थंकर) रहती है। इसी प्रकार प्रत्येक काल में १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक काल में ६३ श्लाघनीय महापुरुष होते हैं। "त्रिषष्टिशलाका-महापुरुष" में इस अव-सर्पिणी काल के इन्ही ६३ श्लाघनीय पुरुषो के चरित वर्णित हैं। भगवान अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी काल के २२वे तीर्थंकार हुए हैं। इन्ही के काल में ९वें वासुदेव श्री कृष्ण, ९वें प्रति वासुदेव जरासध और ९वें बलदेव बलराम हुए हैं।

श्रीकृष्ण एवं वासुदेव हैं :

वासुदेवों को तीर्थंकरो की भांति एक परपरा होती है और श्रीकृष्ण इस परपरा के ६ वासुदेवो मे से एक है। वासुदेव इस प्रकार एक वर्ग, एक परपरा, एक श्रेणी है, एक उपाधि है। जैन परंपरा में वासुदेव का अर्थ वासुदेव पुत्र कदापि नहीं है। निश्चित विधान है कि वासुदेव के हाथो प्रति-वासुदेव का पराभव होता है और बलदेव वासुदेव का सहायक होता है। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र के अतिरिक्त स्थानाग, समवायाग, आवश्यक निर्युक्ति आदि मे इन सभी ६३ महापुरुषो के विस्तृत परिचय के अतर्गत उनके माता-पिता के नाम, उनके शारीरिक आकार, आयुष्यादि के विषय मे विवरण मिलता है। यथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष और स्थानाग-समवायाग के अनुसार बलदेव और वासुदेव वंश मडन-सदृश थे, वे उत्तम थे, प्रधान थे। वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली तथा शोभित शरीर वाले थे। वे कात, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप, और सुखशील थे। उनके पास प्रत्येक व्यक्ति सुख रूप से पहुच सकता है। सभी लोग उनके दर्शन के पिपासु हैं। वे महाबली हैं। वे अप्रतिहत और अपराजित हैं। शत्रु का मर्दन करने वाले और हजारो शत्रुओ का मान नष्ट करने वाले हैं। दयालु, अमत्सरी, अचपल और अचण्ड हैं। मृदु, मजुल और मुस्कराते हुए वार्तालाप करने वाले हैं। उनकी वाणी गभीर मधुर और सत्य होती है। वे वात्सल्य युक्त होते हैं, और शरण योग्य होते हैं। उनके शरीर लक्षण और चिन्ह युक्त हैं तथा सर्वांग सुन्दर होता है। वे चद्र के समान शीतल और ईर्ष्या रहित हैं। प्रकाण्ड दण्ड नीति वाले हैं। गभीर दर्शन वाले हैं। बलदेव के ताल ध्वज और वासुदेव के गरुड ध्वज हैं। वे महान धनुष्य का टकार करने वाले हैं। वे महान बल मे समुद्र की तरह हैं। रणाग मे वे दुर्धर धनुर्धर हैं। वे वीरधीर पुरुष हैं और युद्ध मे कीर्ति प्राप्त करने वाले हैं। वे महान कुल मे पैदा हुए हैं और वज्र के भी टुकडे कर दें—ऐसे बलवान हैं। वे सौम्य हैं, राजवश के तिलक के समान हैं, अजित हैं, अजितरथ हैं। बलदेव हाथ मे हल रखते हैं, और वासुदेव शख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते हैं। उनके मुकुट मे श्रेष्ठ, उज्ज्वल, विमल कौस्तुभ मणि होती है, कान मे कुण्डल होते हैं जिससे उनका मुख शोभायमान होता है। उनको आखें कमलसदृश होती हैं, उनकी छाती पर एकावली हार लटका रहता है। उनके श्रीवत्स का लाछन है। उनके अगोपाग में ८०० प्रशस्त चिन्ह शोभित होते हैं। क्रोच पक्षी के मधुर और गभीर शारद स्वर जैसा उनका निनाद है। बलदेव नीले रग के और वसुदेव पीले रग के वस्त्र पहनते हैं। वे तेजस्वी, नरसिंह,

नरपति, नरेंद्र हैं। वे नर-वृषभ हैं और देवराज इंद्र के समान हैं। राजलक्ष्मी से शोभित वे राम और केशव दोनो भाई होते हैं।

इस प्रकार के श्रीकृष्ण जैन परंपरा में अकेले श्रीकृष्ण तो हैं किंतु वे और केवल—वे ही वासुदेव नही हैं। श्रीकृष्ण तो ६ वासुदेवो मे से एक हैं। वासुदेव की जो सामान्य भूमिका है, उससे श्रीकृष्ण का जैन परंपरा में जो स्थान है, जो व्यक्तित्व है वह भली-भाति स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक वासुदेव की भाति श्रीकृष्ण भी त्रिखडाधिपति हैं। उनका तीनों खण्डो पर एकछत्र आधिपत्य है। वासुदेव पद निदान-कृत होता है।

प्रत्येक वासुदेव के पूर्व प्रतिवासुदेव होता है। उसका भी तीन खण्डों पर आधिपत्य होता है। जीवन के अंतिम भाग में वह अधिकार के मद में उन्मत्त रहने लगता है और अन्यायी व अत्याचारी हो जाता है। अत्याचार को समाप्त करने के लिए वासुदेव प्रतिवासुदेव के साथ युद्ध करते हैं और उनसे प्रतिवासुदेव पराजित हो जाता है। वासुदेव के हाथो प्रतिवासुदेव का सहार होता है। प्रतिवासुदेव का हनन स्वचक्र से ही हो जाता है। प्रतिवासुदेव के त्रिखंड साम्राज्य का सपूर्ण अधिकार वासुदेव को प्राप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण वासुदेव और जरासन्ध प्रतिवासुदेव के प्रसंग ऐसे ही घटित हुए हैं। वासुदेव महान वीर और अपराजेय होते हैं। वे ३६ युद्ध करते हैं और कभी किसी भी युद्ध में उनका पराभव नही होता। उनमे ३० लाख अष्टापदो की शक्ति होती है किंतु वे कभी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नही करते। वासुदेव बलशाली तो होते हैं, किंतु वे उपास्य नही होते। तीर्थंकर ही उपास्य होते है और वासुदेव भी उनकी उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण वासुदेव भी तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के परम श्रध्दालु भक्त थे। वासुदेव भौतिक दृष्टि से अपने युग के सर्व श्रेष्ठ अधिनायक होते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र मे वे निदान-कृत होने के कारण चौथे गुणस्थान से आगे नही बढ पाते। जैन परपरा मे तीर्थंकरत्व सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि मान्य रही है। श्रीकृष्ण वासुदेव रहे हैं और वासुदेव इस स्थिति तक नही पहुचते। जैन धर्म में तीर्थंकर ही धर्म-प्रणेता, प्रवर्तक एव तीर्थंकर ही उपास्य और आराध्य होते हैं।

श्रीकृष्ण का अवतारत्व और वासुदेवत्व

इसके विपरीत वैदिक परंपरा मे श्रीकृष्ण आराध्य हैं, उपास्य हैं, वे भागवत धर्म के प्रवर्तक हैं। पाणिनि के आधार पर यह भी स्थिर किया

जाता है कि ईसा पूर्व ७वी शती में वासुदेव की पूजा प्रचलित थी ।[1] भागवत धर्म के मूल प्रवर्तक नारायण थे किंतु कालांतर में नारायण और वासुदेव को अभिन्न माना जाने लगा। महाभारत मे एक स्थल पर उल्लेख किया गया है कि सात्वत धर्म या भागवत धर्म का उपदेश सर्वप्रथम वासुदेव श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया ।[2] इससे स्पष्ट होता है कि भागवत धर्म प्रवर्तक श्रीकृष्ण और वासुदेव एक ही हैं, ये दोनों एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं।

हां, भाण्डारकर ने अवश्य ही यह मान्यता दी है कि ये दोनो पृथक्-पृथक् व्यक्ति रहे, जो आगे चलकर एक दूसरे के रूप मे देखे-जाने लग गये। उनकी मान्यता तो यह भी है कि भागवत धर्म मे स्वीकृत श्रीकृष्ण की विविधता को लिया हुआ जो स्वरूप है, वह किसी एक ही व्यक्ति का नहीं अपितु श्रीकृष्ण नामधारी एकाधिक व्यक्तियो के गुणों का सम्मिलित रूप हैं, किंतु इस मत में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। श्रीकृष्ण एक ही है और उन्ही का व्यक्तित्व भागवत में चित्रित हुआ है। इस प्रसग पर "गीता रहस्य" मे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भी अपना निष्कर्ष इस प्रकार प्रकट किया है—"हमारे मत में श्रीकृष्ण चार-पाच नही हुए, वे केवल एक ही ऐतिहासिक महापुरुष थे।[3] भाडारकर की इस धारणा पीछे तिलक ने कल्पना तत्त्व का आधार ही माना है, कोई ठोस और प्रामाणिक आधार नही।

इतना निश्चित हो गया है कि वैदिक परपरा मे नारायण द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म का प्रतिपादन करने वाले श्रीकृष्ण और वासुदेव दो भिन्न व्यक्ति नही अपितु वे एक ही एव अभिन्न हैं। नारायण अथवा विष्णु के अवतार ही वासुदेव कृष्ण हैं। ये ही श्रीकृष्ण नारायण या विष्णु के अवतार रूप मे पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए। भागवत धर्म को लोक-जीवन के अधिक निकट लाने की आवश्यकता के कारण ही इस अवतारवाद का अस्तित्व बना। धर्म के कोरे दर्शन के रूप से निकालकर जन आस्था का विषय बनाना आवश्यक था और ब्रह्म के निराकार रूप को आकार देना अनिवार्य समझा जाने लगा था। इसके लिए परिचय-सामीप्य की

---

१ डा, भाण्डारकर (वैष्णविज़्म एण्ड शैविज्म) तथा हेमचद्रराय चौधरी (अर्लि हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट) ने पाणिनी के इस सूत्र को तदर्थ आधार माना है— वासुदेवार्ज्जुनाभ्या वुन्

२ महाभारत शान्तिपर्व

३. गीतारहस्य : लोकमान्य बाल गगाधर तिलक।

अनिवार्यता को देखते हुए अवतारवाद सहायक सिद्ध होने लगा। आचार्य नददुलारे वाजपेयी[4] ने भी "महाकवि सूरदास में इसी तर्क को अवतारवाद के आधार रूप में मान्यता दी है। रामायण काल तक इस अवतारवाद को प्रतिष्ठा मिलने लगी थी।

अवतारवाद

'ब्रह्म का अवतार मानव धर्म के रक्षणार्थ, दुष्टो के दलनार्थ एव भक्तो के रजनार्थ होता है' ऐसा स्वीकार किया जाने लगा और अवतारवाद का विकास होने लगा। स्वयं गीता के अनुसार ही ईश्वर अजर और अमर है, और अपनी इस अंतहीनता को माया से संकुचित कर वह शरीर धारण कर लोक में अवतरित होता है। ईश्वर का इस प्रकार मानव रूप में अवतरित होना, मानव शरीर धारण कर जन्म लेना ही अवतार की परिकल्पना का बुनियादी और सीधा-सादा तात्पर्य है। मनुष्य तो कभी ईश्वर नही बन सकता, किंतु ईश्वर अवश्य ही मनुष्य बन सकता है। और, इस अवतरण का प्रयोजन जगत मे व्याप्त अधर्मान्धिकार का विनाशन धर्म लोक का प्रसारण करना है। साधुओ की रक्षा करना और दुष्टो का विनाश कर धर्म की पुन. स्थापना करना अवतारवाद की भूमिका है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थान-मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे॥[5]

पृथ्वी के दु.ख से दुःखी होकर देवताओं और ब्रह्मा जी ने पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना भगवान विष्णु से की। भगवान विष्णु ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और पृथ्वी पर मानव रूप मे जन्मे। राक्षसो का नाश करने के लिए भगवान विष्णु ने देवकी-वासुदेव के यहा भी कृष्ण रूप में जन्म लिया। महाभारत के आदिपर्व ६३/९८ के इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि वैदिक परपरा मे श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। लोक-सग्रह एव लोक-रंजन के रूप के लिए विष्णु ने श्रीकृष्ण रूप मे शरीर धारण किया और श्रीकृष्ण व्यापक लोकमगल के लक्ष्य की पूर्ति ही करते रहे।[6]

---

४ महाकवि सूरदास—आचार्य नद दुलारे वाजपेयी।

५ श्रीमद् भगवद् गीता।

६ महाभारत—आदि पर्व ६३/९८।

जैन परंपरा मे उत्तारवाद

इसके विपरीत जैन परपरा में श्रीकृष्ण को वासुदेव रूप में माना गया है। उसमें उनके अवतार होने की मान्यता प्राप्त नही है। वस्तुस्थिति यह है कि जैन अवतारवाद को ही स्वीकार नही करता। तीर्थंकर को भी अवतार नही माना गया है। जैन दर्शन में तो मनुष्य ही सर्वोपरि महत्ता सपन्न है। वही संमार्गानुसरण से शीर्षस्थ स्थान पर पहुच जाता है। ईश्वर जैसी परिकल्पना भी जैन-चिंतन का विषय कभी नही रही। मानव सत्ता से ऊपर किसी का अस्तित्व स्वीकार्य नही समझा गया है। ऐसी स्थिति में जैन-विश्वास अवतारवाद के पक्ष में नही अपितु उत्तारवाद के पक्ष मे है। ईश्वर की स्थिति तो निर्विकार है। अवतार लेकर उसे विकारो की ओर अग्रसर होना पडता है। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति को चुनना पडता है। पुण्य और पाप में उसे पुण्य का मार्ग अपनाना होता है।

यह महानता उसकी आंतरिक शक्तियों का विकास है

इसके विपरीत जैन-परंपरा उत्कर्ष की परपरा होने से जैन साधक विकार से निर्विकार की ओर, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर और आसक्ति से विरक्ति की ओर यात्रा करता है। यह पवित्र यात्रा है, इसी को जैन परंपरा मे उत्तार कहते है। इस उत्तार में मानव नीचे से ऊपर की ओर जाता है। वैदिक परंपरा मे ईश्वर ऊपर से नीचे की ओर जाता है, तो जैन परपरा में इसका ठीक उल्टा है। जैन परपरा मनुष्य को विकृति से संस्कृति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। यही नही सस्कृति से भी प्रकृति की ओर बढ़ाती है। मनुष्य जन्म और स्वभाव से ही राग-द्वेष-ग्रस्त प्राणी होता है। इस विकृति से क्रमश मुक्त होकर वही विकारहीन अनासक्त और निर्लिप्त रूप ग्रहण कर लेता है। यह सस्कृति का विकास है। पूर्ण रूप से कर्म-मुक्त होकर वह शुद्ध सिद्ध अवस्था ग्रहण कर लेता है। यही तो प्रकृति है। यह सिद्धावस्था वह दशा है जिसमे वह अनतकाल के लिए अनत ज्ञान, अनत दर्शन अनत सुख और अनत शक्ति मे लीन हो जाता है। जैन धर्म इसी परमावस्था की प्रेरणा सामान्य जन को देता है, उसे इस हेतु मार्ग और साधन सुझाता है और मार्ग पर गतिमान होने की शक्ति भी देता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य चाहे कितना ही विषय-वासना मे लिप्त हो वह उच्चतम स्थिति मे पहुचने की क्षमता रखता है। तीर्थंकर गण जो महानतम पुरुषो की गणना मे आते हैं, वे भी आरभिक जीवन मे अतिसाधारण से सासारिक मनुष्य रहे। उनका उत्तार हुआ। तीर्थंकरो को ईश्वर का अव-

तार नही माना जाता। उनकी महानता, उनकी साधना की उपलब्धि उनकी अर्जित सपदा है। अवतारो की भाति बिना उपक्रम के ईश्वर से वह उनमें उतर आयी हो—ऐसा नही है। यह महानता मनुष्य के आतरिक शक्तियो के विकास का परिणाम है, वह किसी की अनुकंपा का नही। अत तीर्थंकर की महानता आत्माधारित है। 'मनुष्य स्वय ही अपना कल्याण कर सकता है' यह सदेश देने वाली जैन परपरा किसी भी स्थिति में अवतारवाद की समर्थक नही हो सकती। वह मनुष्य को अपने कल्याण के लिए किसी अवतार पर आश्रित रहने के भ्रम मे ग्रस्त नही करती।

जैन परपरा मे श्रीकृष्ण को अवतार मानने का कोई प्रश्न ही नही उठता। वे शक्तिशाली हैं, शीलवान हैं, सुन्दर हैं, दुष्कर्मियो के सहारक और सज्जनो के त्राता भी हैं। त्रिखण्डेश्वर और गरिमामय हैं किंतु हैं वे मनुष्य। ईश्वर के अश रूप में भी श्रीकृष्ण को जैन परपरा ने स्वीकार नहीं किया है। इस रूप में उनके किसी दिव्य और अलौकिक व्यवहार को भी मान्य नही किया गया है। वैदिक और जैन परपरा मे श्रीकृष्ण के स्वरूप संबधी यह असमानता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक परपरा मे जहा वे अवतार हैं वहा जैन परंपरानुसार वे श्लाघनीय पुरुष, मनुष्य मात्र हैं। उनमे कोई अलौकिकता या दिव्यता नही। उनका उत्कर्ष इतना ही है, जितना मानव-सुलभ स्वाभाविक और आत्मप्रयास-जन्य रूप मे प्रत्येक मनुष्य के लिए सभव है। वे अपने समय के वासुदेव थे—बस इतना ही। जैन श्रीकृष्ण कथा का उपयोग जैन दर्शनो व मतों के साधन के रूप मे जैन साहित्यकारो ने अपनाया जो पर्याप्त रूप से सफल रहा। जैन श्रीकृष्ण कथा द्वारा जैन धर्म के मूल तत्त्वो और आदर्शों का अनुमोदन और पुष्टि हो सके इसीलिए उसे इस रूप मे ढालना आवश्यक था। कम-से-कम उसका विपरीत रूप तो श्रीकृष्ण कथा मे ग्राह्य हो ही नही सकता था। जैन धर्म के आदर्शानुरूप ही श्रीकृष्ण को जैन कथा मे अवतार नही स्वीकार किया गया है। जैन कथाओ के माध्यम से श्रीकृष्ण का जो स्वरूप उभरता है वह अवतारी पुरुष का न होकर पराक्रमी और शक्तिशाली राजा का रूप है। वे द्वारका सहित समस्त दक्षिण भारत के भूपति थे, एक मात्र अधिपति थे, राजाओ मे सर्वाग्र पूज्य थे। पृथ्वी पर वे देवराज इन्द्र की भाति सुशोभित थे। वे कस, शिशुपाल, जरासध जैसे शक्तिशाली किंतु अन्यायी और अनाचारी शासको के सहारक और अत्यधिक धर्मानुरागी थे। ईश्वर के अवतार नही थे। जैन परपरा मे उनका वासुदेवत्व ही प्रतिष्ठित हुआ है।

श्रीकृष्ण चरित के विभिन्न रूप : तुलनात्मक विवेचन

साहित्यकार प्रछन्न दार्शनिक और चिंतक हुआ करता है। वह अपने आसपास के जगत और जीवन को सूक्ष्मता के साथ देखता-समझता और प्रख्यात करता है। यदि चिंतनशीलता को सचेतनता का एक प्रमुख लक्षण माना जाए तो इस दृष्टि से साहित्यकार को सर्वाधिक चैतन्य युक्त मानना अयुक्ति-युक्त नही होगा। वह जिन परिस्थितियो मे स्वयं जीता और अन्य का जीवन यापन देखता है तो उनसे कुछ अनुभूतिया बटोरता चलता है। इनके सग्रह की प्रवृत्ति उसके स्वभाव का एक सहज अग बन जाती है। इसके समानातर ही उसकी एक दुर्निवार्य प्रवृत्ति और हो जाती है, जिसका सवध इन बटोरी हुई अनुभूतियो की अभिव्यक्ति से है। उसका मन तब तक एक विशिष्ट उद्विग्नता की स्थिति मे रहता है, जब तक वह अपने अनुभूत तथ्य को व्यक्त कर अन्य जन के मानस तक नही पहुचा देता। इस सवेदन-शील अभिव्यक्ति को ही कोई अग्राह्य मानकर उपेक्षित रख दे—तो इसकी उसे साहित्यकार को सर्वथा स्वतंत्रता है। यही नही, अपने उद्देश्य की पूर्ति के पक्ष में यदि कथानक मे यत्किंचित् परिवर्तन भी नितात आवश्यक माने तो रचनाकार के नाते वह ऐसा कर मकता है और करता भी आया है। वह इतिहासकार नही है और उसे इतिहासकार के रूप मे देखने-परखने एव उसकी रचना मे ऐतिहासिक प्रामाणिकता की खोज करने के प्रयत्न भी समीचीन नही कहे जा सकते। इतिहास के स्थान पर इतिहास है और साहित्य के स्थान पर साहित्य—यह विचार ही युक्तियुक्त कहा जा सकता है।

अस्तु, पौराणिक एव ऐतिहासिक कथानक पर आधारित रचनाए युग की आवश्यकताओ के अनुरूप न्यूनाधिक रूप मे इतिहास-भिन्न हो सकती हैं। इतिहासानुमोदन उनके लिए अनिवार्य शर्त नही होती। यही कारण है कि पौराणिक और ऐतिहासिक कथानको पर आधारित रचनाए भिन्न-भिन्न युगो मे भिन्न-भिन्न रूपो मे मिलती हैं। क्योकि, उस युग की अपेक्षाए और माग अन्य युग से भिन्न होती हैं। यही क्यो, किसी एक ही युग की दो रचनाओ मे भी किसी एक ही ऐतिहासिक कथानक के भिन्न रूप हो सकते हैं। कारण यह है कि प्रत्येक रचनाकार अपने पृथक् उद्देश्य की पूर्ति के पक्ष मे किसी एक ही कथानक का प्रयोग करता है। ऐसी स्थिति मे एक रचनाकार एक प्रकार का परिवर्तन कर देता है तो दूसरा रचनाकार अन्य प्रकार का। दोनो मौलिक कथानक से भी भिन्न हो जाते हैं और परस्पर भिन्न भी।

श्रीकृष्ण चरित भारतीय वाड्मय का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष रहा है प्रत्येक युग, प्रत्येक भाषा और प्रत्येक सास्कृतिक धारा में श्रीकृष्ण साहित्य को अपनत्व मिला है। लोक-जीवन, लोक-सस्कृति एव लोक-साहित्य भी श्रीकृष्णमय रहा है। जैन साहित्य भी इसका अपवाद कैसे हो सकता है? श्रीकृष्ण जीवन को जैन साहित्यकारों ने भी अपनाया और जैन साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि भी हुई।

निश्चय ही साहित्य इतिहास नही हो सकता, दोनो के कार्य क्षेत्र ही भिन्न-भिन्न हैं। साहित्य अपने कार्य क्षेत्र—"वर्तमान" मे ही रमे रहने के लिए है। वह सदा सजीव, सामयिक और आज के जीवन को उन्नत करने वाला होगा। उसे बीते काल की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नही मिलता। आज को सवारने के लिए अपने लक्ष्य में उसे कल का भी कोई रग उपयुक्त लगता है तो वह उसे प्रयुक्त कर लेता है। मात्र कथानक ही ऐतिहासिक होता है, कथ्य नही। वह जो कुछ कहता है—वह आज की बात है, जिसे कल की बात के ब्याज से कह दिया है।

इस दृष्टि से ऐतिहासिक घटना का यथावत् वर्णन करने को साहित्यकार प्रतिबद्ध नही होता। अक्षरश अविकल रूप मे ऐतिहासिक वृत्तात का प्रस्तुतीकरण साहित्यकार के लिए आवश्यक नही होता। वह जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक कथानक का आश्रय ले रहा है उस निमित्त जितना भाग आवश्यक है, उतना वह अपना लेता है और कथानक के शेष भाग को छोड देता है। जैन साहित्यकारो ने भी यही किया।

इस कोटि की साहित्यिक रचनाओ को छोडकर इस वर्ग के रचनाकारो ने अपने-अपने युग की धार्मिक (जैन) अपेक्षाओ, जैन विचारधाराओ एव आस्थाओ के अनुरूप ही श्रीकृष्ण चरित को अपनाया। अतः इस कथाधारा द्वारा वैदिक परपरा मे प्रचलित कृष्ण कथा के रूप से भिन्न आकार ग्रहण किया जाना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार जैन साहित्यकारो ने अपने अलग-अलग दृष्टिकोणो के साथ और अलग-अलग उद्देश्यो के साथ श्रीकृष्ण चरित को अपनाया है। अत जैन साहित्य मे ही श्रीकृष्ण कथा के परिवर्तित रूप मिल जाते हैं। मौलिक रूप मे तो प्रमुख तथ्य वैदिक और जैन परपरा मे समान ही रूप से वर्णित मिलते है, किंतु दृष्टिकोण की भिन्नता से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को दोनो परपराओ मे तनिक भिन्न ही रूप-रग मिल गया है। इसी प्रकार जैन परपरा में श्रीकृष्ण चरित प्रायः सभी ग्रन्थो मे एक ही सामान्य धरातल पर अवस्थित होते हुए भी उन में

पार्थक्य किए जाने योग्य अतर भी है। इनका उल्लेख मैंने यथास्थान कर दिया है।

मेरे निष्कर्ष

(१) मेरा यह अनुशीलन इस महत्वपूर्ण तथ्य को स्थापित करता है कि जैन साहित्य परपरा में श्रीकृष्ण का विवेचन एक अपने ढंग का और अनुपमेय है, पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, सपूर्णतः मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित है तथा इसका साहित्यिक रूप भी श्लाघनीय है।

(२) दूसरा तथ्य यह प्रस्तुत होता है कि इस जैन परंपरा के श्रीकृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व अवतारी पुरुष न होकर ९वें वासुदेव हैं और समस्त जैन परंपरा के भिन्न-भिन्न श्रीकृष्ण साहित्य में पार्थक्य होते हुए भी एक सामान्य धरातल में यह उपस्थित है।

(३) अपने विषय की शोधानुकूलता के कारणो पर प्रकाश डालते हुए अपने विषय प्रवेश में मैंने इन कारणो पर विचार किया है, जिनसे मैं इस अनुशीलन कार्य मे प्रवृत्त हुआ। इसमे एक तथ्य श्रीकृष्ण की लोकप्रियता का है। उनका महत्व जैन साहित्य मे अवतारवादी न होकर ९वें वसुदेव का है।

(४) श्रीकृष्ण के साथ नेमिनाथ का पारिवारिक रूप से चचेरे भाई का सवध है और जैन परपरा में श्रीकृष्ण की ही तरह नेमिनाथ तीर्थंकर होने से भी महत्वपूर्ण हैं।

(५) मैंने अपने अनुशीलन का विभाजन भी विषय की दृष्टि से प्रस्तुत कर अपने शोध की दिशाए और सीमाए निर्धारित कर दी हैं।

(६) द्वितीय अध्याय मे प्राकृत भाषा मे उपलब्ध जैन-आगम श्रीकृष्ण साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मेरे सामने कुछ निष्कर्ष भी आए जो अत मे मैंने दे दिये हैं। एक तरह से इसमे मेरे अध्ययन के सात सूत्र हाथ लगे हैं। वे सात प्राकृत ग्रथो के अध्ययन से उपलब्ध हुए। ये सप्त सोपान महत्वपूर्ण इसलिए हैं कि इनके बिना इस अध्ययन का उपक्रम करना सभव नही था।

(७) तृतीय अध्याय में प्राकृत भाषा के आगमेतर जैन—श्रीकृष्ण

साहित्य को लेकर मैंने थोड़े विस्तृत रूप मे उसका आलोडन किया है। इसमे जैन कथाओ के माध्यम से कृष्ण-जीवन के महत्वपूर्ण प्रसगो की जानकारी को तथ्य रूप मे मैंने ग्रहण किया है। इससे जैन परपरा मे श्रीकृष्ण साहित्य को समझने और समझाने मे सहायता उपलब्ध हो गयी है जो समीचीन ही है।

(८) चतुर्थ अध्याय मेरे शोधाध्ययन की रीढ की हड्डी कही जा सकती है। इसमे विस्तृत रूप से सस्कृत भाषा मे उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण साहित्य के चरित महाकाव्य, पुराण महाकाव्य, नेमि-विषयक काव्य और पुराणो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। इस अध्ययन से प्रद्युम्न का चरित्र उभरकर सामने आया।

(९) अर्जुन और श्रीकृष्ण की मैत्री के आयाम उपलब्ध हो गये।

(१०) पाडव और श्रीकृष्ण के सबधो पर जैन दृष्टि से प्रकाश डालने का नया साधन प्राप्त हो गया। जो अपने आप मे महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

(११) नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के सबध जैन तात्त्विक दृष्टि से सुलझे हुए रूप मे उपस्थित हो गये।

(१२) राजीमति के चरित्र की जानकारी जैन श्रीकृष्ण साहित्य के करुण वीतरागी रस की जानकारी प्रदान करती है। काव्याध्ययन करने से जैन तत्त्वज्ञान की पारपरिकता मेरे हृदय पटल पर अकित होती गयी है। यह भी एक उपलब्धि मानी जा सकती है।

(१३) जैन साहित्यकारो की ये सस्कृत कृतिया अन्य जैनेतर सस्कृत साहित्यकारो के साथ एक स्वस्थ और सतुलित स्पर्धा है जो श्रेष्ठ मानी जा सकती है। ऐसी मेरी विनम्र प्रणति है।

(१४) पचम अध्याय में अपभ्रश मे उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन मैंने किया। इससे श्रीकृष्ण के समग्र रूप से जैन धरातल पर अध्ययन करने की एक भूमि प्राप्त हो गयी।

(१५) षष्ठ अध्याय मे मैंने अपने अब तक के अनुशीलन के आधार पर ससदर्भ समग्र जैन श्रीकृष्ण कथा का आलोडन प्रस्तुत कर

दिया है। यह अनुशीलन का अन्यतम निष्कर्ष और तथ्य है जो अपने आप में एक नूतन प्रयत्न है।

(१६) सप्तम और अष्टम अध्यायों में राजस्थानी से अनुप्राणित वृज और आदिकालीन हिंदी भाषा के जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण तथा स्फुट और मुक्तक गेय काव्यों का मैंने अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इनका जैन परंपरा के श्रीकृष्ण साहित्य के अध्ययन में ऐतिहासिक महत्व है। यह दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रथम जैन साहित्य के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से और दूसरा हिन्दी साहित्य के अध्ययन में इसकी देन की दृष्टि से। ये दोनों तथ्य-परक उपलब्धियां कम महत्वपूर्ण नहीं वरन् अत्यंत महत्व की हैं। स्मरण रहे कि इनमें श्रीकृष्ण चरित्र का आधार यही मेरा श्रीकृष्ण-अध्ययन ही है, जिसे मैंने षष्ठ अध्याय में उपस्थित कर दिया था।

(१७) गजसुकुमाल का चरित्र नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। इसके साथ प्रद्युम्न और गजसुकुमाल के द्वारा जैन तत्वों का ग्रहण करना जैन दर्शन के लक्ष्य को उपस्थित कर देता है।

(१८) गजसुकुमाल का चरित्र एक उज्ज्वल चरित्र है। यह जैन वीतराग रस का एक श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित कर देता है जो एक अन्यतम उपलब्धि है।

(१९) जैन मुक्तक काव्य गेयता के साथ करुण विप्रलंभ का एक ऐसा बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसकी परिणति जैन वीतराग रस की पुष्टि करती है। इससे राजीमति का चरित्र उज्ज्वल रूप में सामने आता है। सांसारिक असारता से ऊपर उठकर वह साधक को एक उच्च आध्यात्मिक धरातल प्रस्तुत कर देती है जो असामान्य और असाधारण है।

(२०) लोकसाहित्य और लोक-संस्कृति को स्पर्श करने वाली ये कृतियां एक सांस्कृतिक अक्षुण्ण लोकप्रियता का क्षेत्र उपस्थित कर देती हैं।

(२१) मेरे इस अध्ययन से एक नहीं तो अनेक प्रदेश अध्ययन और अनुशीलन के क्षेत्र में नये आयाम उपलब्ध कर देते हैं। इनमें से कुछ का निर्देश कर मैं अपना उपसंहार करूंगा। यथा—

(१) श्रीकृष्ण के इस जैन साहित्य का अन्य परंपरा के साथ तुलनात्मक अध्ययन ।

(२) जैन श्रीकृष्ण साहित्य में उपलब्ध दार्शनिकता और अन्य जैनेतर श्रीकृष्ण साहित्य की दार्शनिकता का तुलनात्मक अध्ययन ।

इस प्रकार और भी निर्देश दिये जा सकते हैं, पर मैं इतना ही कह कर अपना यह अनुशीलन समाप्त करता हूं। मेरी यह विनम्र धारणा है कि अध्येताओं का ध्यान यह अनुशीलन आकृष्ट कर सकेगा ।

———

परिशिष्ट-१

वश-परिचय तालिकाएँ

हरिवंश

दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ के निर्वाण के पश्चात् और ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयासनाथ के पूर्व हरिवश की स्थापना हुई।[1] उस समय वत्सदेश मे कौशबी नामक नगरी थी, वहाँ का राजा सुमुख था। उसने एक दिन वीरक नामक व्यक्ति की पत्नी वनमाला देखी। वनमाला का रूप अत्यन्त सुन्दर था, वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने वनमाला को राजमहलों मे बुला लिया। पत्नी के विरह में वीरक अर्द्ध विक्षिप्त हो गया। वनमाला राजमहलो मे आनन्द क्रीडा करने लगी।

एक दिन राजा सुमुख प्रिया वनमाला के साथ वन विहार को गया। वहाँ पर वीरक की दयनीय अवस्था देखकर अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा। मैंने कितना भयकर दुष्कृत्य किया है। मेरे ही कारण वीरक की यह अवस्था हुई है। वनमाला को भी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होने उस समय सरल और भद्र परिणामो के कारण मानव के आयु का बधन किया। सहसा आकाश से विद्युत् गिरने से दोनो का प्राणान्त हो गया और वे हरिवर्ष नामक भोगभूमि मे युगलिक के रूप में उत्पन्न हुए।

कुछ समय के पश्चात् वीरक भी मरकर बालतप के कारण सौधर्म कल्प मे किल्बिषी देव बना। विभग ज्ञान से उसने देखा कि मेरा शत्रु 'हरि' अपनी प्रिया 'हरिणी' के साथ अनपवर्त्य आयु से उत्पन्न होकर आनन्द क्रीडा कर रहा है।

वह क्रुद्ध होकर विचार करने लगा कि क्यो न मैं इन दुष्टो को निष्ठुरतापूर्वक कुचल कर चूर्ण कर दू? मेरा अपकार करके भी ये भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं। किन्तु, मैं इस प्रकार इन्हें मार नही सकता, क्योंकि युगलिक निश्चित रूप से मरकर देव ही बनते हैं। भविष्य मे ये यहाँ से मरकर देव न बनें और ये अपार दुःख भोगें ऐसा मुझे प्रयत्न करना चाहिए।

उसने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा भरत क्षेत्र मे चपानगरी का नरेश अभी-अभी काल धर्म को प्राप्त हुआ है, अत इन्हें वहाँ पहुचा दू, क्योंकि एक दिन भी

---

१. चउपन्न महापुरिस चरिय प० १८

आसक्ति पूर्वक किया गया राज्य दुर्गति का कारण है, फिर लम्बे समय की तो बात ही क्या है ?

देव ने अपनी देवशक्ति से हरि-युगल की करोड पूर्व की आयु का एक लाख वर्ष मे अपवर्तन किया तथा अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) को भी घटाकर १०० धनुष की कर दी।

देव उनको उठा कर ले गया और नागरिको को सम्बोधित करके कहा—आप राजा के लिए चिन्तित क्यो हैं ? मैं तुम्हारे लिए परम करुणाकार राजा लाया हूँ। नागरिको ने 'हरि' का राज्याभिषेक किया। सप्त व्यसन के सेवन करने के कारण वे नरक गति मे उत्पन्न हुए।

युगलिक नरक की गति मे नही जाते, पर वे गये। इसलिए यह घटना जैन साहित्य मे आश्चर्य के रूप मे उट्टंकित की गई है। राजा हरि की जो सन्तान हुई वह हरिवश के नाम से विश्रुत हुई। हरि के ६ पुत्र थे—

१ पृथ्वीपति
२ महागिरि
३ हिमगिरि
४. वसुगिरि
५. नरगिरि
६ इन्द्रगिरि

अनेक राजाओ के पश्चात् २०वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत भी इसी वश मे हुए। हरिवशपुराण के अनुसार यदुवश का उद्‌भव हरिवश में हुआ है।

भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण हरिवश मे उत्पन्न हुए थे।

श्रीकृष्ण वंश परिचय

श्रीकृष्ण के जैन व वैदिक परम्परा के अनुसार वश परिचय इस प्रकार है[1]—

(१) श्वेताम्बर जैन परम्परा

यदु
|
सौरी — भोगवृष्णि
|
अधकवृष्णि
|

१ जैन धर्म का मौलिक इतिहास

१ समुद्रविजय के पुत्र — अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि
२. अक्षोभ
३. स्तिमित
४. सागर
५ हिमवान्
६ अचल
७ धरण
८. पूर
९ अभिचन्द
१० वसुदेव के पुत्र — श्रीकृष्ण, बलराम

(२) दिगबर उत्तरपुराण के अनुसार यदुवंश परिचय[2]

शूरसेन
|
शूरवीर

| अंधकवृष्टि (वृष्णि) | नरवृष्टि (वृष्णि) |

नरवृष्टि (वृष्णि): उग्रसेन, देवसेन, महासेन

अंधकवृष्टि (वृष्णि):

१ समुद्रविजय
२ अक्षोभ
३ स्तिमित
४ सागर
५ हिमवान
६ अचल
७ धारण
८ अभिनन्दन
९. वसुदेव
१ कुन्ती
२. माद्री
दो पुत्रियाँ

---

२. उत्तरपुराण—७०।९३-१००

(३) दिगम्बर हरिवंश[1] के अनुसार यादववंश परिचय

यदु
|
नरपति
|

शूर (शौर्यपुत्र) — वीर

शूर (शौर्यपुत्र) | — अंधकवृष्णि

वीर | — भोजकवृष्णि, शातनु

अंधकवृष्णि का परिवार

पुत्र		पौत्र
१	समद्रविजय	—महासेन, सत्यनेमि, दृढनेमि, भ अरिष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन महीजय, सुफल्गु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवचन्द, गौतम आदि।
२	अक्षोभ्य	—उद्भव, अम्भोधि, जलधि, वामदेव, दृढव्रत,
३	स्तिमित	—ऊर्मिमान, वसुमान वीर, पाताल, स्थिर,
४	हिमवान	—विद्युत्प्रभ, माल्यवान, गधमादन,
५.	विजय	—निष्कम्प, अकप, बलि, युगन्त, केशरिन्, अलम्बुष
६.	अचल	—मलय, सहन, गिरि, शैल, नग, अचल,
७	धारण	—वासुकि, धनजय, कर्कोटक, शतमुख, विश्वरूप
८.	पूरण	—दुष्पूर, दुर्मुख, दुर्दश, दुर्धर,
९.	अभिचन्द्र	—चन्द्र, शशाक, चन्द्राभ, शशिन, सोम, अमृतप्रभ
१०	वसुदेव	—[इनकी सन्तान अगले चार्ट ४ मे देखें।]

१ कुन्ती, २. माद्री—इन दोनो का पाणिग्रहण पाण्डुराजा से हुआ।

(४) भोजकवृष्णि का परिवार

१. उग्रसेन — कस, देवकी, धर, गुणधर, युक्तिक, दुधर, सागर, चन्द्र.

२. महासेन

३ देवसेन

---

१ हरिवशपुराण—जिनसेन—अ. १८; जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश भाग १ से उद्धृत

शांतनु का परिवार

महासेन सुषेण

शिवि सत्यक, वज्रधर्मा, असग

स्वस्थ

विषद

अनन्तमित्र

विषमित्र हृदिक

कृतिधर्मा दृढधर्मा

(५) हरिवंशपुराण मे वसुदेव की २३ रानियां व उनकी संतानें

रानियां सन्तान

१ विजयसेना—अक्रूर, क्रूर
२ श्यामा—ज्वलन, अग्निवेष,
३ गन्धर्वसेना—वायुवेग, अमितगति, महेन्द्रगिरि
४. प्रभावती—दारू, वृद्धार्थ, दारुक,
५. नीलयशा—सिंह, मतगज,
६ सोमश्री—नारद, मरुदेव,
७ मित्रश्री—सुमित्र
८. कपिला—कपिल
९ पद्मावती—पद्म, पदक
१० अश्वसेना—अश्वसेन
११ पौन्ड्रा—पौण्ड्र
१२ रत्नवती—रत्नगर्भ, सुगर्भ
१३. सोमदत्तपुत्री—चन्द्रकान्त, शशिप्रभ,
१४ वेगवती—वेगवान, वायुवेग
१५ मदनवेगा—दृढमुष्टि, अनावृष्टि, हिममुष्टि,
१६ बंधुमति—बन्धुसेन, सिंहसेन
१७ प्रियगसुन्दरी—शिलायुध
१८ प्रभावती—गान्धार, पिंगल
१९. जरा—जरत्कुमार, वाह्लिक
२० अवती—सुमुख, दुर्मुख, महारथ

२१ रोहिणी—बलदेव, सारण, विदुरथ,

२२ बालचन्द्रा—वज्रदष्ट्र, अमितप्रभ

२३ देवकी—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न, जितशत्रु, श्रीकृष्ण,

वसुदेव के पुत्र	पुत्रों की सन्तानें
जरत्कुमार	—वसुध्वज, सुवसु, भीमवर्मा, कापिष्ठ, अजातशत्रु, शत्रुसेन, जितारि, जितशत्रु आदि ।
बलदेव	—उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शकून्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान, दशरथ, देवनन्द, बिद्रभ, शान्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु, रोमशैल्य,
श्रीकृष्ण	—भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुसजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शख, प्रद्युम्न, शाम्ब, इत्यादि ।[1]

(६) वैदिक परम्परा विष्णुपुराण के अनुसार उग्रसेन[2] की सन्तानें—
कस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह, शकु, सभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि, सतुष्टिमान
चारपुत्रियाँ—कसा, कसावती, सुतनु, और राष्ट्रमालिका
सुतनु का ही दूसरा नाम राजीमती है ।

(७) विष्णुपुराण के अनुसार यदुवंश

यदु
|
क्रोष्टु
|
- युधाजित
  - वृष्णि
    - स्वफलक
      - अक्रूर
    - चित्रक
      - अरिष्टनेमि
  - अधक
- देवमीढुष
  - शूर
    - वसुदेव (१० भाई)
      - श्रीकृष्ण (८ भाई)

---

१ जैनेन्द्रसिद्धातकोष, भा० १ पृ० ३५८ से उद्धृत

२. हरिवश पर्व-२, अध्याय ३७, श्लोक १२ और ४४ तथा हरिवश पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक

परिशिष्ट-१

वैदिक हरिवंश[1] के अनुसार यादववंश परिचय

१ यदु
२ माधव
३. सत्वत
४. भीम
५ अन्धक
६ रैवत
७ विश्वगर्भ
८. वसु
९ वसुदेव
१०. श्रीकृष्ण

महाभारत[2] के अनुसार यादववंश परिचय

१ यदु
२ क्रोष्टा
३ वृजिनिवान
४ उषगु
५ चित्ररथ
६ शूर (लघुप्रभ)
७ वसुदेव
८ श्रीकृष्ण

महाभारत द्रोणपर्व[3] के अनुसार यादववंश परम्परा

१ यदु
२ दो या उससे अधिक राजाओ का नामोल्लेख नहीं हुआ है।
३ देवमोह
४. शूर
५ वसुदेव,
६. श्रीकृष्ण

---

१ हरिवंश पर्व २, अध्याय ३७, श्लोक १२ और ४४ तथा हरिवंश पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक

२ महाभारत अनुशासन पर्व अ० १४७, श्लोक २७-३२

३. महाभारत द्रोण पर्व अ० १४४ श्लोक ६-७

वैदिक परंपरा के पुराणो मे इनकी वशावली भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गयी है।

पूर्ण विस्तृत वर्णन के लिए देखें—पारजीटर एन्शिएण्ट इण्डियन् हिस्टोरिकल ट्रैडीशन, पृ० १०४-१०७।

जरासन्ध के पुत्र

१ कालयवन्[1]	२ सहदेव[2]	३ द्रुमसेन
४ द्रुम	५ जलकेतु	६. चित्रकेतु
७ धनुर्धर	८ महीजय	९ भानु
१० कांचनरथ	११ दुर्धर	१२ गंधमादन
१३ सिंहाक	१४ चित्रमाली	१५ महीपाली
१६ बृहद्ध्वज	१७ सुवीर	१८ आदित्यनाग
१९ सत्यसत्व	२० प्रदर्शन	२१ धनपाल
२२ शतानीक	२३ महाशुक्र	२४ महावसु
२५ वीर	२६ गगदत्त	२७ प्रवर
२८ पार्थिव	२९ चित्रागद	३० वसुगिरि
३१ श्रीमान्	३२. सिंहकटि	३३ स्फुट
३४ मेघनाद	३५ महानाद	३६ सिंहनाद
३७ वसुध्वज	३८ वज्रनाभ	३९ महाबाहु
४० जितशत्रु	४१ पुरन्दर	४२ अजित
४३ अजितशत्रु	४४ देवानन्द	४५ शद्रुत
४६ मन्दर	४७ हिमवान	४८. विद्युत्केतु
४९ माली	५० कर्कोटक	५१. हृषीकेश
५२ देवदत्त	५३ धनजय	५४ सगर
५५ स्वर्णबाहु	५६ मघवान	५७ अच्युत
५८ दुर्जय	५९ दुर्मुख	६० वासुकि
६१ कम्बल	६२ त्रिशिरस्	६३ धारण

१ त्रिषष्टि के अनुसार जो अग्नि में जलकर मरा।

२ जिसे कृष्ण ने मगध का चतुर्थ हिस्से का राज्य दिया था।

६४ माल्यवान	६५ सम्भव	६६ महापद्म
६७ महासेन	६८ महानाग	६९ महाजय
७० वासत्र	७१ वरुण	७२. शतानीक
७३ भास्कर	७४. गरुत्मान	७५. वेणुदरी
७६ वायुवेग	७७. शशिप्रभ	७८ वरुण
७९ आदित्यधर्मा	८०. विष्णु स्वामी	८१ सहस्रदिक्
८२ केतुमाली	८३ महामाली	८४. चन्द्रदेव
८५. बृहद्बलि	८६ सहस्ररश्मि	८७ अर्चिष्मान

समग्र सूची जैन ग्रन्थो के आधार पर दी गयी है।

परिशिष्ट-२

राधा और राजीमती

राधा ऐतिहासिक पात्र है अथवा नहीं ?

लोक साहित्य एव लौकिक साहित्य मे श्रीकृष्ण का राधा के साथ इतना घनिष्ठ सबध प्रतिपादित मिलता है कि राधा के अभाव में श्रीकृष्ण का नाम भी अपूर्ण प्रतीत होता है। (राधाकृष्ण) किंतु यह एक विचारणीय प्रश्न होता है कि क्या वास्तव मे इस नाम की स्त्री श्रीकृष्ण के जीवन मे आयी और रही भी थी ? क्या राधा ऐतिहासिक पात्र है ?

इतना स्पष्ट है कि जैन आगम और आगमेतर ग्रथो मे कही भी राधा नाम की किसी स्त्री की कोई चर्चा नही मिलती। जैन और वैदिक ग्रथो मे श्रीकृष्ण की प्रमुख रानियो के नाम गिनाए गये हैं उनमे राधा जैसा कोई नाम नही हैं, किन्तु गवेषणा के मार्ग पर केवल इस तथ्य के कारण ही गतिहीन हो जाना औचित्यपूर्ण और समीचीन प्रतीत नही होता। हिंदी साहित्य के आसन्न-भूतकालीन अतिमहत्वपूर्ण ब्रज-साहित्य श्रीकृष्ण के साथ-साथ ऐसा राधामय हो गया है कि उस आधार पर भी राधा के अस्तित्व को हठात् ही सुगमता से नकारा नही जा सकता। ब्रजभाषा के साहित्य से हमारी सस्कृति भी दूर तक प्रभावित हुई और यही सस्कृति आगे से आगे प्रबल और गहन होती गयी है। भारतीय सस्कृति मे राधा और श्रीकृष्ण का अनन्य सबध है। ये दोनो नाम परस्पर ऐसे अन्योन्याश्रित हो गये हैं कि एक के अभाव मे अन्य के नाम की कल्पना भी नही की जा सकती। काव्य, चित्र, मूर्तिकला आदि सभी क्षेत्रो मे श्रीकृष्ण के साथ अभिन्न रूप मे राधा की उपस्थिति मिलती है। इनमे प्रमुखता निश्चित रूप से श्रीकृष्ण को ही प्राप्त हुई है। तथापि कतिपय ग्रन्थो मे राधा की महिमा और गरिमा अपेक्षा कृत अधिक भी आँकी गयी है। राधा के माता-पिता, जन्मस्थान एव अन्य स्वजन-परिजनों के नामोल्लेख भी हैं। ऐसी स्थिति मे अविचारित रूप मे ही राधा को अनैतिहासिक या कल्पनाप्रसूत पात्र मान लेना युक्तियुक्त नही हो सकता। कम से कम इतना तो है ही कि यह व्यापक विचार की अपेक्षा रखने वाला महत्वपूर्ण प्रश्न है। श्रीकृष्ण की लीलाओ का आधार भी राधा ही रही है। और, यह महत्वपूर्ण बिंदु है कि कृष्ण साहित्य का अधिकाश भाग इसी लीला गान

से धन्य हो उठा है एव माधुरी भक्ति के लिए राधाकृष्ण की प्रेमलीला ही प्रमुख आधार शिला रूप मे दिखाई देती है।

इसके विपरीत अनेक प्राचीन कृष्ण चरित्र ग्रथो मे राधा का उल्लेख भी नही मिलता। महाभारत, हरिवश पुराण, विष्णु पुराणादि ग्रथ इस रूप मे उल्लेखनीय हैं। राधाभक्त विद्वानो की धारणा है कि 'राधा' एक अति प्राचीन नाम है। उनका कथन है कि वेदो से लेकर आज के अर्वाचीन साहित्य तक के सुदीर्घ कालीन साहित्य में राधा वर्णित है। सभवतः यह वर्णन कही विपुल हो गया हो और कही विरल रह गया हो, किंतु रहा अवश्य है। ऐसे विद्वानो ने अपने अनुसन्धान के आधार पर स्वविचार के समर्थन मे अनेक संदर्भ एव प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। ऋग्वेद मे राधा का नाम मिलता है (१।३०।४० एव ३।४१।१०)। इसी प्रकार सामवेद (१६।५७।३७) और अथर्ववेद (२०।४५।२) में भी "राधा" शब्द का प्रयोग हुआ है। बृहद् ब्रह्मसहिता मे राधा और कृष्ण मे कोई अन्तर नहीं माना गया है।

य' कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव स।

जो कृष्ण है सो ही राधा है, जो राधा है सोई कृष्ण है। सनत्कुमार सहिता मे भी इसी प्रकार राधा और कृष्ण मे अभिन्नत्व स्थापित किया गया है।

राधाकृष्णेति सज्ञाढ्य राधिकारूपमगलम्।

कृष्णोपनिषद्[1] एव कठवल्ली उपनिषद् में भी राधा के रूप सौंदर्य का वर्णन मिलता है। राधिका महिमा का प्रतिपादन भी राधिकोपनिषद् मे मिलता है। पद्म-पुराण मे भी राधा का नाम आता है और उसकी महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।[2] शिवपुराण[3] मे ब्रह्माजी की घोषणा है कि राधा साक्षात् गोलोक मे निवास करने वाली गुप्त स्नेह मे निबद्ध हुयी कृष्ण की पत्नी होगी। नारदपुराण मे 'राधिका नाथ' सबोधन के साथ नारद जी ने श्रीकृष्ण की स्तुति की है। ब्रह्मवैवर्तपुराण मे प्रमुखत राधा-कृष्ण की लीलायें ही वर्णित की गयीं हैं। मत्स्यपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्यपुराण आदि पुराण ग्रन्थो मे भी राधा का उल्लेख उपलब्ध होता है। देवी भागवत मे राधा को श्रीकृष्ण के वामांग से उत्पन्न हुई बताया गया है।

---

१ वामाङ्गसहिता देवी राधावृन्दावनेश्वरी।
सुन्दरी नागरी गौरी कृष्णहृद्भृङ्गमजरी॥

२. देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परमदेवता।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी॥५३॥

३ कलावती सुता राधा, साक्षात् गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति॥४०॥ शिवपुराण

भागवत मे राधा नहीं है

इन सारे उल्लेखो एव वर्णनो के बावजूद एक गभीर प्रश्न यह उठ खडा होता है कि फिर श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख क्यो नही हुआ ? इस ग्रन्थरत्न में श्रीकृष्ण का प्रामाणिक एव सविस्तार वर्णन हुआ है। ऐसे ग्रन्थ में राधाकृष्ण चित्रण न होना, राधा के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह अकित नही कर देता, बल्कि उसकी सदिग्धता को रेखाकित भी कर देता है।

श्रीमद्भागवत मे राधा की अनुपस्थिति से यह अनुमान स्वस्थ व सुदृढ बन जाता है कि राधा की प्राचीनता मान्य नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह भी स्पष्टत आभासित होता है कि सभवत राधा एक काल्पनिक पात्र है और इसकी कल्पना ईसा-पूर्व की कदापि नही है। एक प्रयोजन विशेष है कि केवल हठात् इसकी कल्पना प्रतीक रूप मे कर ली गयी है। इस बात का वजन ज्यो-ज्यो समस्या पर विचार किया जाए त्यो-त्यो बढता चला जाता है।

क्या राधा आभीर बाला है ?

राधा की ऐतिहासिकता का प्रश्न कुछ ऐसा महत्वपूर्ण रहा है कि इस पर प्रत्येक युग मे अनेक विद्वानो ने अपने-अपने ढग से चिन्तन, मनन और अध्ययन किया है। सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत भी विचारणीय है। डा भण्डारकर भी राधा की प्राचीनता को अस्वीकार करते हुए अपनी मान्यता को इस आशय के साथ व्यक्त करते हैं कि गोपाल, गोप और गोपियों की भाति राधा का सबंध भी उस विदेशी आभीर जाति से था जो आव्रजित होकर भारत मे आयी और यहीं बस गयी। आर्यों के साथ उनका सपर्क धीरे-धीरे बढने लगा और सास्कृतिक आदान-प्रदान होने लगा। तभी उनकी राधा विषयक कथा कृष्ण कथा मे सम्मिलित हो गयी।

उक्त मान्यता के विवेचन मे जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है वह यह नहीं है कि क्या राधा आभीर बाला थी ? यह तो सर्व स्वीकार्य हो भी सकता है, किंतु प्रश्न तो यह है कि क्या आभीर जाति विदेशी थी ? इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि आभीर जाति विदेशी नहीं थी, और न ही इतिहास के किसी काल मे वह भारत मे आव्रजित हुयी। पुराणकाल से भी पूर्व उनकी भारतीय जनता मे सम्मिलित धारणा के प्रमाण अनेक उल्लेखो से मिलते हैं। डा मुन्शीराम शर्मा का कथन है कि—"इस देश के किसी भी साहित्यिक ग्रन्थ मे आभीरो को बाहर से आया हुआ नही कहा गया है।"[1] विष्णु-पुराण मे आभीर वश का उल्लेख है, वायुपुराण मे इस जाति की विस्तृत वशावली भी दी गयी है, आभीर स्वय अपने आपको यदुवशी आहुक की सतति मानते हैं।

१. भारतीय साधना और सूर साहित्य, ले० डा० मुन्शीराम शर्मा, पृ० १९४

महाभारत मे यदुवश के साथ आभीर वश का घनिष्ठ सबध बताया गया है और उल्लेख है कि श्रीकृष्ण की एक लाख नारायणी सेना मुख्यत आभीर क्षत्रियो से निर्मित हुई थी और महाभारत के युद्ध मे दुर्योधन की ओर से लडी थी।

राधा का स्रोत

डा० शशिभूषणदास गुप्त ने अपने बगला भाषा मे रचित शोध ग्रन्थ "राधार क्रम विकास" मे राधा विपयक अनुसधान मे उपलब्ध अनेक महत्वपूर्ण मतव्य प्रस्तुत किए हैं।[1] सामान्यत. उनके निष्कर्ष से किस सीमा तक सहमति स्थिर हो सकती है ? यह अन्य प्रश्न है, किंतु उनसे विचार का आधार अवश्य बनता है। डा० दास गुप्त का एक मत तो यह है कि राधावाद का वीज भारतीय शक्तिवाद मे है। जो पहले शक्ति रूप मे थी, वही कालान्तर मे परम प्रेममयी राधा के रूप मे परिणत हो गयी। क्या विचार दृष्टि से और क्या भाषा की दृष्टि से किसी भी दृष्टि से शैव-शाक्त तत्रोक्त शक्तिवाद और वैष्णव शास्त्रोक्त शक्तिवाद मे कोई विशेष पार्थक्य करना सभव नही प्रतीत होता। सम जातीय विचार और भाव ही मानो भिन्न-भिन्न वातावरण मे भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट हुए हैं।

डा० दास गुप्त का मत राधापूजक सप्रदायों एव उनकी मान्यताओ के समझाने मे कितना सहायक हो सकता है, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है, किंतु उनकी यह धारणा सर्वथा उपयुक्त है कि साहित्य का अवलबन करके ही राधा का आविर्भाव और क्रम प्रसार हुआ है।[2]

उक्त आधार को समीचीन मानकर चला जाये तो राधा का सर्व प्रथम उल्लेख "गाहासत्तसई" मे मिलता है जिसका सकलन (अन्त साक्ष्य के अनुसार) विक्रमी सवत् के आरभ में हुआ प्रतीत होता है। इसके अनुसार राधा की कल्पना इसके पूर्व तो थी ही नही। कुछ विद्वानो का कथन यह भी है कि इस ग्रथ में मौलिक रूप से राधा के उल्लेख नही हैं। छठी शताब्दी मे ये अश इस ग्रथ मे जोड दिए गए थे। अस्तु, यह प्राय निश्चित है कि ५ वी शताब्दी के पश्चात् ही राधा अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर सकी है। यही वह काल था जिसमे राधा का स्वरूप न केवल साहित्यिक रचनाओ मे अपितु कला के अन्यान्य क्षेत्रो की कृतियो मे भी स्थान प्राप्त करने लगा। राधाकृष्ण की एक युगल मूर्ति बगाल के पहाडपुर में उपलब्ध हुई है, जो इस प्रकार की प्राचीनतम प्रतिमा मानी जाती है और इसका निर्माण-काल सातवी-आठवी शताब्दी का माना जाता है।

क्रम विकास डा० शशिभूषण दास गुप्त।

पूर्ण भारत मे राधा की लोकप्रियता

ऐसा नही कहा जा सकता है कि भारत के किसी विशेष भाषा मे ही राधा के प्रति मान्यता और भक्ति भावना उदित एव विकसित हुई हो। इस आलोक से तो लगभग सारा देश ही एक साथ जगमगा उठा था। दक्षिण में अलवार जाति के लोगो द्वारा माधुर्य भक्ति भावना का प्रादुर्भाव माना जाता है। ये भक्त गण ५ वी से ८वी शती के मध्य हुए थे। आभीर का तमिल मे शाब्दिक अर्थ होता है—गोप। और, इस क्षेत्र में राधा को आभीरो की देवी माना जाता है। इस देवी का तमिल नाम "नाप्पिन्नाई" मिलता है।

राधा सबधी विभिन्न अनुसधानो से निष्कर्षत यह अनुमान होता है कि मथुरा के निकटवर्ती जिस गोप-वस्ती मे श्रीकृष्ण का बाल्यकाल व्यतीत हुआ, उसके समीप निवास करने वाली किसी अहीर बालिका से उनका परिचय हो गया। परिचय घनिष्ठता और स्नेह प्रीति मे परिणत हो गया तथा उस अनन्य प्रेम का आदर्श आभीर जाति मे प्रचलित हो गया होगा एव पीढ़ी दर पीढी उस प्रेम कहानी को कहा सुना जाता रहा। यह प्रेम सबध आभीर जाति के लिए एक धरोहर हो गया हो ऐसा सभव प्रतीत होता है। इसी प्रकार इस जाति मे राधा ने किसी युग मे प्रेम की देवी का गौरव प्राप्त कर लिया और श्रीकृष्ण बालदेवता के रूप मे प्रतिष्ठित हो गये।

राधा और कृष्ण के प्रेमगीत पहले लोक भाषा मे प्रचलित हुए और तब क्रमश. उन्हें सस्कृत मे स्थान मिलने लगा। जब धार्मिक क्षेत्र मे विष्णु की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ तो विष्णु के अवतार रूप मे श्रीकृष्ण और उनकी शक्ति के रूप मे राधा का चित्रण पुराणादि ग्रथो में होने लगा। श्रीकृष्णोपासक सप्रदायो की प्रबलता के साथ-साथ राधा का महत्व भी उत्तरोत्तर प्रबल होता गया। इस प्रकार राधा लोकजीवन और लोकमान्यताओ मे ही शताब्दियो तक बनी रही और उसका परिवर्तित एव परिवर्धित रूप ही आगे चलकर साहित्य मे उभरा। यही कारण है कि राधा का सबध लोकजीवन, सस्कृति, साहित्य एव कलाओ से जितना प्राचीन रहा, उतना इतिहास से नही रहा। ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्ग सहिता में राधाकृष्ण की लीलाएँ विस्तार पूर्वक वर्णित मिलती हैं। ब्रजभाषा का काव्य तो इसका अनूठा कोष ही है। श्रीकृष्णराधा की लीलाओ के गान से ब्रज भाषा के माधुर्य और क्षमता मे भी अद्भुत अभिवृद्धि हुई है। अभिव्यक्ति के लिए लीलागान जैसा सर्वोच्च विषय क्षेत्र पाकर यह भाषा स्वय कृतार्थ एव धन्य हो उठी है।

राधा के स्वरूप की सहज प्रक्रिया

राधा के स्वरूप विकास की यह प्रक्रिया अतीव सहज और प्राकृत लगती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार जब लोक मान्यता और लोक जीवन मे ही राधा के स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ होगा, तभी वहाँ से सदियो के पश्चात् वह साहित्य और पुराणो में आया हो तो कतिपय वैदिक ग्रथो मे उसका उल्लेख क्यो कर नहीं हुआ होगा? पर राधा का कोई उल्लेख ऐसा नही मिलता। जैसा कि पहले ही वर्णित हो चुका है कि श्रीकृष्ण का अधिकतम विस्तृत जीवन चरित्र श्रीमद्‌भागवत में उपलब्ध होता है। इस ग्रंथरत्न में राधा का उल्लेख ही नही है। यदि राधा का उल्लेख इसी राधा के अर्थ मे अन्य वेदादि ग्रथों मे हुआ हो तो श्रीमद्‌भागवत मे उसकी उपेक्षा नही की जा सकती थी। इन अन्यान्य वेदादि ग्रंथो मे उल्लिखित राधा का प्रयोग कदाचित् अन्यार्थ में ही हुआ होगा।

उक्त धारणा के समर्थन में डॉ० हरवशलाल की मान्यता विशेषत उल्लेखनीय है कि यद्यपि पौराणिक पण्डित राधा का संबध वेदो से जोडते हैं, किंतु ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे श्रीकृष्ण की प्रेमिका के रूप में उसे वेदो तक घसीटना असंगत ही लगता है। गोपाल कृष्ण की कथाओ से परिपूर्ण भागवत, हरिवशपुराण और विष्णुपुराणादि ग्रथो में राधा का अभाव अनेक प्रकार के सदेहो को जन्म देता है।[1]

फिर अन्य प्राचीन ग्रथो मे राधा के प्रयोग का कोई इतर प्रयोजन तो नही है, इस अनुमान की पुष्टि और एक दिशा का सकेत प० बलदेव उपाध्याय से मिलता है। उनका मत है कि राध तथा राधा दोनों शब्दो की उत्पत्ति 'राध वृद्धौ' धातु से है। इसमें आ उपसर्ग जुडने पर आराधयति धातुपद बन जाता है। फलत इन दोनो शब्दो का समान अर्थ है—आराधना, अर्चना, अर्चा। राधा इस प्रकार वैदिक राध या राधा का व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना का प्रतीक है। आराधना की उदात्तता उसके प्रेमपूर्ण होने मे है। इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम की प्रचुरता का, भक्ति की विपुलता का, भाव की गहनीयता का सबध कालातर में जुडता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप मे साहित्य और धर्म मे प्रतिष्ठित हो गयी।[2]

समग्र विचार दोहन से निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि राधा के रूप में जिस पात्र के साथ हमारा मानसिक परिचय है, वह ऐतिहासिक नही है। यह स्वरूप मात्र कल्पना-प्रसूत है। परवर्ती कवियो द्वारा यह कल्पना कर ली गयी है और बाद के कवियों द्वारा वह कल्पना इस प्रचुरता के साथ अपनायी और पुष्ट की जाती रही कि

---

१ सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरवशलाल शर्मा, पृ० २६५

२ भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा, प० बलदेव उपाध्याय, पृ० ३१

इसमे एक सत्याभास की प्रतीति होने लगी। राधा एक प्रतीक है जो इस रूप मे प्रतिष्ठित हो गयी है।

राजीमति : एक विरहिणी जैन वीतरागी रस की

श्राविका और उच्चतम आध्यात्मिक धरातल का उज्ज्वल एवं देदीप्यमान चरित्र—अरिष्टनेमि की पूर्वभव की साथिन और पत्नी राजीमति अपने पूर्व भवो मे रत्नवती और चित्रगति, अपराजित और प्रीतिमति के रूप मे पति-पत्नी थे। आचार्य जिनसेन के अनुसार अपराजित अनुत्तरविमान मे बाईस सागर की स्थिति वाला अहमिन्द्र देव बना[1]। वही महाराजा समुद्रविजय की पत्नी शिवादेवी की कोख से अरिष्टनेमि के रूप मे पैदा हुआ। यशोमती का जीव राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती के रूप मे पैदा हुई।

जब वह बडी हुई तो एक बार श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा—"कुमार ऋषभ आदि अनेक तीर्थंकर भी गृहस्थाश्रम मे दीक्षित हुए थे। उन्होने गृहस्थाश्रम का भोग किया था और परिणत वय मे दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया था। तुम भी ऐसा ही करो।" नियति की प्रबलता जानकर अरिष्टनेमि ने उनकी बात स्वीकार की। श्रीकृष्ण ने भोजकुल के राजा उग्रसेन से राजीमती की याचना अरिष्टनेमि के लिए की। वह सर्व लक्षणो से सपन्न, विद्युत् और सौदामिनी के समान दीप्तिमान राजकन्या थी।[2] राजीमती के पिता उग्रसेन ने श्रीकृष्ण की बात मान ली और श्रीकृष्ण से कहा, यदि कुमार यहाँ आयें तो मैं अपनी राजकन्या उन्हें ब्याह दू।

विवाहपूर्व तैयारी

बात तय हुई। विवाह के पूर्व समस्त कार्य सम्पन्न हुए। मगलदीप जलाए गये। विवाह का दिन भी आया। बाजे बजाये गये। खुशी के गीत गाये जाने लगे। राजीमती अलकृत हुई। पर होनी कुछ और ही थी।

राजीमती ने देखा बारात आ रही है। दिव्य आभूषण पहने हुए, दिव्य वस्त्र परिधान किये हुए, मदोन्मत्त गधहस्ती पर आरूढ़ होकर दशार्ह चक्र से चारो ओर घिरे हुए चतुरगिणी सेना के साथ वे अरिष्टनेमि आ रहे हैं। राजीमती ने अपने भावी पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उस युग मे क्षत्रियो मे मासाहार का प्रचलन था। उग्रसेन ने बारातियो के भोजनार्थ सैकडो पशु-पक्षी एकत्रित किए थे। उनका करुण क्रन्दन अरिष्टनेमि ने सुना। भगवान ने पूछताछ की। सारथी ने बताया कि ये सारे

---

१ हरिवशपुराण—३४।१५०, पृ० ४४० आचार्य जिनसेन।

२ अहसा सायरकन्ना सुसीला चारु-पेहिणी।
सव्वलक्खण सपन्ना, विज्जु सोदामणिप्पभा ॥७॥

मूक और निरीह प्राणी बारातियो के भोजनार्थ रखे गये हैं। अरिष्टनेमि का हृदय दया से द्रवित हुआ। वे तोरण से वापिस लौट गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया पर वे न माने।

राजीमती का दु.ख

यह सब जानकर राजीमती के चेहरे की गुलाबी खुशियाँ गायब हो गयीं। उसे अतीव दु ख हुआ। उसने कहा—विवाह की बाह्य रीति रस्म भले ही न हुई हो किन्तु अतरग हृदय से मैंने उन्हे वर लिया है। अब मैं आजन्म उन्ही स्वामी की उपासना करूँगी। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया, पर वह न मानी।

राजीमती को सखियो ने बहुत समझाया। उसके आँसू पोछे और कहा, राजुल, तुम बहुत भोली हो। जो तुम्हें नही चाहता उसके लिए क्यो आँसू बहा रही हो जिसके पास नारी के कोमल हृदय को परखने की वृत्ति नही—अन्त करण नही—जो दारुण वेदना को नही पहचान सका ऐसे निरीह हृदय वाले पर तुम अपना दिल क्यो लुटाती हो? वे कायर थे इसीलिए जीव दया का बहाना बना कर बिना विवाह किये चल दिये।

राजीमती अपने प्रेम में दृढ थी। उसने सखियो को फटकारा। तुम क्या जानो वे कैसे करुणावतार थे! जिसने अपने समस्त सुखो को पशुओ की करुण पुकार पर त्याग दिया वे कितने वीर हैं! उनको कायर कहते तुम को लज्जा क्यो न आई? तुम सब मुझे अकेली छोडकर चली जाओ। सखियो ने पुन उसे समझाया। इस पर राजीमती ने पुन डाँटा और कहा—चुप रहो। मुह से ऐसी-वैसी बातें न निकालो। अरिष्टनेमि मेरे प्रियतम हैं। मैं उनका हृदय से वरण कर चुकी हूँ। पागल मैं नही तुम सब हो। मैं क्षत्रिय बाला हूँ। एक ही बार वह अपना जीवन साथी चुनती है। मैंने भी वैसा ही तय किया है। अब जो उनकी राह होगी वही मेरी होगी।

प्रेममूर्ति राजीमती

प्रेममूर्ति राजीमती अरिष्टनेमि की अपलक प्रतीक्षा करती रही। वह नित्य सोचती रहती—भगवान एक-न-एक दिन अवश्य मेरी पुकार सुनेंगे। किन्तु, उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। एक सालभर उसके अन्तर्मानस मे अनेक सकल्प डूबते-उतरते रहे। इस अन्तर्व्यथा को लेकर अनेक जैन कवियो ने बारहमासे लिखे हैं। राजीमती के माध्यम से इस विधा को कठाभरण और लिखित रचना के रूप मे ज्ञात और अज्ञात जैन कवियो ने अपनाया।

यह वियोग शृ गार वर्णन अनूठा और हृदयग्राही है। यह गेय और लोक-गीत का रूप पकड चुका है। एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है "जो न होते नेम राजीमती तो क्या करते जैन यति"। राजीमती की उपासना देह की नही देही की है। इसमें भौतिक

वासना नहीं है बल्कि आध्यात्मिक स्तर की उदात्त भावना है जो संयम पर आधारित है। अरिष्टनेमि ने जिस कठोर साधना को अपनाया उसको राजीमती ने भी अपनाया और वह अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त हो जाती है।

रथनेमि और राजीमती

राजीमती के रूप पर अरिष्टनेमि का सहोदर रथनेमि आसक्त था। वह उसके पास नित्य नये उपहार भेजता। सरलहृदया राजीमती उसकी कुटिल बात न समझ सकी। इन उपहारों को वह अरिष्टनेमि के ही उपहार समझती रही। पर, एक दिन एकान्त मे रथनेमि ने अपनी अभिलाषा व्यक्त की। जब राजीमती ने यह सुना तो वह सारा रहस्य समझ गयी। उसे समझाने के लिए उसने सुगन्धित पयःपान किया और उसके वमन के लिए दवा भी ले ली। जब वमन हुआ तो उसे एक स्वर्णपात्र में लेकर रथनेमि को देकर कहा "लीजिए, इसे पान कीजिए" तो रथनेमि ने कहा, क्या मैं कुत्ता हूँ ? वमन का पान इनसान नही करता—कुत्ता करता है। राजीमती ने उत्तर दिया, "मैं अरिष्टनेमि द्वारा वमन की हुई हूँ। फिर तुम क्यो मुग्ध होकर मेरी इच्छा कर रहे हो ? क्या तुम्हारा विवेक नष्ट हो गया है ? जो वमन की हुई चीज की इच्छा करता है उसे मर जाना चाहिए। लगता है तुम्हारा विवेक नष्ट हो गया है।" राजीमती की इस फटकार ने काम किया। राजीमती दीक्षाभिमुख होकर तप और संयम करने लगी। राजीमती ने अनेक महिलाओ के साथ दीक्षा ले ली। पर, एक दिन की घटना है—बादल गरज रहे थे। बिजलियाँ कौंध रही थीं। रैवतक पर्वत पर साध्वी महासती राजीमती अन्य साध्वी सहित चढ रही थी। अचानक वृष्टि शुरु हो गयी। साध्वियो का झुंड बिखर गया। अपने दल से बिछुडी हुई राजीमती ने वर्षा से बचने के लिए एक अंधेरी गुफा का आश्रय लिया। इस गुफा के एकान्त स्थान को देखकर राजीमती ने अपने गीले वस्त्र उतारकर फैला दिये। रथनेमि ने भी प्रव्रज्या ली थी। वे भी इसी गुफा मे ध्यानमग्न थे। अचानक बिजली चमकी। राजीमती को अकेली और निर्वस्त्र देखकर उसका मन विचलित हो गया। राजीमती ने भी जब उसे देखा तब वह अपने अगो का गोपन कर जमीन पर बैठ गयी। रथनेमि उसको मनाने लगा। उसने कहा—तुम्हारे विना मैं शरीर धारण नही कर सकता। मेरी मनोकामना तुम पूर्ण करो। फिर हम दोनो संयम ग्रहण कर लेंगे। राजीमती ने पुनः फटकारकर कहा—"श्रमण होकर भी तुम भोगलीन होने की इच्छा करते हो। वमन की हुई विषवस्तु खाकर तुम जीवित रहना चाहते हो ? तुम चाहे नल-कुबेर या साक्षात् इन्द्र के समान क्यो न हो, मैं तुम्हारी इच्छा नही करती। तुम्हारे लिये मृत्यु को वरण कर लेना ही श्रेयस्कर है।" साध्वी राजीमती के इन वचनो को सुनकर रथनेमि का मन स्थिर हो गया। राजीमती

भी केवली और मुक्त हो गयी। रथनेमि भगवान के पास गये और सब बताया। अन्त मेतपस्या कर वे मोक्षगामी बने।

वैदिक साहित्य मे जो स्थान राधा-कृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य में अरिष्टनेमि और राजीमती का है। मैंने परिशिष्ट-२ मे इसके पूर्व राधा पर विवेचन दिया है। राधा आह्लादिनी शक्ति और श्रीकृष्ण की प्रेम देवी है। पर, राजीमती, विरहिणी होकर भी साध्वी है और अतुलनीय सयम की मूर्ति है इसलिए बेजोड और अनुपम है। इन दोनो की तुलना अपने-अपने क्षेत्र मे अतुलनीय हैं।

परिशिष्ट-३

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. अन्तकृत्दशा सूत्र, सं०—युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी।
प्र०—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सन् १९८१

२ अरस्तू का काव्य शास्त्र, अनुवादक—डा० नगेन्द्र
प्र०—हिंदी अनुसधान परिषद, दिल्ली, वि० स० १९१४

३ अपभ्रश भाषा का अध्ययन, ले०—डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव।

४ अपभ्रश कथाकाव्य एव हिंदी प्रेमाख्यान, ले०—प्रेमचन्द जैन
प्र०—सोहनलाल जैन धर्मप्रचारक समिति, अमृतसर, सन १९७२

५ अपभ्रश साहित्य, ले०—प्रो० हरिवश कोछड
प्र०—भारतीय साहित्य मदिर, दिल्ली, वि० स० १०१३

६ आधुनिक हिंदी काव्य में छद योजना, ले०—डा० पुत्तूलाल शुक्ल

७ आदि पुराण मे प्रतिपादित भारत, ले०—डा० नेमिचन्द शास्त्री
प्र०—वर्णी ग्रंथमाला, काशी।

८ आदि पुराण, ले०—आचार्य जिनसेन
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् १९६३

९ इतिहास प्रवेश, ले०—जयचन्द्र विद्यालकार
प्र०—सरस्वती प्रकाशन मदिर, इलाहाबाद, सन् १९४१

१०. इण्डियन फिलासफी, ले०—डा० राधाकृष्णन्

११. उत्तराध्ययन सूत्र, स०—राजेन्द्र मुनि
प्र०—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर सन् १९८४

१२ उत्तरपुराण, (हस्तलिखित प्रति)
लिपिकार—खुशालचन्द काला

१३. उत्तरपुराण, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५४

१४ उपदेशमाला प्रकरण
प्र०—ऋषभ देव केशरीमल, सस्था इन्दौर, १९२६

१५. काव्यमाला (४९), स०—शिवदत्त शर्मा
प्र०—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९०५

१६ करकडु चरित्र, स० —हीरालाल जैन
प्रथम स०—जैन सीरीज, कारजा, १९३४
द्वितीय स०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९६४

१७ कृष्ण मेरी दृष्टि मे, ले०—भगवान श्री रजनीश
प्र०—जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई-९

१८ कण्हचरित, ले०—देवेन्द्र सूरि
प्र०—केशरीमल सस्था, रतलाम, १९३०

१९. काव्य मे रहस्यवाद, ले०—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९८३

२० कृष्ण-लावणी, मुनि नन्दलाल शिष्य

२१ कुमारपाल पडिबोह, संपादक—मुनि जिन विजय जी
प्रकाशक—ओरिएण्टल गायकवाड सीरीज, बडौदा, १९२०
गुजराती अनुवाद—आत्मानन्द सभा, बम्बई

२२ गजसुकुमाल रास (हस्तलिखित), अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर

२३. गजसुकुमाल रास (हस्तलिखित),
ग्रथ भण्डार जैसलमेर

२४ ज्ञाता धर्म कथाग सूत्र, स०—युवाचार्य मधुकर मुनि जी
प्र०—आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, १९८१

२५ चतुर्मुख वन ऑफ दि अर्लिएस्ट अपभ्रश ए पीक् पोइट्स
प्र०—जनरल ऑफ दि ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, ग्र० ७ अश ३
ले०—डा० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी, मार्च १९४८

२६ चउपन्न-महापुरिस चरिय, स०—अमृतलाल मोहनलाल भोजक
प्र०—प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी, १९६१

२७. चौपन्न महापुरुषोना चरितो, अनु०—आचार्य हेमसागरसूरि
प्र०—मोतीचंद मगनभाई चोकसी, बम्बई, १९६९

२८. जसहर चरित्र, ले०—कवि पुष्पदत्त, स०—डा० पी० एल० वैद्य
प्र०—जैन-सीरीज, कारजा, १९३१

२९. जम्बूसामि चरित्र, ले०—वीर कवि
स०—डा० वी० पी० जैन, १९६७

३० जयवाणी, स०—युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी
प्र०—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, २०२६

३१ जैन महाभारत, ले०—मुनि धनराज जी

३२ जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, ले०—देवेन्द्र मुनि शास्त्री
प्र०—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर

३३ जैन धर्म का मौलिक इतिहास—खण्ड १, २
ले०—आचार्य हस्तिमल जी महाराज,
प्र०—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

३४ जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास, ले०—प्रो० हीरालाल र० कापडिया
प्र०—पन्नालाल चंदनलाल, वडौदा, १९६९

३५ जैन श्रीकृष्ण साहित्य विषयक लेख, ले०—महावीर कोटिया
प्र०—जिनवाणी पत्रिका, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

३६ जैन स्तोत्र समुच्चयम्, स०—चतुर विजय मुनि
प्र०—निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई

३७ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, ले० मोहनलाल द० देसाई

३८ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, ले०—डा० गुलालचन्द चौधरी
प्र०—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७३

३९ जैन साहित्य का इतिहास, भाग—१, २ ले०—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री
प्र०—श्री गणेशीप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला, वाराणसी

४० जैन साहित्य और इतिहास, ले०—नाथूराम प्रेमी
प्र०—हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा० लि० बम्बई, १९५६

४१ जैन दर्शन और सस्कृति का इतिहास, ले०—डा० भागचन्द्र भास्कर
प्र०—नागपुर विद्यापीठ, नागपुर, १९७७

४२ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, ले०—डा० जगदीशचन्द्र जैन
प्र०—चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

४३ दशवैकालिकसूत्र : हरिभद्र वृत्ति
प्र०—मनसुखलाल महावीर प्रिंटिंग वर्क्स, बम्बई

४४ द्विसन्धानम्, स०—शिवदत्त शर्मा
प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२४

४५ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र,

४६ तेरहवी चौदहवी शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य
ले०—श्याम शकर दीक्षित
प्र०—मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, १९६९

४७ नाट्य दर्पणम्
प्र०—ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९४६

४८ नाममाला, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५०

४९ नेमिदूत, स०—म० विनयसागर
प्र०—सुमति सदन, कोटा, २००५

५० नेमजी और राजुल का सवाद, मगल पाठ
स०—राजेन्द्र मुनि, प्र०—तारक गुरु जैन ग्रथालय, उदयपुर, १९८२

५१ नेमवाणी, स०—देवेन्द्र मुनि शास्त्री
प्र०—तारक गुरु जैन ग्रथालय, उदयपुर

५२ नेमि निर्वाणम्, स०—पण्डित शिवदत्त शर्मा व काशीनाथ शर्मा
प्र०—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३६

५३ नेमिचन्द्रिका (हस्तलिखित प्रति)
जैन मदिर बडा तेरापन्थियो का, जयपुर

५४ नेमिश्वर बेलि, ले० कवि घेल्हसुत ठाकुरसी

५५ नेमि बारह मासा, (कण्ठाभरण)

५६ नेमिश्वर रास (हस्तलिखित प्रति)
लिपिकार—दयाराम पाण्डेय, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

५७ नेमिनाथ निर्वाणम् (हस्तलिखित)
जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)

५८ नयनानन्द, स०—एच० आर० कापडिया
प्र०—ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, वडौदा, १९३२

५९ प्रमेय कमल मार्तण्ड
प्र०—माणिकचन्द ग्रथमाला, बम्बई

६० पच पाण्डव चरित्र रास हिंदी के अज्ञात रास काव्य
प्र०—मगल प्रकाशन, जयपुर

६१ प्राचीन जैन शिलालेख सग्रह, भाग-२, स०—मुनि जिन विजय
प्र०—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२१

६२ प्रद्युम्न चरित्र
स०—प० चैनसुखदास व डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
प्र०—अतिशय क्षेत्र महावीर जी

६३ पउमसिरि चरित्र ले०—चाहिल
स०—डा० एच० सी० भायाणी
प्र०—भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि०२००४

६४ पउम चरिउ—कवि स्वयम्भू
स०—डा० एच० सी० भायाणी
प्र०—भारतीय विद्या भवन, बम्बई

६५ प्रश्न व्याकरण सूत्र, स०—अमर मुनि जी
प्र०—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

६६ प्रबन्ध कोश, स०—मुनि जिन विजय जी
प्र०—सिंघी जैन विद्यापीठ, अहमदाबाद, १९३३

६७ प्रद्युम्न चरित्र, स०—नाथूराम प्रेमी
प्र०—हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय, बम्बई

६८. प्राकृत साहित्य का इतिहास, ले०—जगदीशचन्द्र जैन
प्र०—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६१

६९ पाण्डव पुराण, ले०—भट्टारक शुभचन्द्र
स०—प्रो० ए० एन० उपाध्ये
प्र०—जैन संस्कृति सरक्षक सघ, शोलापुर, १९५४

७० प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
ले०—नेमिचद शास्त्री प्र०—तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १९६६

७१. प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ
स०—डा० वासुदेव अग्रवाल

७२ पाण्डव यशो रसायन (महाभारत)
ले०—मरुधरकेशरी मिश्रीमल जी म०
प्र०—रघुनाथ भण्डार, सोजतसिटी

७३ बलभद्र वेली, रचनाकार—कवि सालिग

७४ भगवद् गीता, गीता प्र०—प्रेस, गोरखपुर

७५ भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण
ले०—मुनि चौथमल जी
प्र०—दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर

७६ भवभावना (२ भागो मे प्रकाशित)
प्र०—ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वे० सस्था, रतलाम, १९९२

७७ भविस्सयत्तकहा तथा अपभ्रश कथा काव्य
ले०—डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७०

७८. भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण योगी एक अनुशीलन
ले० —देवेन्द्र मुनि शास्त्री
प्र०—तारक गुरु जैन ग्रथालय, उदयपुर १९७१

७९ भारतीय सस्कृति मे जैन धर्म का योगदान
ले०—डा० हीरालाल शास्त्री
प्र०—मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, १९६२

८० भारतीय भाषाओ मे कृष्ण काव्य—भाग १, २
स०—डा० भगीरथ मिश्र व विनय मोहन शर्मा
प्र०—मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल, १९८१

८१ महाभारत, ले०—प्रवर्तक शुक्लचद जी म०

८२ महाभारत ले०—सूर्य मुनि जी

८३. महाभारत, प्र०—गीता प्रस, गोरखपुर

८४ महामात्य का साहित्य मण्डल और सस्कृत साहित्य में उसकी देन
ले०—डा० भोगीलाल साडेसरा
प्र०—जैन सस्कृति सशोधन मण्डल, वाराणसी

८५ रगसागर नेमिफागू, ले०—सोमसुदर सूरि

८६ रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
ले०—राजाराम जैन

८७ राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा
ले०—अगरचद जी नाहटा, प्र०—राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६७

८८ राजस्थानी वेलि साहित्य
ले०—डा० नरेन्द्र भानावत
प्र०—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

८९ राजस्थान का जैन साहित्य
प्र०—प्राकृत भारती, जयपुर, वि० २०३४

९० राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले०—मोतीलाल मेनारिया

९१. वस्तुपाल का विद्या मदिर, ले०—भोगीलाल साडसरा
प्र०—जैन कल्चर रिसर्च सासायटी, बनारस,
हिंदू युनिवर्सिटी पत्रिका न० १६

९२ वसन्त विलास

९३ वसुदेव हिण्डी, ले०—सघदास गणि
स०—मुनि चतुरविजय, पुण्यविजय
प्र०—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९३०

९४ वण्हिदसाओ, स० —पुप्फभिक्खू
प्र०—सूत्रागम प्रकाशन समिति, गुडगाव (पजाब)

९५ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म एण्ड अदर माइनर सेक्ट
ले०—डा० भण्डारकर व हेमचन्द्रराय चौधरी, पुणे

९६ वैष्णव धर्म का प्राचीन इतिहास, ले०—डा० राय चौधरी

९७ सन्तकवि रायचदजी और उनकी रचनाए
प्र०—मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ब्यावर

९८ सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान
ले०—डा० नेमिचन्द शास्त्री
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९०१

९९ समवायाग सूत्र, स०—प० कन्हैयालाल जी 'कमल'
प्र०—आगम अनुयोग प्रकाशन समिति साडेराव, १९६६

१०० स्थानाग, स०—प० कन्हैयालाल जी कमल
प्र०—आगम अनुयोग प्रकाशन समिति, साडेराव, १९७२

१०१ सस्कृत साहित्य का इतिहास ले०—वाचस्पति गैरोला
प्र०—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६०

१०२ सप्तसन्धान काव्य
प्र०—जैन साहित्य वर्धक सभा, सूरत, स० २०००

१०३ सस्कृत साहित्य का इतिहास, ले०—बलदेव उपाध्याय
प्र०—शारदा मदिर, काशी

१०४ साहित्य और सौन्दर्य, ले०—डा० फतेहसिंह
प्र०—सस्कृति सदन, कोटा

१०५ श्रीकृष्ण चरित्र, ले०—प० महासेन

१०६ श्रीमद् भागवत, प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर

१०७ हरिवश पुराण (हस्तलिखित) ले० १७५९
आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

१०८ हरिवश पुराण (हस्तलिखित) ले०—स० १९०९
श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मदिर, धुलियागज, आगरा

१०९ हरिवश पुराण (हस्तलिखित), ले०—शालिवाहन, आगरा
११० हरिभद्र के प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
ले०—नेमिचन्द्र शास्त्री
१११ हरिवश पुराण ले०—आचार्य जिनसेन
स०—पन्नालाल जैन, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२
११२ हिंदी साहित्य का आदिकाल, ले०—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
११३ हिंदी साहित्य मे राधा, ले०—द्वारका प्रसाद मित्तल
११४ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
ले०—डॉ० रामकुमार वर्मा
११५ हिंदी साहित्य का इतिहास, ले०—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
११६ हिंदी जैन साहित्य परिशीलन, ले०—नेमिचद शास्त्री
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६
११७ हिंदी आदि और मध्यकालीन कृतिया
स०—डा० गोविन्द रजनीश, प्र०—मगल प्रकाशन, जयपुर
११८ हिंदी रास काव्य, ले०—डा० हरीश
प्र०—मगल प्रकाशन, जयपुर
११९ हिंदी और मराठी का वैष्णव साहित्य एक तुलनात्मक अध्ययन
लेखक—डा० न० चि० जोगलेकर
प्रकाशक—जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, १९६६
१२० हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, ले०—डा० गणपतिचद्र गुप्त

पत्रिकाए

१ अनेकान्त—दिल्ली
२. श्रमण—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी
३ अहिंसा दर्शन—अखिल भा० अ० प्रचार सघ, बेंगलोर
४ शोधपत्रिका—वर्ष २९, अक दो, एप्रिल-जून १९७८
स० डा० देवीलाल पालीवाल और डा० देव कोठारी
साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
५ जिनवाणी मासिक पत्रिका—जुलाई १९६९
सम्यग्ज्ञान प्रचार मण्डल, जयपुर
६ जैन हितैषी—भाग-११, अक ७-८

□□□